## QUEDATESLID GOVT. COLLEGE, LIBRARY

KOTA (Raj )

Students can retain library books only for two

| BORROWER'S<br>No | DUE DTATE | SIGNATURE       |
|------------------|-----------|-----------------|
|                  |           |                 |
|                  |           |                 |
|                  |           |                 |
| 1                |           | }               |
|                  |           |                 |
|                  |           |                 |
|                  |           |                 |
|                  |           |                 |
|                  |           |                 |
| ł                |           |                 |
| 1                |           |                 |
| İ                |           |                 |
|                  |           |                 |
|                  |           | . <del> -</del> |
| 1                |           |                 |
| Ì                |           |                 |
|                  |           |                 |
|                  |           | I               |

31318

आधुनिक हिन्दी कांविता વિષય ્રેગ્રોર શેલી



डा० रांगेय राघव

राजपाल एण्ड सन्ज्ञ, दिल्ली

# क्रम

| मू मिका                           | ¥          |
|-----------------------------------|------------|
| माय, ज्ञिब घ्रौर सुन्दर           | १७         |
| नामीप्य और संगर्ग के ग्रालम्दन    | ሂዕ         |
| √प्रास्था ग्रौर मून्यास्त         | <b>5</b> 0 |
| स्रनिव्यस्ति स्रौर वियान          | १०४        |
| संवेदना सीर स्वानुभूति            | Śĸ         |
| √श्रहत धर्म और दर् <del>स</del> न | 156        |
| समात्र भौर युग-मोमा               | 705        |
| ग्रान्म ग्रीर लोकसंबहन            | २३५        |
| गापेत श्रीव दिवीकरण               | 541        |

चदासीकरण और सामंत्रम्य २८०

<sup>प्रानव-सम्हरित</sup> ३०६

## मूमिका

#### काव्य में चेतना का तात्पर्य

काव्य तो नेतना का ही पर्याय है, फिर नयी और पूरानी का सघर्ष तो दूर, पहले इसे ही सोचना ब्रावस्यक है कि उसमें फिर चेतना का प्रयोग ही किसलिए किया जाए। क्योंकि यह या तो विरोपाभास-मा लगता है साइसमें यह दृष्टि है कि जो मुख है, हमारी ही पीढ़ी है और पहले नाव्य में चेतना ही नहीं थीं ! इसलिए इसकी व्याख्या करना उचित है। काब्य तो सदैव से मानव-चेतना का प्रतिविम्द है। जब हम उसे काब्य में ढ़डते हैं, हव वह सप्रमाम ही मिल जाती है। प्रकृति-वर्णन, लोक-वर्णन, समाज-वर्णन, व्यक्ति-वर्णन से लेकर अत प्रकृति तक के वर्णन में वह हमें प्राप्त होती है। प्रतीको या पात्रों के माध्यम से वह ध्वनित हुया करती है। ग्रत जब हम उसीपर केन्द्रित होते हैं तब समग्र सुध्टिका मानव-मस्तिष्क मे चेनन-रूप जो विबीकरण है, उसे नही देखते, दरन उसे देखते हैं जो मानवारमा के उत्थान की प्रकट करनेवाली भावना है, जो उसे उदात्त बनाती है। परिपाटी का सौन्दर्य पार करके जब लेखनी नयी स्फूर्ति प्रदान करने में समर्थ होती है, तब हम उसे चेनना कहा करते है, क्योंकि बहुकृत्य-बहुकरणीय जीवन में कविता एक छन्द-बढ़ता ही नहीं, एक सौन्दर्य है जो जीवन के प्रत्येक कार्य-व्यापार मे होती है। वह सींदर्य त्तित क्लामो के विविध रूपो में मपनी श्रमिध्यक्ति पाता है, भौर लोकहित की कामना भी उसी मौन्दर्य के श्रवगंत श्राती है। इस प्रकार जब हम काव्य में चेवना देखते हैं तो मानव उस चेतना को नहीं देखते जो मानवीय विकास का परिणाम है, वरन् उसे देखते हैं जो सर्वात्म को अपने में लीन करके उदात बनने की और प्रेरित करता है और मदरना भी ग्रभिव्यक्ति भी ग्रपना सत्य ग्रीर शिव बनाती है।

### नवचेतना की व्याल्या

प्रत्येन झुन प्रपत्ते साथ कुछ परिवर्तन लाता है। ब्राह्मिक बान्सीकि वास्त्रव में प्राह्मिक नहीं थे। उनसे पहले उपनिषदों भीर उनसे भी पहले वेदों के किब थे। किन्तु महामारत-मुग के प्रत्ये में जब लोक-काब्य के रूप में ग्रेम महाभारत में लोक-माथाए सब्द हुउँ तर बान्मीकि रामायण की पुरानी कथा में भी नये सब्देन प्रारम हुए श्रीर क्योंकि उसमें मानव को प्रथम बार प्रतिष्ठित किया गया, जिससे लोक मे नयी चेनना आई, तो उमे ग्रादिकाव्य कहा गया । यह 'नर राम' देवतास्रो से जीत चुका था । तो यह नव चेतना का हो उदाहरण है। महाभारत ग्रथ यद्यपि पुराना है, और वर्तमान वाल्मीकि रामायण का रूप परवर्ती है, किन्तु रामकथा का मुग महाभारत-मृग से प्राचीन है। हो सकता है कि अपने मूल रूप में वाल्मीकि रामायण का छोटा-सा कलेवर महाभारत वाल्य के रूपो में पुराना ही हो। उस दुष्टि से यह प्रथम नर-काव्या था। यत इसे ब्रादिकाव्य कहने का यह भी कारण हो सकता है। तो नवचेतना काव्य मे प्रतिष्ठित सत्य, शिव श्रीर सुन्दरको नया रूप देने का ही नाम है। परिवर्तन का नाम 'नया' है, न कि पुराने को हेय या निदनीय समस्ता । एक समय द्याना है जब पुराने की उपादेयता इसलिए घट जाती है कि उसके मानदण्डों से नये युग की समस्यामों का हन नहीं हो पाता । युग-युग के साधन बदलते रहते हैं। पूर्वजो की देहलीज को लाधकर उत्तराधिकारी नये भवनो का निर्माण करता है। इसलिए नवेपन की मारा यह तो स्वीकार करती है कि पुराने की ही लकीर पीटते रहने से उसका काम नहीं चलता, परन्तु वह यह नहीं कहती कि पुराना सब व्ययं है, उसे तिरस्कृत करना चाहिए। यह भी व्यान में रखना ग्रावस्थक है कि 'नया' 'पुराने' नी तब निदा भी करता है, जब 'पुराना' उसे 'नया' बनने में रोकता है, उसके रास्ते में बाघाए उपस्थित करता है। वह बाधाओं को नहीं बाहता, स्पोर्कि वह परिवर्तित परिस्थिति मे नथे मुस्याकन स्थापित करने की चेप्टा करता है। कालिदास ने इसीलिए कहा है कि पुराना होने से ही सब बुछ प्रच्या नहीं हो जाता, न नया होने से ही ऐसा या इसके विषरीत होता है। मुखं तो परम्परायकडे चलता है , अविक बुद्धिमान दोनो मे मे सोच-समभकर रास्ता निकालता है और सारतत्त्व को ग्रहण करता है।

#### परपरा से उसका ताटाव्स्य

एक बार एव चीनी मीर एक भारतीय से बिवाद हो गया। भारतीय ने गर्व से कहा, "बुग्हारे देव में एव-ची महान उपदेशक हुए हैं —स्त्यूरियवत भीर तासी। हमारे वहा हुएक, बुद्ध महानीर, नानक, कबीर भारित प्रस्ता हुएक हुए हैं।" यह मुनक रचीनी ने बहा, "साई, यह गर्व करने की नात नहीं, इसपर वो तुन्हे लिजब होना जाहिए!" भारतीय ने पूछा, "ऐसा क्यो ?" उत्तने कहा, "देवो ! बार-बार वृद्धां, के उपदेशों की भारतीय में पूछा, "ऐसा क्यो ?" उत्तने कहा, "देवो ! बार-बार वृद्धां, के उपदेशों की भारत्यन ता उन्हें पहनी है, जिनका भन्न सीझ ही फिर-फिर हो जाना है। हमारे यहा अच्छा सत्ता एवं बार बता दिया गया तो लोग उत्तपर करते रहे। धन्यी में हो की वरह भटके नहीं। बुन्हारे यहा इताने भटकन है कि परमात्मा को बुन्हें बुद्धि देने वरे वरित स्तार्थ के नहीं भे भेने मार बता है।" यह मुनकर भारतीय का गर्व खिडत हो गया। तो मैंने इन कथा वो इसलिए मुनाया है कि मान में बार-बार वव वतन बाना

ता मन इन वया वा इसालए मुतामा हा व मनाज में बार-बार जब पतन प्राता है तब परिवर्तन प्राता है 1 बीन में कम मुधारक होने वा ग्रथ है, वहा विद्रोह कम भूमिका

हुमा म्रोर भारत मे प्रधिक होने का तालपँ है कि यहा विद्रोह यधिक हुमा। परिवर्तन की प्रधिक मान रही। नया समान वार-वार बनाने की चेप्टा हुईँ। मानवीय मून्यो को वार-वार पुनराकित करते का यत्न हुमा। यह किसीलए ? इसिलए कि यहा मानव-वारी विचारपार मधिक फैनी, नयोंकि यहा सान की व्यवस्था व्यवहार मे वही ही अध्यसता पर स्थापित रही। परन्तु प्रवेक पुन में हम परिवर्तन देखते हुँ भी, उसका अपने से पुराने पुग में एक कमज विकास देखते हैं। राजनीतिक स्वतत्रता या दासता से चेनना की स्वतत्रता या दासता नहीं मिनती। जब तुजसी-पूर का यूग्या, तब भारत मुगल सामाज्य के नीचे बुरी तरह कुचना पड़ा या, कन्तु कि न्येतना जतनी ही उद्दाम-प्रवेच में शो अब विद्या स्था-वह नहीं रहा या, तब किन नेवना जतनी ही उद्दाम-प्रवेच हैं। राज वितर्वा हु से होते हैं। वितर्वा कि मुगल का माज्य के नीचे बुरी तरह कुचना पड़ा या, किन मानविवा जतनी ही उद्दाम-प्रवेच हैं। यहा तक विद्या स्था-वह नहीं रहा या, तब किन नेवना जतनी प्रवरं नहीं यो। जितना हु स होता है, चैतना जतना ही निवार साती है। दासता के मध्यकालोन म्राठ सी वर्षों में भित के रूप में जित मानववाद को भारत से प्रतिक्वित कर दिया गया, वह पहले के पूर्वों ने इतना प्रचड नहीं या, क्योंक समाजतब इतना जकड़ दु सुरीतिपूर्ण नहीं या जितना वाद में हो गया। इत तरह हम देखते हैं कि 'त्ये' का 'पुराने' से जो सवस होता है वह 'भावना' ना ही प्रिंगक होता है। वह 'भावना' ना ही प्रिंगक होता है वह 'भावना' ना ही प्रिंगक होता है। वह 'भावना' ना ही प्रांगक होता है वह 'भावना' ना ही प्रांगक होता है वह 'भावना' ना ही प्रांगक होता है। वह स्था ही ही है है 'भाव' का प्रांग से स्था स्था है। से हह 'भावना' ना ही प्रांगक होता है। ही स्था स्था है ही स्था स्था है। से हित्य 'भावना' ना ही स्था है स्था है ही ही स्था स्था है। स्था स्था स्था से स्था स्था स्था से स्था स्था स्था स्था स्था स्था से स्था स्था स्था से स्था स्था स्था से स्था स्था से स्था स्था से स्था से स्था स्था स्था से स्था स्था से स्था स्था स्था स्था से स्था

#### उसका स्थापित्व श्रीर सार्वजनीन सत्य

तब प्रस्त यह उटवा है कि युग वो बदलते ही रहते हैं, फिर साहित्य का स्थायित्व और सार्वजनीन सत्य क्या है? मानव-समाज के बाह्य परिवर्तनों की माति मनुष्य के भाव-यगत् में उनना परिवर्तन नहीं होता, त्यों कि वह मूलत प्रपनी प्रवृत्तियों की नीव पर ही खाड़ होता है। मत 'माब' का स्थायित्व अन्य बस्तुओं की अपेक्षा कहीं अधिक है। जो साहित्य 'भाव' के सम्बन्ध रखता है, वह किसी भी वस्तु-विषय सा कृष को तेकर में, स्थायी वस्तु विषय सा कृष्य को देखा है। में देश दे हिम के साहित्य 'भाव' से अध्वया परता है। में इसी दृष्टि से में काव्य को देखा है। मेरा उद्देश केवल उसका परिवय देना है। नहीं था, वरन्त उसको उपलब्धियों को भी मनन के योग्य आनकर सामने साना था, उदकी मुन्दरता को अबद करना था।

युग के प्रस्त बदल जाते हैं, मानव प्रपत्ती पीडी बद पीडी बतती सास्कृतिक परमरा में उस एकपूत्र बेतता को देखता है, जिसमें मानव का उसास रूप, उसका सौन्दर्य
बतना बता बता हुया दिखाँदेश है। यह मानव ना भावपत्त हो है। उसका यसात्रय
विजीव रा प्रपत्ते में कोई विशेषता नहीं बता। वह तो उतको बाहता है जो उसे प्राप्त
पा पत्र दिखाए, उतके सामने पथ को बीडा करता बता आए। तमें यूग में दक कार्य की
प्रोर जो प्रयत्त हुया है, बहै। हमने यहा परने विशेषत का विषय बनाया है। इसने कितना
सार्ववनीन और मार्वकालिक है, वह पाठनों के समस स्पन्ट रखा पया है, और वे पढकर
हो जान मक्ते हैं कि वे दममें से विजना इस सोम्य पाठे हैं। इस दुष्टि से मैं समस्ता हु कि

नया काव्य हमे प्रधीर होने की कोई दुरिवता प्रदान नहीं करता। 'प्रतीक' पात्र प्राए हैं मयी समस्याधी के कारण जबकि 'तधुल' खोडकर हम 'व्यापकल' वी धोर वहे हैं। परतृ सभी में समस्ता हूं कि वह युग प्राते को है अब 'मतु और श्रदा' जैसे मानवीय प्रतीकों के बाद वे पात्र आएवे वो कि प्रतीकों को प्रपते मीतर सभेट लेने की धमहा रखेंगे! सरस्तती के ये वरद पुत्र उसीकी वेप्टा में रत रहेंगे तो स्वश्य ही 'बुगवामी' का सच्चा प्रतिस्वतित्व करके युग युग को वाणी' वन जाएगे।

यहीं सार्वभीम साथ प्राज का निब सृष्टि और मानव के उस तादाल्य में खोज रहा है, जिसमें उने एन नये सत्य का स्वरूप प्राजा हो सके। स्थायी साहित्य के लिए जिसे जीवन-दर्शन और ब्याइया की प्रावस्थनता है, यह उत्तवी सोज में निरत हो गया है। मैंने नये वाध्य के बहुमुखी ब्यक्तित्व को एनरूप में देशा है, और एकरूप को बहुब्यक्तित्व के माध्यम से देखने की चेट्य नी है।

#### वस्तु श्रोर मनुष्य

वस्तु और मनुष्य-सबय ब्राब का नहीं, तम का है जब मनुष्य में सम्बताना भी उदय नहीं हुन्ना था। महिन में ही मनुष्य ने अपनी आप्ते खीली थी। वह प्रारम्भ में जब नन्द-राम्नों में भी रहना नहीं जानता था, तब भी प्रवृत्ति ही ने उसे बारो थीर से घेर रखा था। वस्तुत प्रकृति ही उसकी शिक्षक बनकर रही है। प्रारम्भ से लेकर शब तक मनुष्य प्रवृत्ति को ही समझने का प्रयत्न करता रहा है।

प्रारम्भ का जीवन अत्यन्त मिठन था। इसीलिए मनुष्य ने देखा कि उसकी मृत्यु अर्थत का ही एन कार्य-स्थापार थी। यज पद्मयों और अन्तुवाँ से लड़ने के लिए उसने सभाज का निर्माण किया। मनुष्य का समृद्ध में एहना इसका प्रमाण है कि उसने प्रय-नीवन ना वादार्य अरने से पूर्वकरी पद्मयों से प्राप्त किया। औदिन रहने की इन्द्रा प्रवृत्ति के सहान कोड में मत्यती है और इसनिए उसके सहारक दम से मनुष्य ने सप्यां करने के लिए प्रयन्ते मुक्त कोड में मत्यती है और इसनिए उसके सहारक दम से मनुष्य ने सप्यां करने के लिए प्रयन्ते मुक्त नीन रन्तर विवक्तित विया।

मृजन, पालन घोर सहार --- प्रवृत्ति के ये तीन रूप हैं, जिनसे प्रमृप्य का समय है। मुख्य ने उसने का तोनों रूपो को पारता है और उन्हें सपने जीवन से उपिन क्यान दिया है। यही नारण है जि उसने जिन तीन देनाग्रों के रूप में तिमृति क्यांगित की है--- क्या, निष्णु घोर महेज चन्तर जिल्ह पुतारा है उनते प्रमृप्य प्रोत्य को के प्रतिन प्रमृप्य ने प्रत्य के प्रतिन प्रवृत्ति के प्रतिन प्रदेश के प्रतिन प्रवृत्ति के प्रति एक यस प्रीर नाथ ही। हमारे वाहित्य की प्रतिन प्रवृत्ति के प्रति एक यस प्रीर नाथ ही। हमारे वाहित्य की प्रतिन होने हैं। इन दोनों ने ही प्रवृत्ति के प्रति एक यस प्रीर नाथ है। इन प्रकृति के प्रति एक यस प्रीर नाथ ही। इन प्रकृति के प्रति एक यस प्रीर नाथ ही।

विभिन्न रूपों मे विकास किया है।

प्रवृति मनुष्य के इतने पास है कि उसने उसके मन के पक्ष को छुषा है, तभी उसे निरन्तर उसके काव्य में स्थान मिलता रहा है !

प्रकृति के काव्य में रूप स्रीर सायम्यं का विकास

प्रकृति के काव्य में सनेक रूप हैं।

प्रवृत्ति को पहले पक्ष में उपामना के आधार के स्वरूप में लिया गया। इसलिए हमें मिला के न्वरों में उसना दर्धन मिनना है। इसी पक्ष का दूनरा स्वर है भय, जिमके स्नरों में हमें प्रवृत्ति का आनक प्रद्रशित होता है। किन्तु कालावधि व्यतीत होने पर हम ज्यो-ज्याँ प्रवृत्ति को समक्ते गए और सम्यना की ओर प्रप्रसर होने गए, हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन होना गया।

प्रकृति एक उद्दोपन करनेवाली वस्तु वसी । और उनके माध्यम से मनुष्य धपने रागदेव को खटना-बदना देवले लगा । इसमें स्मृति का हाय काफी प्रवत्त हो उठा । बासनावस्य विकास ने इसमें धपना वहन अधिक सालिच्य देखा ।

त्य विकास न इसम ग्रपना बहुत श्रापक साल्विय दला। क्रान्टम्बन रूप मे प्रकृति को देखना दूसरा दृष्टिकोण बना।

इन दो रूपो के प्रतिरिक्त भी प्रष्टति के काव्य मे स्वरूप प्रस्तुत हुए ।

प्रकृति का स्वय में भी सौन्दर्य होता है । महाभारत के प्रकृति-विदल से हमें ऐसे धनेक उदाहरण मिनते हैं, जिनमें प्रकृति अपने-आपके ही लिए अन्यन्त प्रभावोत्पादक टग में चित्रित की गई है।

प्रकृति में अपने उतास्य की सोजना और ब्रह्मस्यरूप समझ्कर एकमात्र रहन्य के प्रन्तर्गत उमे रसकर देवना भी प्रकृति के चित्रण का एक रूप है। प्राचीत और मध्य-कालीन रहम्यवादियों का ऐसा ही दृष्टिकोण था। किन्तु प्रवीचीन काल में ब्रह्मरूप में तो कोई एकेस्वर नहीं माना गया, नयापि प्रकृति की महानना में अपनेको घारममान् करने की छायावादी किपयों ने चेष्टा की।

प्रकृति पनायन का भी केन्द्र-न्यल बनी। समाज की विषमता ने ऊर्व हुए मनुष्य ने प्रकृति की कमनीयता को ही अपने नामने रखा।

मध्यक्तल में प्रकृति को उपदेशक के रूप में काव्य में चित्रित किया गया । यदि प्रत्यस ऐमा नहीं किया गया तो प्रकृति के गुणों को तुननारमक रूप में मनुष्य के चरित्र से मिनाकर प्रस्तुत किया गया । यह प्रवृत्ति मतो प्रोर भक्त कवियों में हमें मिलती है ।

किन्तु प्रदृति का एक घोर रूप रहा है, प्रप्रतृत का मूर्नीकरण । इस रूप से प्रदृति धपने-आपने दनना प्रभाव नहीं रखनी, जिनना अपने झाधार की उपमा या छ्वि-विधान बनने में सार्वकता दिवलानी है।

समाज की रूढ़ियों में बन्दे हो जाने पर भी साहित्य ने परम्परा और परिपाटी की

तीन पीटते समय भी प्रकृति को निवात उपेशा नहीं की। उस समय भी हमें प्रकृति के उसने ही भाग के बिज घनच्य मिल जाते हैं, जोकि राजमहलों में उजागर हो सकते थें।

धानन्द, स्रोक, रहस्य, विस्मय धारि अनेक प्रकार के भावों ने प्रहात को प्रस्तुत किया है। किन्तु यह एक ऐसा विषय है, जो कभी भी पुराना नहीं पदा। जिस प्रवार मूलत मेनुष्य ना भीव-पत्त प्रभो किन न बदलते के बरावर ही बदल पाया है, उसी प्रवार प्रहात का भी प्रभाव अभी तक प्राय वहीं है।

ग्रस्तित्व श्रीर सादृश्य

इसना नगरण है कि हम यद्यपि प्रपती-प्रपती इकाई में व्यक्ति हैं, किंतु रहते समाज से हैं, और हमारी इकाई की सार्यकता तभी है, जब उसे समाज का बाधार प्राप्त होता है। उसी प्रकार यह समाज भी प्रकृति से प्रपत्त स्वत्वन रहता है।

है। उस्तो प्रकार यह समाज का प्रकृति से ग्रंपना सम्बन्ध रह्नती है । वस्तुत हमारे समाज के विभिन्न युगो मे प्रकृति के प्रति विभिन्न दृश्टिकोण रहे हैं ।

दैदिन नाल में प्रकृति को माजवीय ग्रामित्यों ने रूप में ग्रावतरित कर शिक्षा गया।
था। उपनिषद्-वाल में उस ब्यायकात को देना गया जिसमें मनुष्य में परे की सार्वकासिक सर्वभ्रमाना प्रकृति की मूलारमा बन गई। उसके उपराना बोट-देनकाल में प्रकृति का उद्देश्यन-ग्रास स्थम के देमन में दबा देने की घेट्या की गई। उसके प्रवर्गों सुगी में प्रकृति के सनेक प्रान-प्रतिथान सहे हैं। ब्राह्मण प्रीर बैट्या विनन ने प्रकृति को सावष्यमध्य ही स्रविक माना है।

यदि बाहरी भेदों पर प्यान न देवर हैमा जाए तो रक्ष्ट हो जाता है नि मूनदे महदि का को दृष्टिकोच मारन में रहा है, पूरोन भी उत्तमें बहुन दूर नहीं रहा है। यह भीर बान है कि विभिन्न पूनों की विभिन्न दिकारपारायों का अक्षत-अन्तर प्रभाव पढ़ना रहा है।

प्रश्नि बास्तव में समाजवा एन दृढ साबार है, और उनने बिना वह मानो अपने नो अपित्तव में पदा हुआ अनुसव करता है। यही नारण है कि प्रहृति को मनुष्य-समाज ने पपने से प्रनित्त हो स्वीहार त्रिया है।

मनुष्य की बाह्य परिचिया

मनुष्य महीन ना अग है। जिस प्रवार पशु पाशी, प्राशास और पूर्वी इम्मादि प्रवित्त स्था है, जभी प्रनार मनुष्य भी है। मनुष्य विकास-तम में मैनानियों ने मना-तुष्य प्रवित्त स्था है। उसने द्यो प्रवृत्ति भागा वादास दनाया है, और स्वापि उसना प्रावास दनाया है, और स्वापि उसना पर वर्षव मही कहना रहा है, कि वह धन्यों की प्रयोग उक्चमनर का अपनी है, त्यापि वह प्रवृत्ति के महीनुष्या सब परिवन्तों में में ही लग है। प्रश्ति इतनी मुगदी है नि पूर्वत मनुष्य का उक्चमनरीय प्राप्ती होना भी उसीन एक पृष्ट का प्रवृत्ति के सुष्य का उक्चमनरीय प्राप्ती होना भी उसीन एक पृष्ट का प्रयोग है।

मूमिका ११

इसके स्रतिरिक्त सबसे प्रियम महत्वपूर्ण बात तो यह है कि स्रतत मनुष्य की मी एक प्रहृति है। श्रुपा, रिनामा, काम, प्रजनन प्रीर मृत्यु उसके वे काम है जिनके प्रति वह प्राने को विवस पाना। है किंतु यह तो प्राणिमान के पर्म हैं सन उनको ही प्रत नहीं सममना चाहिए। मनुष्य में एक और भी पक्ष है। वह उसका स्नानिश्त पक्ष है। जो उसका प्रवृत्तिन तक्ष है, बह तो सर्वामायरण है, किंतु वह पक्ष जिनमें उसकी सुग्त-चुक्त को प्रमृत्ति है, प्राण्-जनत् में उसकी मुलना नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से जबकि स्रत्य प्राणी प्रवृत्ति के प्रमान हैं मनुष्य ऐसा स्नग है, वो समने सगत को पह्नानना मी है और तिरक्ष रहा सो से ना है कि पूर्ण को सुन्ति है ? वैसा करों है ? विसा करों है ? वैसा करों है से तो है शास करों है से सा करों है सा करों है से सा

यही मनुष्य वा नाव-भक्ष है। इस माव-पक्ष का साधार उसकी प्रवृतियों पर निर्मार है। योगी लोग सपनी प्रवृति पर विजय प्राप्त कर तैते हैं। ऐसे लोगी को लोक में समाधारण माना गया है। इमलिए भरन मुनि ने योग-पक्ष को वास्य के सतर्गन नहीं माना है, वर्गीक उनमें सुख-दुल की सहज और सर्वसायारण की सी अनुमूति नहीं होनी। लोक में देव और राग दोनों ही मनुष्य ना सवालन करते हैं। यविष प्रवृत्ति- रूप में महस्य मानव में विद्यान है, किनु उसके दमन की जबह, उसका उसातीकरण ही वास्य ना मुख कर्म माना गया है। एव दृष्टि से काव्य का उद्देश्य और थोग वा उद्देश माना है, वर्ष कुष्ट कुष्

मानव-धर्म ग्रौर जिजीदिया

प्रकृति को जीतना ही मनुष्य ना कार्य रहा है।

प्रशिक्त मानव ने उस गृह दूर सी भी और वर्षों में बहा बैठ गया था, तब यद्यि वह मेम देवना से उरता रहा, तथाणि उनने एक प्रकार से यपने को बचाकर, प्रकृति पर जीन प्राप्त कर तथा है। यहिन का प्रयोग सीवकर उसने अपनी सम्यता की मागे वडाया। प्राप्त की चया मनेत प्राप्त को सारी वडाया। प्राप्त की चया मनेत प्राप्ति मारी सारी तथा में स्मितिए प्राप्त होती है। यह एक उन्द है कि मनुष्य ने मग होकर सगी की प्रप्ते प्रमुक्त कराने की पेप्टा की है। प्राप्ति मीर स्थानक से मनुष्य की सार स्थान से स्व स्थान से स्थान स्थान से स्थान से स्थान स्थान से स्थान से स्थान से स्थान स्थान स्थान स्थान से स्थान से स्थान स्था

उसको बहुत-सी कोमल बल्पनाए टूट गई और उनका स्थान एक बटुता ने ले लिया। इस बटुता के फलस्वरूप प्रदृति के प्रति जो भारमा पहले मनुष्य में थी वह सबैह भीर भय के रूप में बदनी गई।

प्राप्तिक मानव ने विजात की सहायता से यद्याप प्रकृति की सर्नेक रूपी में व्यास्ता को है, फिर भी वह यव मृतृष्य का हो इंप्रिक्तिण है, भीर यह नहीं मान तेना चाहिए कि वहीं सब प्रतिम सर्प है। प्रहाति का पांचे-व्यापार महत् है भीर मृतृष्य के सावन सभी इतने सरियवत है कि वह उन्हें सह्य सर्प्त भी मही सकता। परन्त हुन सप्पर्य ने उसके सामने यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रहात को मीतिया एक नियमन में सब वार्य वरती हैं और मृतृष्य को परिवर्तन ताकर भागते को भीवित रखता है, यह सर्पुत ममीतिक वृत्त हो स्वति है। पृष्यों की सपुता ना जान वास्तव में मृतृष्य के महत्तर दृष्टिकीय का जानरण है भीर हतीतिए साथ का कि सभी तक उस विराट से वैद्यातादालय नहीं कर पाया है, वैद्याति हुपते कि बच्च के समी तक उस विराट से वैद्यातादालय नहीं कर पाया है, वैद्याति हुपते कि स्वति ते समी तक स्वति स्वत् माया । फिर एक बात यह भी है कि तमुता की नारण उस तनय मृत्य हो सकता केन्द्र वन पया था। यही बात है कि वस्त स्वत्य भी है कि स्वत् स्वृत्य भी हम भागते प्रतिन होती है, जबकि यह विद्याद तक हमें प्रपत्ने में विस्तवन्दी या पका मी हम भागते के मितिरक्त भीर कुछ प्रतीन नही होता, स्वीकि प्रवृत्ति नम सभी तक उसने मेल नही या पका है।

### सहज श्रीर भाव-पक्ष

विकास के दो पदा हैं।

वनात के सं पत् है। बाह्य एस में मनुष्य की सम्पना है, जबकि धातरिक एस में उसकी सस्तृति है। सम्पना पनुष्य-निर्मित बालुधों का लेसा-जीला है. भीर सम्बृति उसके हृदय-पक्ष को वियेव-पन्न से वह सामजन्य है, जिसमें नैतिबता बहुवनहिलाय होकर विराजनी है भीर उसकी मुस्स्ता को पश्चित से अधिक उसारकर बाहर लाने की वेच्टा करनी है। इसी कुसरी बात ने प्राचीत काल में उन बातांधों और कृपायों को जन्म दिया था, जिसमें उसको यु, पक्षी भीर बुस भी बात करते हुए मिलने थे। मम्मता ने नीरन व्यास्ता को है, साहति ने उस स्टूक्टय एकारम दूनने का सदेव ही प्रयत्न विचा है, और हमीतिष्ट व्यक्ति के विकास ने भारत ये धावस्त्व प्राता गया है।

भारितन परा यमरि स्वान-सः में आरतीय जीवन में भ्रधित स्तृत्व माना गया है, परतु उन्ने नवारराभव नहीं स्क्षेत्रार विचा गया। उन्ने सबसेन रूप में तेनी स्वाप्य माना गया है जब उसमें मनुष्य-मात्र नो धान्तोनिन नरनेवाने भारों के साथ परसा गया है।

प्रवृत्ति धौर विदेव, दोनो हो मावनशरोपों नशिह्व होने हैं। मनुष्य धनेक वर्षे वरना है, बिन्नु उसे उनके साथ ही मुख धौर प्रतीय की भी भावरत्वता होती है। इनीको भावन्यत्र से प्रकृति का वादारम्य बहुना चाहिए, क्योंकि उसीमें मनुष्य वृत्ति का धनुभव करता है।

भीर बाज भी जन हम विज्ञान की वात करते हैं तब वहा प्रकृति से केवल प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है। जबकि मनुष्य चाहता है सुदरता।

सुदरता अपने आपमें कुछ भी नहीं है, वह तो प्रकृति के कार्य-व्यापारों का ही स्वहप-भेद हैं। उसीको हमने बाहर ते भीनर कक उनार लाने की पेप्टा की है, अपनी लघुता में उस विराट तत्त्व को समेटकर। प्राणी में मुदरता की परख समान रूप से नहीं होती। मुदूर मेष को देखकर नावता है, जिसे देखकर लगना है कि उसको उपप माती हैं जब कह मेष को देखकर है। परतु यह स्वभावजन्य माना जा मनता है। मुद्ध में मुदरता की अनुभृति बहुत अधिक होती है, यबधि सब मनुष्यों में यह मावना समान रूप से नहीं पार्द आती। बहुन-वे लोगों की मुदरता बहुत ही स्थूस होती है, जबकि उसकी अतिहुत्सता को भीर सम्हति निरतर प्रेरित करती पही है।

### रहस्य भावना स्नार व्याख्या केन्द्र

धादिम रहस्य-मानन में प्रकृति में मय था। प्राय भी विज्ञान ने मय को जागरित किया है। तब सज्ञान का भय था, भय धविश्वास का भय है। तब भनुष्य सममना था कि उसके पार-पुष्य का प्रकृति की शिन्तियों से सीधा सम्मई है धीर अब बहु यह सममना है कि प्रकृति उसे निर्देश सममनी है। विजेच ने उसे बार-वार जागरित किया है कि वह समने को इतना धरिक महत्व न ये कि वह समने को ही सबका नेन्द्र समस्के। धसल में मनुष्य का सह यहाँ वाहता है कि सबयर छा जाए। वह यह स्वीकार नहीं करता चाहता कि बहु धननी सत्ता का धर्ष नहीं समक्षता।

विवेक के विवास द्वारा मनुष्य का सौहाद एक योर जहा प्रकृति के प्रति घटा है, वहा दूसरी थोर उसमे तर्क-प्रवृत्ति अधिक बढ गई है। वह अधीवस्वास में केवल प्रास्तो-देखा, या नरम्मरा से धाया सत्य स्वीकार नहीं करना पाहना। वह सहव को भी प्रमने सम्बन्ध में सदेव असाधारण करके रेखने का आदी हो गया है। ज्योन्ज्यो वह प्रकृति की व्याखा करता जा रहा है, यो-यो जन्म का मह भी बढता जा रहा है। दिन्सु महबार प्राधि-विकास का ही एक गुण है। वह प्राधि-मान है। पह, प्रधान स्वपन को प्रमुद्धित होना, कीट-पत्रयों में भी है, तभी मृत्यु से वे भी बरते हैं। यह प्रवृत्त्यासक सत्य है। प्राष्ठी ज्यो-न्यों विकशित होता जाता है, स्यो-त्यों उसमे प्रपने को जीवित रखने की, धानद मनाने की प्रवृत्ति बरती जाती है।

भौर प्रव विजान द्वारा हमने देसा है कि घह का यह विचास जिस रूप में हुमा है वह एक सहब प्रत्रिया है। मनुष्य ने घ्रय उसकी कुछ भतन-भरपाई है। प्रभी भी मनुष्य में स्वप्न-पक्त की एक प्रकृति है, जो वह स्वय समक्त नहीं पाया है।

पुराने लोगों ने इसी 'ग्रपनेपन' नो प्रधिक से ग्रधिक समभने की चेप्टा की थी।

इमोलिए कि उसी प्रच्छे तपनेवाले प्रकृति के रूप को अपने मीनर मर-भर लेना थाहता है। क्रनगोमत्त्रा उनने प्रकृति को उसके पुराने मध्यम में ही प्रहुम करने की भेप्टा की हैं। सप्पा विख्याले

यही धाज वा दृष्टिकोण है, जिमें हम नया वह मकते हैं।

वैदिक वृति प्रहेति की राश्वियों को मानव-रूप में प्रपत्ता वृत्ता करने की बुलाता या और अपने पूर्व पुरुषों की बातमाओं की प्रकृति की शक्ति के पास कर देता था।

उपनिषद्•रातीन कवि ने प्रकृति के रम्प ग्रीर भगनक रूप को 'साम' रूप के दिवार में देवा ग्रीर बाहा था कि बहु एक्स्वरता को प्रतिष्टापिन कर सके।

महाकाध्य-पुग ने उसके स्थूल सौन्दर्य को जगा दिया और मानधी सौन्दर्य को समान महत्त्व दिया।

सस्त्रत क्लामिकल युग ने इस मीन्दर्य-विवेचना को स्यूल के साय रूपक जोडब र मूक्तनम सीन्दर्य में परिवर्तित कर देने का प्रयत्न किया और मान्दरीय नैतिक मानदण्ड भी मिलाकर उमने उदार्त का रूप दिया।

मस्ट्रन वा परवर्ती युग दरवारी नाध्य में डूबने लगा । तद प्रहृति की बानना ने ही ग्रधिक बल परडा बगोबि स्थल ही उत्त समय दैप्टि को पकड मना ।

मामन्तीयकाब्यने हिन्दी से स्रयती उत्ती परस्परा कोविकसित किया। यूफीकवियो ने प्रकृति में स्रयते रहस्य को प्रतिष्ठापिन करके नये मानवोद्य मुन्द साने का पुला किया।

गल घोर भक्त कवि प्रकृति को मानव के सन् और ब्रस्त् के संघर्ष में हो देखते रहें । उनके सामने विगुद्धनावाद भी या घोर योग जीवन ने भी उन्हें ऋगार के क्षेत्र में प्रेरणा दी किन्त वे नगा कुछ नहीं कह सके ।

रीति और रीतिमुक्त उत्तर मध्यकालीन विवन्नमाज ने प्रकृति को विशेष महत्त्व ही नहीं दिया। मेनाप्रति ने माणा के मौत्युं में सब्कृत के माबो का विष्टपेषण किया, किंतु वच यो गए कि हिन्दी में बद्ध सब नवां था।

उपारेयनावादी बिवयोने भी प्रहृति के रूप को बेवत प्रपत्नी वात को पहुंचाने भीर परिषाटी के रूप में निया। प्रहृति के प्रति भागें सुन्नीं वब द्वायावादी विवयो ने नया जानरण सावर प्रनृत किया। ह्यायावादी विवयण ने प्रहृति के प्रति यूरोप से भवस्य भेरमा पाई निन्तु उनेका दृष्टिकोणनया पा, यद्यपि उसमे ब्यक्तीकरण ने दुरुहत । सबस्य उरान्त कर दी थी।

धात्र का कवि धवती सारी परम्परा को जानता है और इनोतिए उसमें हम विकिथना पाने हैं। यह विकिथना मसार के किसी भी साहित्य के लिए श्रेयस्पूर्ण हो सकती है, क्योंकि इसमें प्रकृति भपने विभिन्न स्वरूपों में धाकर धपने नये मून्यों को प्रति-स्वरुपित करती है।
——रिनेय राधक

# सत्य, शिव और सुन्दर

ब्राधुनिक काल वा प्रारम्भ भारतेदु हरिरचद्र से माना जाता है। द्विवेदी-पुग श्रीर उत्तरे उपरात छायावादी गुग तक को आलोचको ने स्रिष्काश स्रध्ययन से स्थमे मनन का विषय बनाया है। जयशकर 'असाद', मुमित्रानदेन वत, नूर्यकात त्रिपाठी 'निरासा', महादेवी वर्मा छायावादी थुग के प्रमुख श्रीर माने हुए कवि हैं। इनके उपरात भी हिंदी में बहुत कविता लिखी गई है, किंतु उस कविता का कोई सहानुभूतिपूर्ण विवे-चन नहीं हो सका है।

[१] हिंदी में झालोचक-वर्ग बहुषा मध्यापकों के वर्ग में से माया है, और इस-लिए उन्हीं विषयों पर प्रधिकतर लिसा जाता रहा है, जोकि परीक्षा से सर्वायत हो। काव्य तो दूर को बात है, हिंदी में उपन्यास प्रधिक जनप्रिय हैं और उन उपन्यासों की प्रवृत्तियों तक पर निरपेक्ष इंग्टि से नहीं लिसा गया है।

[२] बावार्य रामबद्र गुनत के बाद पुराने झालोचका ने प्रधिकाश केवल पिष्ट-पेपण किया है। चन्होंने दोप मधिक निकाले हैं, बालोचक का मून कर्तव्य नहीं निभाया है। भीर यह मून कर्तव्य यह है कि बालोचक पाठक और सेलक के बीच की कवी है। दुन्तरेथ से हतारी शिक्षण-व्यवस्था में प्रध्यापकों के प्रभूत्व के कारण आलोचक होता लेवह को गिरा देने के पर्याप के रूप में ही साहित्य में प्रचलित हो प्या है। ब्रालोचक का समली कार्य लेवक के नतीन प्रयोगी, उसके प्रधी में महिताओं को प्रकट करते हुए, उसकी विमयों को इस दय से दिलाना है कि लेवक और भी मन्द्रा लिस लक्के ते

[३] उटने हुए थालोचक चीध्र प्रसिद्ध हो जाने के लिए साब्दिक चमस्कार दिलाकर विच्यत में बुट जाते हैं भीर नये किन को फिर भी कोई प्रासाप्तद साथी नहीं मिलता जो व्यक्ति या सस्या के परे, समस्य साहित्य को श्रृष्टि में रखकर, साहित्य की प्रभिवृद्धि के दृष्टिकोच से सहयोगी वन सके।

[४] बैजानिक मौतिकबारी दर्गन ग्रीर यूरोप के विभिन्न वादों ने हिंदी के भाषोचकों ना ज्ञान नई दिशा में बढाया। पुराने भाषोचक रख, ध्वनि, रीति, बन्नोक्ति ग्रीर मतकार में भाषोचना समान्त कर देते थे, उनके बाद धावार्य गुक्त ने भारतीय ग्रीर पारवात्य दोनों ही दृष्टिकोणों को भपने सामने रता। नये साबोचकों ने उसके

बाद धुरीप के विभिन्न बादों को ही जीवन का समस्त तथ्य बना लिया और सात्र प्रगति-वाद, प्रयोगवाद, ग्रस्तित्ववाद इत्यादि ग्रसस्य वाद दिश्वाई देने लगे । यह सत्य है वि पश्चिम ना कुछ प्रभाव ग्रवस्य पदा है, परन्तु यह मस्य नही है कि जिस दृष्टिकोण को लेकर बाद-मार्गीय बातोचना हो रही है, वह बस्तु-सत्य का भी ठीक ही बिरनेपण करती है । मार्क्सवाद, जिसका वर्षाय वैज्ञानिक भौतिकवाद है, चिनन ग्रीर विश्वेषण के रूप में ग्रवस्य नया है, किन्त वह भारत में पहले भी मौजूद था, ग्रयान भावनंबाद जिन मामा-जिक परिस्थितियों का जिस्तेषण करता है, वे परिस्थितिया भारत में भावर्स-से भी पहुरे मौबद थी और बद्यपि के ठीक बुरोप की भाति नहीं थी, फिर भी वर्ष-अघर्ष मौजूद या और हमारा समाज मुक्ति के लिए सग्राम कर रहा था। पढे-लिखो के साब्दिक चमावारों से मावर्षवादी वस्तुस्थिति भारत में नहीं आई, बहतो यहा भी जनना के सघरों में पहले से विद्यमान यो । उनका ठीक से विवेचन होना चाहिए था। परन्त टट-पुजिया वर्ग के चितको ने उस मार्क्सवाद की ग्रपना मानसिक श्रीज सममा और बुह्सिन ... समाजशास्त्र का जन्म हुन्ना जिसने दायरे बाघे और साहित्य को ऐसा स्टब्स देने का प्रयत्न क्या कि वह सम्पूर्ण जीवन का प्रतिनिधित्व कभी नहीं कर सके। एक धोर जब यह हो रहा था, दुसरी घोर प्राने 'कला कता के लिए' सिद्धान से प्रभावित स्रोग भी थे। इन सीगों ने बर्ग-सवर्ष के ही मध्य की भूठा देना चाहा। एक और जहा कुरियन समाज-शास्त्री विवेचन ने वहा वि साहित्य जनता के लिए हैं, और उनका मुराधार समाज-पश है, तो वह यह भूत गया कि साहित्य का ऋष्टा सामाजिक प्राणी होते हुए भी व्यक्ति है भीर उसका ग्रयना एक व्यक्तिस्व है, और यह व्यक्ति-मेघा ही सर्वन करती है, नी दुमरी श्रोर 'क्ला क्ला के लिए' वालों ने कहा कि समाज कुछ है ही नहीं, व्यक्ति ही मब कुछ है, ग्रीर व्यक्ति के लडग रूपों का ग्रव्ययन प्रम्तुन करनेवाले बाद जो यूरोप से फायह-बाद, प्रकृतवाद, श्रीलाखवाद बन कर ग्राए, उनमें वे ग्रंपने की हाइ सेने का प्रयत्न करने लगे। यह सब केवल प्राधिक सत्य है कि उन बादों का हिन्दी पर बटा गहरा प्रभाव पडा है।

रन' सम्प्रशय का जन्म सामत-काल के विकासशील युग में हुया था, घन दास-प्रया के आगे होंने के कारण उनमें समाज का कल्याण करने की शक्ति थी। परन्नु सामन्त-काल के मितरोधों और उच्चवर्गीय प्रभुत्व ने काव्य को, रम के विरोध में च्वित, रीति आदि के आस में, प्रभिन्नारत वधनों में वाघने की चेच्टा की, और यद्यपि वे समाज को उतना भीखें तो नहीं हुए सके कि 'रम' की प्रगति को भुटा दे, परन्तु उन्होंने काव्य के दाह्य परिवेद्यन प्रवश्य दुरुह बना विष्

प्राचितिक काल के पूरीघीयवाद मध्यवर्गीय टूटपूजियो की वर्ग-व्यवस्था मे से अप्त ले सके हैं। उनमें आधुनिकता का फैसन है, और वे भूतत सामनीय काव्यसास्त के प्राप्ते नहीं ले जाते, बन्कि में। कहना उचित होगा कि सामनीय काव्यसास्त्र के प्राप्ते नहीं ले जाते, बन्कि में। कहना उचित होगा कि सामनीय काव्यसास्त्र जहा प्रपत्त दायरों के भीतर पूर्ण है, बढ़ा में प्राप्तुनिकदाद उत्तने भी पूर्ण नहीं हैं। आवार्य रामच्य मुक्त ने रहें 'व्यक्ति-विच्यवाद' में रखा था, किन्तु ये तो उत्तते में ही समाज नहीं हो जो । इस बच्च में ये 'रम' वान्या पकड़ते हैं। और यह इनका मबसे बड़ा सोलागत है, क्योंकि मीन्दर्य के प्राप्तुनिक ती त्रिमें प्रपत्त के जन्म प्राप्तुनिक को सम्प्रम को तमी रामच्यवाम में उच्चतर समक्ता गया है, जब उससे साधाराणीकरण का माध्यम स्वीकार कर लिया गया है।

यौन प्रवृत्तिया जो 'हाल' से चली भ्राती हैं भीर पूरे रीतिकाल में सामतीय बन्धनों में रहीं, वे ही इन नये बादों में नये रूप लेकर उठ खड़ी हुई हैं।

इन समस्त प्रगरिपक्वताम्रो ने साहित्य पर पातक प्रहार किया है । यहा कवित्य को न देनकर, उसकी कविता को न देनकर, कविमान को हो देना जाता रहा है। रहम्पवादियो द्वारा समावृन कविकुतगुरु रवीग्द्रनाय ठाकुर ही प्रवचाने मे 'श्वजला- प्रवन' जिल पए मे, नहा उन्होंने जीवन के कठोर सत्यो का वर्णन करते हुए समस्त्र विद्रोह न्यायोपित बताया था। रोममीपत दर्धारी-पुगीन किन था, किन्तु उसकी रचनाम्रो मे मध्यवर्ग की उठती चेनना का प्रतीक दिलाई देता है। तास्त्र व्यवद्र विद्राह प्रहिमावादी था, परनु की निजन ने उमे भानि का वर्णण कहा है। प्रेमचन्द्र प्रहिमावादी था, वर्णन किन स्वत्र को स्वत्र के हैं। हमनु उसने किशानों की चेतना को उठाया मीर राष्ट्रीय प्राहोनन को माने कराया।

मात्र भी बबियो की बाणी को देखने की सबसे बडी मावस्वकता है, न कि उनके बाह्यवन्यनो, गुटो, पार्टियो, मादि को ही देखकर उन्हें छोड दिया जाए। माने मापको इसके मनेन उदाहरण मिलेंगे, कि 'भरे, यह इसी व्यक्ति ने जिखा है।'' ऐसे बाइय तक भापके मुख से निक्त जाएंगे।

[४] हमे एक म्रोर काव्य की वाद, व्यक्ति, देश, काल म्रोर वर्ग मूमि के ऊपर उठ-

१ दित्रण, 'प्रगतिरान्त साहित्य के मानदण्ड', ले॰ रानेय रापव

कर देखना धावस्थक है तो दूसरी घोर यही हमारे काव्य-विस्तेषण के मूलाधार हैं। इस वाक्य को पड़कर विभिन्न मतवाले प्रसन्न घोर रूट हो उठेंगे जबकि यह एक सत्य है। देखने को यह निवान्त विरोधी भाषों का संघट्ट जान पड़ता है, परन्तु यह कठोर और यथार्ष वस्तुस्थिति का ही परिचय है।

एक रमवादी, इसकी पढकर पहले भाग से ग्रसतुष्ट होना, जो साधारणीकरण के सिद्धात की रसवाद का मुलाबार भानता है। जो रसवाद की परवर्ती व्यास्यामी की मानता है, वह सौन्दर्य के निर्पेक्षिताबाद के सिद्धात की पुष्टि जानकर पहले भाग से प्रसन्न होगा, ग्रौर वाक्य के दूसरे भाग में इसी कम से उल्टा ग्रसर होगा। ध्वनि, वजोकि, धलकार, रीति भादि का अनुयायी केवल पहले भाग की ही स्वीकार करेगा। प्रकृत-वादी जो प्रकृत जीवन का ही वर्णन चाहना है और नानता ही जिसकी शक्ति का स्रोत है वह पहला भाग स्वीकार व रेगा । प्रयोगवादी, पस्तित्ववादी का भी यही हात होगा, जबकि समार्थवादी, भीर प्रगतिवादी इस वाक्य के दूसरे भाग को ही ठीक समभेगा। इस बात को ग्रव मैं स्पष्ट कर द। कबि किसी काल-विशेष में, देश-विशेष में जन्म लेता है। वह किसी वर्ष-विरोप में पैदा होता है। और किसी 'मत', 'सिद्धात' स्रम्था 'बाद'-विदोप का प्रभाव स्वीकार करके लिखता है , यह हो सकता है कि वह 'थाद' का प्रत्यक्ष हप से ग्रमसरण करे. या कोई 'बाद' ग्रप्रत्यक्ष रूप मे उसके काव्य से परिलक्षित हो। कवि व्यक्ति होता है भौर उसका व्यक्ति भी उसके काव्य में प्रकट होता है। प्रयोग . देश. काल. वर्ग. बाद. भीर व्यक्ति — ये सब बातें प्रत्येक कवि में प्रत्यक्ष या श्रप्रत्यक्ष रूप में प्रकट होती हैं। किन्तु कवि इतने में ही सीमित नहीं हो जाता। देश, कात, बर्ग, बाद, और व्यक्ति -- ये बार्ते कवि मे आवश्यक रूप से सम्मति हो नही पाती, असम्मति भी पानी हैं, प्रयान वह बावस्यक रूप में ग्रंपने देश, बार, वर्ग, बार भीर व्यक्ति के स्वायों को ही पोषित नहीं करता, वह विरोध में भी लिख सकता है। बोर्ड देश धानात हो, कोई वर्ग प्राकात हो तो यह प्रावस्यक नहीं है कि उस प्राक्तता देश का कवि प्राकात देश की मोर से नहीं तिस्न सके। रहस में कृत्यित समाजशास्त्रिमों ने चात्सनाय की मिभजान भौर कुलीन कहकर उसके साहित्य को भी धभिजान भौर कुलीन कह दिया था । यह उचित नहीं हुआ, क्योबि जामें सा धनजाने तात्मताय ने अभिजात कुलो के समान की जपन्यता का पर्दोपाश किया। प्राजभक्त मोलियर ग्रंपने नाटको में उठते हुए व्यापारी मध्यवर्ष का मजाक 'उदाने उदाने प्राप्ते हैं। द्वास्त्र सामनीय समाजाही, बडे बाट गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो मूलाधार हैं, वे कवि को पूर्ण रूप से बाध नहीं लेने । इसवा सबसे बढ़ा प्रमाण यही है कि ग्राधुनिक काव्य में जनता वा पढ़ा इतनी जोरों में प्रकट करनेवाले कति जस टुटपूजिया वर्ग में से खाते हैं जिसे 'दूसमूल' वर्ष की सजा दी गई है।

साहित्य का सप्टा व्यक्ति होता है और व्यक्ति के महत्त्व को साहित्य में राजगीति को आि क्रुंठमा नहीं जा सकता । व्यक्ति राजा होने पर भी दिरह के दु ल से
दु सी होना है। और कला के लेन में, मर्पोन् सत्य के क्षेत्र में, कलाकार निलते समय,
चाह कर भी, प्रपने को रोक नहीं उचता, उसकी कला बोलती है, बौर कला क्योंकि
सन्य पुरप्त-याहा है अल उत्तम पृश्य का समस्त बन्धन भी भाव-माध्यम को मको ममें
बाप मही गाता । व्यक्ति मून होता है, परन्तु काव्य का वृक्ष खड़ा होने पर, प्रपनी साथ
को परलने की तीक्ष दृष्टि के सहार दें है, प्रपनी हाले प्रपने-पाग फैताता है भीर जो कल
उस वृक्ष में भाते हैं, महान कलाकार नि सन्देह, उनके विषय में नहीं जानता। उत्तर
दिस् गए गेक्सियनर, और ताल्सताय के उदाहरण इसे स्पष्ट करने के लिए काफी हैं।

त्रिस प्रकार राजनीति में पार्टी के सदस्य अपने व्यक्तित्व को एक ध्येय में समपित करके सामृहिक नियोजन में कार्य करते हैं, उसी प्रकार लेखक नहीं कर सकता, क्योंकि लेयक को ग्रंबी, कल्पना, प्रतिमा, व्यक्तिमठ वस्तु हैं, और वे सामृहिक नहीं

हो सकदी ।

कवि-व्यक्तिरत जहा इन वातो में बष नहीं सकता, बहा वह उच्छुबल होने का प्रधिकार प्राप्त नहीं कर सकता, ब्योकि व्यक्ति की यह समस्त स्वतनतासामूहिक जीवन के लिए हैं, धौरसमूह के लिए ही कता एक माध्यम है जो जीवन को सुन्दर से सुन्दरतर बनाती है। यो दोनों एक-दूसरे पर आश्रित सच्य हैं।

सेनिन ने साहित्य के निए पुकार वजई थी कि साहित्य को पार्टी जन साहित्य होना चाहिए। सेनिन को विकृत करनेवाले लोग इसका यह धर्ष लगाते हैं कि वह पार्टी-निषमा- वली को ही साहित्य मानता था। यह बहुत वडा भूउ है। लेनिन स्वय गोकों से कहता था कि ताल्यताय से निवना सीखो, और वह मायकोयकों से पुस्किन को ऊचा स्थान देता था। लेनिन का धर्ष या कि 'कला कला के निए' वाले कांच्य को दुक्ट बनाते हैं, उसे जनता के लिए सीवकर ताओ और स्वतन्त्र करो। एस की तल्कालीन वरिस्थिति से सहस्त्र कार्ति की सूमि तैयार यो और बहु नारा भी ठीक था। किन्तु किर सस में बदलती परिस्थितियों में भी उमन गरे को किनार वी नाव की तरह इस्तेमान किया गया धीर इतिया एहरेनवर्ग में धव सेवकों की समस्या उठाई है। जिनमें वजीन स्वीकार किया है कि कार्ति के बाद के स्म में प्रभा मेहान साहित्य का सुबन नहीं हो सका है।

प्रसिवयत यह है कि रस के काव्यसास्य में साधारणीकरण के सिद्धात का ज्ञान नहीं था। लेनिन ने प्रयने पुग के प्रमुख्य उसीको स्थापित करने की चेट्य की थी। उसकी गव्यास्पकना को न समक्रसकने के कारण बाद के लेखकों ने विश्य के साथ पूर्ण न्याय नहीं किया। भारत एक प्राचीन देश है और इसमें अधिक मत पैदा हुए, जिन्होंने काफी प्रय-

१ 'राहरर ण्एड हिन्द अबक्ट हिन्दमं

हात प्राप्त क्रिने के कारण भीरे-भीरे खूब विकास किया। इमीलिए हमे एक वडी विचा-सत प्राप्त हुई है और हम उसपर सहूतियत से विचार कर ककने की परम्परा पा सके हैं। हमें इस की मतियों से शिक्षा लेनी चाहिए, तभी हम प्रपने देश को क्स की भाति समृद्ध बना सकते हैं।

धत हमारा वाक्य स्पष्ट हो जाता है कि कवि अपने देश, काल, वर्ग, व्यक्ति तथा बाद मे रहकर भी उनसे पूजतमा बचा नहीं है, तवापि वह उन्होंने है और उच्छुसल भी नहीं हो सकता। यह तथ्य कोई समन्वयवादी नहीं है जो समाज की मागे बढ़ने से रीके या वर्गहीन समाज की स्थापना के सिद्धात को काटता हो । इसमे एक ऐतिहासिक न्याय का पालन होता है कि कवि को उसकी विवता के माध्यम से जाचना चाहिए। बहुत-ने लोग जो ग्रपने को प्रयोगवादी बहुते हैं, वे बस्तुत पुरानी वातो ही को भीर भी सहे-गले ढग है प्रस्तत करते हैं। कुछ कवियों को शिकायत है कि उनको प्रमृति के पथ पर नहीं मान जाता, और उनके शास्त्रत संख के वर्णन को काव्य नहीं सपभा जाना । ईमानदारी करें बात तो यह है कि शास्त्रत संख को वे नही जानते ,न कोई जानता है । उनका बहना संस्थ है कि के बल मजदूर-किसान पर धिसी-धिसाई परिपादी पर लिखना प्रगति नहीं है। परत् जनका यह कहना सत्य नहीं है कि उन्हें वेदान्त के रहस्यवाद की छुट देने में ही प्रगति है। देदान्त का वह रहस्यवाद जिसने समाज को शक्ति दी है, समाज की रुदियों का विरोध क्या है, जैने विवेकानन्द ने किया था, वह तो सब ही प्रगति मानते हैं , परन्त जो रहस्य की अनुभूति, अप्रत्यक्ष के मूर्त विधान के बिना, व्यक्ति-वैचिश्य के गर्तों में से जाती है, और विसी भी प्रकार को सुन्दरता का बोध नहीं कराती, वह किस प्रकार प्रगति वहला सकती है यह समक्ष्मे बाना दुष्कर हो है। क्वीर जब 'हसा' को 'मलबुन' बीर 'जब-हत' के परे ले जाता है तब उम वर्णन के दुरुह होने पर भी, जहा एक ग्रोर उसमे विस्मय भीर कल्पना का भावन्द है, वहा दूसरी थोर उसमे एक उस दर्भन का सामाजिय सत्य भी है, जो हिन्दू और मुगलमानो के आश्वन समक्ते जानेवाले देवी-देवतामी की छोटा करके प्रमाणित करता है कि सत्य इतने मे ही सीमित नहीं हो जाता है। साधारण कोटि की कल्पना के पत्त लगावार नपे-तुले घाचास मे जिनका पश्ची उहता है, और चक्का लगाकर भटकटाता है, उनमे पिथ्यपेयण के बार्तिरिक्त कुछ रह नहीं जाता। बाध्य जहां समाज-सर्य नो घोषित न रता है, वहा वह श्रमिव्यक्ति में मनुष्य के माधुव भाव नी श्री को श्रमिवृद्धि भी करता है। इसी ग्रामिन्दि को प्रकारातर में ऐंदिल्स कला की साकेतिकता (Suggestiveness) कहता था, जी निश्चय ही 'ध्वनि' की ही सापेश स्वीवृति है । विचारी का ताबात्न्य नहीं होने पर भी जो कभी-कभी नाव्य मे प्राप्त-द प्राप्ता है वह इसी सारेतिरता का याद्यिक मानन्द है, जो कता का एक प्रथमात्र है, सपूर्णता नही है। यदि नयं कवि ने वहां बलम चनाई है जिसपर महारवि वहें ही अच्छे दग से तिम नुवे हैं तो नया गवि

प्राय उनके सामने दीनहीन सर्गता है। दिचारों से भेद का प्रस्त नहीं उठता, उनका तो सेसन ही ऐसे विचारों में स्वय दिख्ट है। सेकिन जहा तरे कवियरे ने अपनी मौतिक्तर दिसाई है, यहा उन्होंने श्रेष्ठ काव्य निवा है।

[६] हम 'वाद' का बिरोब इसलिए करते हैं कि हमे प्राप्तिक काल का कोई भी किय ऐसा नहीं मिला बिमने एक बाद में वंदी हुई कियता निसीहों। बाद हैं, परन्तु कोई किय एक ही बाद में बद्ध कियता नहीं लिख सका है। मत बाद-भूमि पर दिवेचन करने में बहुन में किय परिश्व के भीतर हों नहीं धाते और हम बालाविक मून्याकन करने में बहिन रह जाने हैं। हमे बाद को वनीही बनाकर उनपर किया को फिट नहीं करना है, बर्न पहले कवियों के देखना चाहिए, तब उनका वर्गीकरण करना माहिए। आचार पराचन्द्र मुल्ल के ही बहु सर्वेद्वानिक परिगाद हाजी थीं। बे ऐसा वर्गीकरण करना पहले कर नए हैं कि प्रतान कीर रासाक कीर को किया निर्मा कर्मी हम पराचन और रास्वान कीर हम ते की कुटकर कियों में बात दिए। यह स्वाम कीर का निर्मा हमें हम कीर स्वाम कीर हम ते की स्वाम कीर स्वाम कीर की स्वाम कीर स्वाम

इनीतिए ग्रावस्पकता है एक व्यापक सुमि की 1 काव्य में 'वाद' की उतनी प्रमु-सता नहीं होनी चाहिए, जिउनी जीवन ग्रीर उसके विभिन्न रूपो की 1

यह समाधि-कात है। इसमें सब कुछ बदन रहा है और नरी-नये दृष्टिकोण उप-स्थित हो रहे हैं। बहुन से निव जो पतायनवादी समफ्रे जाते हैं उन्होंने जीवन के बहुत सुदर पमार्थ चिनम किए हैं। अभी तक नये कवियो की निष्पक्ष मालोपना नही हुई है। जाने-माने रूप से कुछ दम्प के नम एहैं भीर उन्ही-जन्हों लोगों के दो दो उदस्य रेकर नाम मिना दिए काते हैं। और वस्तु-विषय या विचारवारा का साम्य हो उनके मुख्याकन का प्राथार होना है, जबकि काव्य केवत विषय-वस्तु पर निर्मर नही होता हो उनके सिए स्वय-समेक सबतों की मानस्यकता होनी है, जो दिन्दी भी वस्य विषय को काव्य की सता दें सके। प्रालोककों की यह प्रवृत्ति हिन्दी के लिए दुर्मान्यपूर्ण है। वेब है कि प्राचीय रामकन्त्र सुक्त प्रमृति नमी ऐसे प्रानोचक हैं, जो प्राय प्रयक्त किय हैं और इसीलिए वे सोग यदि एक बहुत भाकोत मन ही मन रखें तो कोई ऐसा प्रास्वर्य भी नही है। मैं यह बात व्यक्ति-मुक्त स्वान पर प्राप्तित नहीं करता, वस्तु नह तम्य यह सकट करता है के हाल सन्ते बतेना के प्रति जो भास्या है, उसमें मध्यापकी सहबा है और वह दनके पौरव के लिए सन्तय नहीं है।

में यहा बिन्तार से इस विषयपर नहीं लिखूना कि कविता क्या है ? यहा इनना कह देना काफी है कि काव्य जीवन की सर्वांगीण स्थिति का वित्रण करनेवाली अनुभूतियों धौर भावों का वर्षन है। वह धरने गुणानुकप समाज की परिस्थितियों में जन्म लेता है, पनना है भौर प्रयत्ने गुणका निर्माण करता है। व्यक्ति की वे प्रतुस्तिया जो केवल उद्यो

र विमार के निए देखिए, 'काव्य-क्ला और शास्त्र', लेसक रागेय राघव

31318

आधुनिक हिन्दी कांवता વિષય



डा० रांगेय राघव

राजपाल एण्ड सन्ज्र, दिल्ली

# क्रम

भिका माय, शिव ग्रीर सुन्दर ŧ٦ सामीप्य ग्रीर संगर्व के ग्रालस्टन Yо र्श्रास्या ग्रौर मून्यास्त G O प्रभिक्ष्यदिन ग्रीर विद्रान tex. संवेदना झीर स्वानभरि 188 **√**प्र∓त धर्म ग्रीर दर्शन きをち समात्र ग्रीर यूग-मीमा Pete ग्रान्म ग्रीर लोकसंबहन २३४ ग्राप्टेय ग्रीर विकासरण २५६ बरालीकरण और सामंत्रम्य ₹Ee र्भानव-सम्कृति 3 e E नहीं थी, वरन् भारत परनजता की बेडियो में जकड़ा हुआ था। यह परतजता केवत राजनीतिक ही नहीं थी, इसके साथ एक सामतीय जर्जर व्यवस्था भी थी जो समूर्यक्ष से भारत की महत्व अपने अपने के पिता है थी, क्योंकि प्रयोजों ने सामनीय जीवत सुर-तथा मधीनों के साथ-साथ भारत से पदार्थण करने पर भी यहां का सामनीय जीवत सुर-तित क्षोड़ दिया था। परिस्थित के इस भेद ने नहीं दुकहता पैदा को जो हायाबाद में भक्ट हुई। रोमासवाद इगतंद में जनीयद हुधा क्रोंकि उसमें तस्यों में नवीनता का विकाम धिक था, मेली, कीट्स, वायरन भादि बनता में पहुचे हुए कवि बने, जबकि भनाद, पन, निरासा, महादेशी भादि भन्नी भीमताठ व्यवना के कारण पटे-सित जोगो तक ही सीमित रह सके। इनमें सेली, वायरन जीस समान-पदी नहीं रह सवा तथा न पुरिकत जैसी वनप्रियता ही इन्हें मिल सकी, जो स्वय स्वतन्त्रना का हाथी था भीर

हिन्से का रोमान्सवाद अपनी मिल्न परिस्थितियों में बदला हुआ था। द्वाया-वाद के रूप में प्रतिकत्तित गह धारा अपने उद्दाम केय से बही। इसने जो अपनी व्यवजान से लोगों को अपल्लन किया, पुराने लोगों ने इसना थोर विरोध किया, परन्तु नये मध्यवायों तर्ष्यों ने इसना मुक्त करूठ से स्वागत भी किया। धीरे-धीरे हिंदों में व्यवजा-त्मवता-भरी इस संनी दो इतना प्राथ्याय पिल यान कि सीती छुया आज भी लीछा कही छोड सही है। प्रयोगवाद इसीको वक्ड के बोच्छा में है, किन्यु वसीकि प्रयोगवाद में छागवाद का समावन्यत नहीं है, वह केवल व्यक्ति-पन्न को लेकर बोडा होना वाहना है। प्रयोगवाद की इस्हार शैली में ही समाप्त नहीं हो आती, वह भाव की भी प्रमिन्यिति को वक्ड हो है धीर रोमाखवाद का अन्हज्यन उसमे यपने नवीवतम रूप में आता है, जो मूलन यौनवाद है। योनवाद, मामलवाद, सादि हिंदी में बहुत गिने-माने जाते रहे हैं। यौनवाद शौर पहनवाद में मेद हैं। धिनयार्यवाद उसका घोडासा मिन्य रूप है स्रौर इन बवने प्रमासनिवेष प्रयोग में पाया है। फायड का चिन्तन जिससे योनवाद की पुष्ठपूमि खडी वी है, वह भी काफी हद तक व्यक्ति-स्वातन्य या व्यक्ति-फिन्याल के रूप आवस्तक सम्मने हैं।

[१] यूरोप में पायड के सिंहानों भा गहरा प्रभाव पडा। कायड के निषय में हिन्दी में लिला जा चुना है और प्राग्ड का बहुत बड़ा प्रभाव बनावा गया है। कायड के मनुसार मनुष्य के वो उपपेतन महिन्छ होता है उसमें योन सम्बन्धी मालबाए समाज के बजैनदीत निपमों के बारण समा जाती हैं और वह यौन बिहारिया प्रभाव ने विभिन्न रूपों में प्रकृत करती रहती हैं। फायड की बहुन-मी बातों को यहाँग एउत्तर और जुन ने डीक करने की नेष्टा की, किन्तु इस सबका मुलाधार योन बिकृति ही रहा और वे मुक

# मूमिका

## काव्य में चेतना का तात्पर्य

काव्य तो चेतना का ही पर्याय है, फिर नयी भीर पुरानी का समर्थ तो दूर, पहले इसे ही सोचना मावस्यक है कि उसमें फिर चेतना का प्रयोग ही किसलिए विया जाए। क्योंकि यह या तो विरोत्राभास-मा लगता है या इसमे यह दृष्टि है कि जो बुछ है, हमारी ही पीड़ी है ग्रौर पहले नाव्य में चेतना ही नहीं थीं ! इसलिए इनकी व्याख्या करना उचित है। काव्य तो सदैव से मानव-चेनना का प्रतिविष्य है। जब हम उसे काव्य में दुढते हैं, तब दह बन्नमान ही मिल जाती है। प्रकृति-वर्णन, लोक-वर्णन, समाज-वर्णन, व्यक्ति-वर्णन से लेकर अत प्रकृति तक के वर्णन में यह हमें प्राप्त होती है। प्रतीको या पात्रों के माध्यम से वह ध्वनित हम्रा करती है। ग्रत जब हम उसीपर केन्द्रित होते हैं तब समग्र सप्टिका मानव-मस्त्रिक मे चेनन-रूप जो विबीकरण है, उसे नही देखते, वरन उसे देखते हैं जो मानदात्मा के उत्थान को प्रकट करनेवाली भादना है, जो उसे उदात्त बनाती है। परिपाटी का सौन्दयं पार करके जब लेखनी नयी स्फूर्ति प्रदान करने में समयं होती है, तब हम उसे चेनना कहा करते है, क्योंकि बहुकृत्य-बहुकरणीय जीवन मे कविता एक छन्द-बढ़ता ही नहीं, एक सौन्दर्य है जो जीवन के प्रत्येक कार्य-व्यापार में होती है। यह सौंदर्य ललित बलाग्रो के विविध रूपो मे अपनी भ्रमिश्यक्ति पाता है, भौर लोकहित की कामना भी उसी मौन्दर्य के अवर्गत गाती है। इस प्रकार जब हम काव्य में चेतना देखते हैं तो मानव उस चेतना को नहीं देखते जो मानवीय विकास का परिणाम है, वरन उसे देखते हैं जो सर्वात्म को ग्रपने मे लीन करके उदात बनने की ग्रोर प्रेरित करता है ग्रोर सदरता भी ग्रभिव्यक्ति भी ग्रपना सत्य ग्रौर शिव बनाती है।

### नवचेतना की व्यारया

प्रत्येत युग प्रपते साथ कुछ परिवर्तन लाता है। प्रादिस्थिव बान्मीकि वास्त्य मे प्रादित्वि नहीं ये। उनसे पहले उपनिपदो ग्रीर उनसे भी पहले वेदों के कवि ये। किन्तु महाभारत-युग के प्रत में जब लोक-काव्य के रूप में गेय महाभारत में लोक-साथाए तबह हुटें तब बान्मीहि रामायण वी पुरानी कथा में भी नये सबहेन प्रारम हुए श्रीर क्योंकि कवि ऐहा नहीं है, जो इन्हों बादों में प्रन्तिनित हो जाए। भत हिन्दी में प्रचित इन मान्यनायों का विदल्तेषण बरते समय हम यदि कुछ कवियों के यहा उद्धरण देते हैं, सी उन्होंके उद्धरण हम प्रांग किसी दूसरे बाद के प्रन्तर्गत भी देसकते हैं।

[१०] प्रयोगवाद का एक ग्रसकार 'प्रतीकवाद' है, जो कुछ समय पहले बहना यत से प्रयूवन किया जाता था। हिन्दी मे प्रनीकवाद छामाबाद की शैली मे ही समाविष्ट है, जहा प्रतीको के प्रयोग से अर्थ समभाने की चेप्टा हुई है। प्रतः उसे बिलकूस स्वतन्त्ररूप से ग्रत्य मानना क्दापि उचित नहीं है। रूस में मायकोवस्की के प्रारम्भिक काव्य-काल में साम्राज्यवादी संस्कृति के विरद्ध जो 'भविष्यवाद' नाम से व्यक्तिपरक विद्रोह उठा था, वह प्रनोही का प्रथिकाश प्रयोग किया करता था। हिन्दी में भविष्यवाद का कोई स्पन्ट प्रभाव दिखाई नहीं देता, किंतू प्रतीको का काफी ग्रसर पड़ा है और नपे-नये प्रतीक बनाए गए हैं और बनने जा रहे हैं। प्रतीक अपने असकार के रूप में काव्य का गुण है, जिस्स वह स्वय काव्य नहीं है, क्योंकि वह एक मूर्त की छाया बनकर सावे तिक योजना बनकर ही रह जाता है, उसमे भावको जागरित करने की शक्ति नहीं होती। वह भावानभूति की तीव्रता को स्पष्ट करने में भदस्य लाभकारी सिद्ध हो सकता है। प्रतीक काव्य में इसोलिए सदैव ही बनते रहेंगे। वास्तव मे प्रतीक बाह्याचार है जो युगानुरूप परिस्थितियों से प्रभावित होकर देश-काल के अनुरूप सदैव बदलता रहेगा। उसे काव्य का जीवन-स्रोत नहीं सबभा जा सकता । प्रयोगवाद प्रतीक पर सबसे घ्रषिक निभर है, क्योंकि प्रतीक की नवीनना ही प्रयोग को व्यवना को एकमान ग्रारमा है, उसीमें चमत्वार उत्पन्न करने की बहुता शक्ति हो सबनी है ।

[११] सार्य ना प्रस्तितवाद हिन्दी वे प्रथमा बीधा प्रभाव नहीं दाल मना है।
व्यक्ति सीवन रहना बाहता है धोर निनी प्रकार प्रथमा घिलाल-मात्र बनाए रहना
नाहम है—यहीं दन समस्त बाद या मुन है। इस दृष्टिकोम के व्यक्ति प्रमने को समात्र
की धोर बीनला ने विचा हुया सोमता है। उसे न नैकन प्रमने बारो घोर देन्य धोर
निराता दिनाई देती है, कर्ण्वह स्वय उनके सिट्ट होने की कन्यमा वर सेता है। इस
दृष्टि से व्यक्ति प्रभने को निस्सहाय समक्ता है धोर समात्र में अपंके पान-प्रतियोध को
प्राणवाद को दुर्पमीय प्रधाती-मात्र समक्ते समता है। उसकी सत्ता प्रपने चारो धोर
परिष्ठ सीव लेगी है धोर एक सा बत्तित दूसरे के प्रतितन से सामस्त्र नहीं दूखा,
वर्णवृद्ध स्वयारी ने बच बाता है धोर देने यह बती होता है कि यह समार बास्तव में
उनकी निराद देने में बचा हुआ है।

मिलितनार को ह्यापना पूरीपीय प्रयम महायुद के बाद को निरासा में हुई जब पूनीबादी सर्हति की विभीषिका में व्यक्ति को तगते लगा कि वह हर कोर से मनुरासित है। साम्यवाद पश्चितवाद के दृष्टिकोण से सर्पहारा का बब सीर निरहुस करिताय- हुमा मौर भारत मे भिक होने का तारायं है कि यहा विद्रोह सिधक हुमा। परिवर्तन की सिधक माग रही। नवा समान बार-बार बनाने की वेच्टा हुई। मानवीय मून्यों को वार-बार पुनराकित करने का यल हुमा। यह किसलिए ? इसलिए कि यहा मानव-वादी विचारपारा अधिक फैती, नयों कि यहा समान की व्यवस्था व्यवहार में वही ही असमता पर स्थापित रही। परन्तु प्रत्येक गुग में हुम परिवर्तन देखते हुए भी, उसका अपने से पुगने यूग से एक कथा विकास देखते हैं। राजनीतिक स्वतन्तता या दासता से चनता की स्वतन्तता पर दाता नहीं मिलती। जब नुक्ती-सूर का यून था, तब भारत मुगल सामाज्य के नीने पुरी तरह नुक्ता पढ़ा या, किन्तु किन-वेचना जतनी ही उहाम-प्रत्येक थी। जब विहारी-देव के गुग में मुगलों का वंभव मारतीय जनता पर इतना मान प्रत्येक साथ के नीने पुरी तरह नुक्ता पढ़ा या, किन्तु किन-वेचना जतनी ही उहाम-प्रत्येक सी। जब विहारी-देव के गुग में मुगलों का वंभव मारतीय जनता पर इतना मान प्रत्येक साथ के नीन पुरी तरह नुक्ता पढ़ा या, किन्तु किन वा हो हो, है, चेवना उत्ता ही निवार लाती है। दातता के मध्यकालीन भाष भी वर्तों में भिक्त के रूप में जिस मानववाद को भारत में प्रतिस्वित्त कर दिया गया, वह पहले के यूगों में इतना प्रचण्ड नहीं या, क्योंकि समाज तब इतना जकड़ दह कुरीतिपूर्ण नहीं या जितना वाद में हो गया। इस तरह हम देखते हैं कि 'नये' का 'पुराने' से जो सवध होता है वह 'भावना' ना ही अधिक होता है। है

### उसका स्थापित्व श्रोर सार्वजनीन सत्य

तब प्रस्त यह उटटा है कि युग तो बदलते ही रहते हैं, फिर साहित्य का स्थायित्व धोर सार्वजनीन सत्य क्या है ? मानव-समाज के बाह्य परिवर्तनो की माति मनुष्य के माव-जगत् में उनना परिवर्तन नहीं होता, क्योंकि वह मूलत अपनी प्रवृत्तियों की नीव पर ही एडडा होता है। मन 'मार्व' का स्थायित्व अन्य बस्तुओं की अपेक्षा कही अधिक है। जो साहित्य 'भाव' से सम्बन्य रखता है, वह किसी भी बस्तु-विध्य सारूप को लेकर भी, स्थायी तब सपने भीतर स्थिक रखता है। मैंने इसी दृष्टि से नये काव्य को देखा है। मेरा उद्देश्य केवल उसका परिचय देना ही नहीं था, वरन् उसको उपलब्धियों को भी मनन के योथ जानकर सामने लाना था, उसकी सुन्दरता को प्रकट करना था।

युग के प्रस्त बदल जाते हैं, मानव प्रपत्तों पीडी बद पीडी बलती सास्कृतिक पद-म्परा में उस एकपून चेतना को देखता है, जितमें मानव का उदास रूप, उसका सीन्दर्य चलना बला जाता हुमा दिलाई देश है। यह मानव ना भावपक्ष हो है। उसका मयातम विजीव एप प्रपत्ते में कोई रिशेषता गही एसता। वह तो उसका चाहता है जो उसे आगे मा पम दिलाए, उसके सामने पश्च को चौडा करता पता लाए। नमें यूग देस कार्य की प्रोर जो प्रयत्न हुमा है, बहुँ हमने यहा माने करता का लाय बनाया है। इसमें कितना सार्वजनीन भीर मार्वकालिक है, वह पाठनों के समझ स्पन्ट रखा गया है, घोर वे पडकर हा जान मक्ते हैं कि वे इसमें से विजना इस योग्य पाते हैं। इस ट्विट से मैंसमभरता हू कि था। ग्राचार्यं रामचन्द्र बुदन काव्य की इस घारा को नही देख सके थे।

[१३] भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र के समय जब समाज मे परिवर्तन हुए तो वे काव्य को इन ग्रीमव्यक्तियों के समीप लाने में लगे। उनकी राय में काव्य का सहज होना भ्रन्यन्त ग्रावश्यक या। परन्तु द्विवेदी-काल मे कविना को तनिक उठायागया श्रीर ग्राभिधा-प्रधान होते हुए भी यह काव्य उतना सरल नहीं या जितना भारतेन्द्र-कालीन काव्य या। रीतिकाल की शृगारपरकता कम की गई धौर उपादेयनावाद ने स्थान लिया । इसका कारण दयानन्द के घान्दोलन का प्रभाव था, और राष्ट्रीय सम्राम की भी तसपर लाया पड़ी थी।

किन्तु मध्यवर्ष उतने ही से मतुष्ट नहीं या । छायानाद अर्थात अभिजात शैली का उदय हुया, जिसने काव्य को बद्यपि मुक्त तो किया किन्तु इनकी उडान साधारण जनता में काफी दूर हो गई। व्यञ्जना-प्रधान इस जैली ने भारतेन्द्र तथा द्विवेदी-कालीन क[बता को उननी ऊची कोटिका नहीं माना, जिननी अपनी कविना को। आज भी बहुत-से स्नालोचक यही मानते हैं कि छायाबाद ने भाषा को जो मजाहट दी है, उसकी छोड़ने मे कविता का मेयार गिर जाता है। आधुनिक कविना को जनप्रिय होने से रोकने-बाला यह सबने बड़ा कारण है । प्रयोगवादी काव्य ऐसा ही एक प्रयत्न है जो काव्य को उसी कवी प्रभिजात दीनी का ध्वसावशेष बनाकर रखना चाहना है।

मैकॉले ने कहा था कि ज्यो-ज्यो सम्पता का विकास होता है. कविता का छास होता है। मैकॉल ग्रपनी जगह ठीक या क्योंकि सम्यता से उसका तात्यमें प्रजीवादी सस्कृति के विकास में या। पजीवादी संस्कृति धन को मनुष्य के ऊपर स्थापित करती जा रही थी, व्यक्ति समाज के इन्द्र में आ गया था, और मशीनो का महत्त्व तथा प्रभृत्व धीरे-धीरे प्रकृति के साहचर्य को दूर कर रहा था, और हृदय-पक्ष पर हृदयहीन शोधणसवार होता जा रहा था। सामतीय जीवन मे प्रजा और राजा का सीधा सम्बन्ध था और भाग्य-वाद उस समाज की रीढ़ था। पूजीवाद ने भाग्यवाद के दू स भोगनेवाले भाग की तो जीविन रहा, निन्तु ग्रव शोषण के रूप बदल गए ग्रीर शोषक श्रीर शोषित का व्यक्ति-पक्ष मे भी कोई सम्बन्ध नहीं रहा। यह याद रखने की बात है कि काव्य का जन्म सामू-हिक जीवन के उत्पादन-वितरण के सामुहिक रूप में हुआ था, और व्यक्ति के समाज मे एकातिक होते जाने के साथ, काव्य का भी ह्राम होता गया। ग्रतएव काव्य की जीवत शिवन, भावानुभूति का सामरस्य ही जब नष्ट होने लगा तब काव्य का दुस्ह हो जाना नितात ही स्वाभाविक हो गया। इसके विरुद्ध दूसरी श्रोर सोवियत काव्य का जन्म हुआ, परन्तु वह प्रधिनाम नीतिपरक रहा और उसने प्रधिकाश जीवन की बीरता, करणा मादि को ही छुत्रा, जिसके कारण जीवन का सागोपाग रूप समाज को नहीं मिला। इत दो दूरियों ने एक खाई पैदा की । सोवियत रूस ने काति की और वहा खलाग लगाई गई विभिन्न रूपों मे विकास किया है।

प्रकृति मनुष्य के इतने पास है कि उसने उसके मन के पक्ष को छुत्रा है, तभी उसे

निरन्तर उमके काव्य में स्थान मिलता रहा है। प्रकृति के काव्य में रूप ग्रीर साधम्य का विकास

प्रकृति के काव्य में स्रनेक रूप हैं।

प्रकृति को पहले पक्ष में उपामना के आधार के स्तरूप में निया गया। इसिलए हुमें भीता के म्वरों में उसता दर्शन मिनना है। इसी पक्ष का दूनरा म्वर है भर, जिनके स्तरों में हमें प्रकृति का प्रानक प्रदर्शित होता है। किन्तु कालाविष व्यनित होने पर हम ज्यो-न्यों प्रकृति को ममस्ते गए और सम्यना की भोर प्रप्रस्त होने पर, हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन होना गया।

प्रकृति एक उद्दोपन करनेवाली वस्तु वनी । और उसके माध्यम से मन्यूय अपने रागन्देय को धटना-बदना देखने लगा । इसमें स्मृति का हाय काफी प्रवत्त हो उठा । बासनावस्य विकारों ने इसमें अपना वहन अधिक सालिच्य देखा ।

अस्य ।वकारान इसम अपना बहुत आयक सामान्य प्रमा। अप्रातम्बत रूप मे प्रकृतिको देखना दूसरादृष्टिकोण बना।

इन दो रूपों के प्रतिरिक्त भी प्रष्टति के काव्य में स्वरूप प्रस्तुत हुए ।

प्रकृति का स्वय में भी सौन्दर्ग होता है। महामारत के प्रकृति-वित्रण में हमें ऐसे ग्रनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनमें प्रकृति ध्रमने-आपके ही लिए ग्रन्यन्त प्रभावोत्पादक ढग में चित्रित को गई है।

प्रकृति में अपने उपास्य की सोजना और ब्रह्मस्वरूप सनमकर एकमात्र रहस्य के प्रत्यांन उसे रचकर देवना भी प्रकृति के वित्रण का एक रूप है। प्राचीन और मध्य-कालीन रहस्यवादियों वाऐना ही दृष्टिकोण था। किन्तु प्रविधीन काल में ब्रह्मरूप में तो कोई एकेस्वर नहीं माना गया, नथापि प्रकृति की महानना में प्रयनेको आत्मसान् करने की स्रोपावादी कवियों ने वेटरा की।

प्रकृति पलावन का भी केन्द्र-स्थल बनी। समाज की विषमता से ऊवे हुए मनुष्य ने प्रकृति की वमनीयता को ही प्रपने सामने रखा।

मध्यकाल मे प्रकृति को उपदेशक के रूप में काव्य में चित्रित किया गया । यदि प्रत्यक्ष ऐमा नहीं किया गया तो प्रकृति के गुणों को तुलनारमक रूप में सनुष्य के चरित्र से मिनाकर प्रस्तुत किया गया । यह प्रवृत्ति सतो ग्रीर भक्त कैवियों में हमें मिलती हैं ।

विन्तु प्रहतिका एक और रूप रहा है, प्रप्रस्तृत का मूर्गीकरण। इस रूप में प्रकृति प्रपत्न-आपमें दनता प्रभाव नहीं रखती, जितना प्रपत्ने आधार की उपमा या छ्वि-विधान बनने में सार्यक्ता दिखलाती है।

समाज की रूढ़ियों में बन्द हो जाने पर भी साहित्य ने परम्परा और परिपाटी की

ह्यापेलाने के प्रयोग ने किन को जनता से प्रता किया। प्रौर लिखने, ह्यानों की प्रवृत्ति ने काव्य को जनता के प्रति कये गुग में सीघा उत्तर स्विय्त नहीं दिया। रीतिकाल की समस्त मुक्तक किया बास्तव से राधाकृष्ण की प्रचलित कथा पर आधारित है, दस- लिए उसे भी ममफने में जनता को, जो भी उसके निकट प्रा सकी, उतना करूट नहीं हुंचा, जितना नई कियता हो समफने में होता है, वयों कि प्रवृक्त के उपमान, तथ्य आदि तब ही नये है, प्रोर उनकी पृष्ठपूर्ण भी नहीं लिया है। वये मुक्तक के उपमान, तथ्य आदि तब ही नये है, प्रोर उनकी पृष्ठपूर्ण भी नक बन नहीं सकी है। प्रयोगवाद में तो यह संतित्वा मायवत दुस्हता है धीर प्रवित्वायों काव्य की प्रवृक्त के उसमी नये समाज की नई नीति को स्थापना कर रहा है। प्रभी उमनये समाज की कहरना पूरी तरह से जनता में उतर नहीं पाई है, क्योंक व्यक्तिवादी काव्य से प्रवित्व आधुनिक प्रपत्तिवादी कविता ने मध्यन्योग्य से में इस अभी नये समाज की नई नीति को स्थापना कर रहा है। प्रभी उमनये समाब की कहरना पूरी तरह से जनता में उतर नहीं पाई है, क्योंक व्यक्तिवादी काव्य से प्रवित्व काव्य-माध्यमों से प्रयाना नाता नहीं ओडा है धीर जनता तभी बाव्य को भानती है, जब उसका यगना जीवन उसमें प्रविचित्त्व होता है।

प्रयोग के विषय में जो हमने वताया था कि उसने अपनी ही परम्परा में मौजूद स्थनों में ब्राथ्य बनाया था उसमें एक यह ही है जिसने कान्य को बढ़ने से रोका है।

[१४] इनके प्रतिरिक्त प्रयोगवाद के प्राश्रयस्थल रहस्यवाद और पलायनवाद हैं, जो अभी तक हिन्दी काव्य में बचे हुए हैं। इनका प्रभाव भारत में दो कारणों से है, एक तो दर्शन की परम्परा और दूसरी योग-मार्गों की परम्परा। दर्शन का प्रदन भारत में बहुत पुराना है ग्रौर सर्ताब्दियों ने उसका प्रभाव जनता तक गहरा उतर गया है, जिसका कारण है यहा के जीवन की प्राय एकरसता। खेतिहर प्रणाली इसका मूलाधार है। वह माग्यवाद को जन्म देती है क्योंकि परिस्थितिया बाकाश के बादलो पर निर्भर होती है। जल नहीं बरसा, झकाल पड गया । बरस गया, सेती हो गई । सृष्टि की प्राकृतिक क्रियाभी के ऊपर निर्भरता, मनुष्य को लघुता की ग्रोर प्रेरित करती है और फिर वह मृष्टि के रहस्यो को जान लेने की नेप्टा करता है और यही रहस्यवाद का मूल उद्यम है, क्योंकि जानने ये सगा हुया व्यक्ति जब ग्रमली तथ्य की व्यास्या नहीं कर पाता, तब ग्रज्ञात को अव्यक्त-रूप में ब्रनुभव करने वा प्रयत्न करता है। यही रहस्यवादी भावना जब समाज मे पुरे हित-बर्ग के रूहिवाद के विरुद्ध डठ खड़ी हुई थी, तब उसने समृता में महानना की ग्रीर . प्रेरित किया था, किन्तु उसके बावजूद प्रपंती वस्तुस्थिति मे वह स्थानात्मक ही रहा योग-मार्गं की परम्पराजव रहस्यात्मक जीवन को साधनापरक पद्धति से स्रोजने का यत्न करती है तब वह व्यक्तिमूलक हो जाती है। मध्यकालीन साहित्य तक हम कह सकते है कि मततोगत्वा इसोके रूप काव्य मे प्रतिविभ्वित हुए थे, किन्तु प्राधुनिक काल मे छायाः बाद ने जिस रहस्य की द्वाया देखी, वह यद्यपि पुरानी घारा का ही प्रतिफलन था, दिन

इसके ग्रांतिरिक्त सबसे ग्रंधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि ग्रांतत मनुष्य की भी एक प्रकृति है। शुधा, पिरामा, काम, प्रजनन और मृत्यु उसके वे काम है जिनके प्रति वह प्रपते को विवस पाता । है किंतु यह तो प्राणिमात्र के घम है अत उनकी ही ग्रन नहीं समभना चाहिए। मनुष्य में एक और भी पक्ष है। वह उसका ग्रान्तरिक पक्ष है। जो उसका प्रवृत्ति-पक्ष है, वह तो सर्वसाधारण है, किंतु वह पक्ष जिसमें उसकी सम-दक्ष की अनुभूति है, प्राणि-जगन् में उमकी नुलना नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से जबिक अन्य प्राणी प्रकृति के अगमात्र हैं मनुष्य ऐसा अग है, जो अपने अगत्व को पहचानता भी है और निरार यह भी सोवता है कि ऐसा क्यो है ? वैसा क्यो है ? यह एक विचित्र बात है कि पूर्ण का अग अपने को पूर्ण नम संकर, बस्तु के भीतर होते हुए मी, उनने अलगाव अनुभव वरके, फिर उसमें सामीप्य का अनुभव करता है। यही मनुष्य का नाव-पक्ष है। इस माव-पक्ष का आधार उसकी प्रवृत्तियो पर निर्भर है। योगी लोग प्रपनी प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे खोगी को लोक में ग्रमाधारण माना गया है। इसलिए भरत मृति ने योग-पक्ष को काव्य के ग्रतगंत नही माना है, क्योंकि उसमे सुब-दृख की सहज ग्रीर सर्वसाथारण की सी अनुपूर्ति नही होती। लोक में द्वेप और राग दोनों ही मनुष्य का सचालन करते हैं। यद्यपि प्रवृत्ति-रूप में यह सब मानव में विद्यमान है, दिनु उसके दमन की जगह, उसका उदातीकरण ही बाब्य का मुख्य कार्य माना गया है। एक दृष्टि से काव्य का उद्देश्य और योग का उद्देश्य ममान है, परतु एक मे भावात्मक दुष्टिकोण को अपनाया गया है, जबकि दूसरे में सभावात्मक टग को सपनाकर प्रकृति के कुछ सरा को सन्वीकार कर दिया गया है।

#### योगी होने पर भी मनुष्य क्षवा और पिपासा का तो निराकरण करता ही है। मानव-धर्म श्रौर जिजीदिया

प्रकृति को जीतना ही मनुष्य का कार्य रहा है।

द्यादिम मानव ने जब गुहा ढूड ली थी श्रीर वर्षा मे वहा बैठ गथा था, तब यद्यपि वह मेघ देवना से उरता रहा, तथापि उसने एक प्रकार से अपने को बचाकर, प्रकृति पर जीन ब्राप्त करली थी। ग्रम्तिका प्रयोग सीसकर उसने ग्रपनी सम्यताको द्यागे वडाया। ग्रन्तिकी क्यां ग्रनेक प्राचीन साहित्यों में भी इमीलिए प्राप्त होती हैं। यह एक द्वन्द्र है कि मनुष्य ने मग होकर धगी को घपने ब्रनुकूल बनाने की चेप्टाकी है। प्राचीन ग्रीर सब्दशल में मनुष्य की सम्य जातियों का प्रायः विश्वास यह या . कि पृष्वी ही सृष्टिका देन्द्र थी ग्रीर मनुष्य के लिए ही यह सारी रचना हुई थी। वितु विज्ञान के विज्ञाम ने अमनी इस धारणा को तोड दिया। इससे यद्यपि मनुष्य ने मनती निर्यंतना और लघुना ने नये दृष्टियोण अपनाए, परन्तु उसमे जीवित रहने की इच्छाने नमे प्रकारकी प्रतिस्पर्धाभर थी। इसका दूसरा फल यह भी हुमा कि हैं। मार्क्नवाद ने इस दिष्टकोण को तोडा भीर 'नया 'मानववाद' प्रस्तृत किया जिसमे 'वस्पैव कटम्दकम' की सच्ची व्याख्या थी । किन्तू दुर्भाग्य से वह प्रतिष्ठापना ऐसी नहीं हो सकी कि जनमध्यों में से अपना विकास करती, यह बौद्धिक रही, और उसने समस्त परानी परम्परा को भारमसात करके छोडने के स्थान पर, उसपर एकदम प्रहार किया भीर सबको चौंका दिया ग्रीर वह ग्रपना ग्रलग रास्ता बनाने लगी। इसका कारण था सकीर्णताबाद जिसने सामाजिक विवेचन करते समय रूढिवाद का पल्ला पकडा। मार्क्स ने जिन परिणामी को यरोप के इतिहास का ग्रध्ययन करके निकाला था उन्हें भार-तीय परिस्थिति पर लाग किया गया, जबकि मार्क्स के परिणामों को नहीं उसके सिद्धानो को भारतीय परिस्थिति पर लाग करने की ग्रावझ्यकता थी. उसके लिए इस देश के इति-हास, संस्कृति और परिस्थिति को ग्रपने ग्रष्ययन का विषय बनाने की ग्रावस्यकता थी। इम प्रकार यथार्य के नाम पर सनुधित राजनीतिक दृष्टि-भर रखी गई ग्रौर जीवन के ग्रन्थ क्षेत्रों को छोड़ दिया गया, जबकि माइसँबाद केवल राजनीति नहीं है, वह जीवन के मुख्यों का नया निर्मारण है जो व्यक्ति, समाज और संस्कृति के मूल प्रश्नों को उठाता है .. भौर उनमे इन्द्र नहीं समन्वय स्थापित करना चाहता है, जो मानव-मानव के पारस्परिक हुन्द्र को मिटाकर हुन्द्र को मानव और प्रकृति के बीच मे पैदा करने की योजना बनाता है, भीर प्रकृति भीर मानव का हन्द्र वह ऐसे पदा करता है कि मानव 'ग्रप्राकृतिक' नहीं हो जाए, वरन प्रकृति को अधिक से अधिक अपने लाभ के लिए प्रयुक्त कर सके, क्योंकि मानद अततोगत्वा प्रकृति का एक भाग ही है, और वह प्रकृति का प्रयोग कर सकता है, उसको बदल नहीं सकता। 'रहस्य' और 'शाश्वत' का वह कोई परम्परागत समाधान नहीं करता । [१६] दिवेदीयुगीन काव्य की उपादेयतावादी चितना के विरद्ध छायावाद ने

प्रपता सफन त्यान बनाया, किन्तु योघ्न हो लोग उससे कव उठे क्योंकि युग को माय सागे बड़ने को चेय्टा कर रही थी। इस प्रागे बढ़ने की चेय्टा को मध्यवर्गीय कवा ने ईमान-दारी में देखा और बीड़िक ट्रॉटकोंग ने 'याय्या', 'युगवाणी' का विरवन क्या, जिसमे 'होना चाहिए' की यदत यपनाई गई प्रोर इसोजिए कि के उस बाव्य को 'युग्नीत' कहा। प्रमनियीत काव्य को यह बुनियाद बुढ़िवादी रही। बजाय जन-जीवन में उठर के के, दूर से उत्तर विवेचन किया गया थोर प्रगतिशीत कवियो में मही परम्यस चल पड़ी। दुमरी धोर ह्यायावादी परम्यस तरण कवियो द्वास तोडी गई। हासाबाद व्यक्ति

क्षर कर कार्याचन रस्त्रात् विश्व विश्व हारा तहा वा दा हासाबाद व्यक्ति की मस्ती वा प्रतिक वनकर साथा, जिसने समाज को कदियों पर प्रहार निया । अराज-कताबाद, समर्पवाद, भविषातिवाद भ्रोर विद्रोहशाद फूट निकसा, जो पुराने को एसस्ट नहीं करता था, जिसको मुंबाए फडकती थी, जो प्रचलित पलायनवाद और निरासाबाद को उसाड फेडना चाटता था, परन्तु व्यक्ति का प्राजीय उसकी शक्ति थी, उसका कोई सामाजिक प्राथार नहीं था। यह प्रावाच साम्राज्यवाद के भी विरुद्ध थी। इसने पुरानी धनभव करता है।

धौर घाज भी जन हम विज्ञान की नात करते हैं तब वहा प्रकृति से केवला प्रतित्पर्धा दिखाई देती है। जबकि मनष्य पाहता है सदरता।

सुदरता अपने आपमे कुछ भी नहीं है, वह वो प्रकृति के कार्य-व्यापारों का ही स्वरूप-भेद हैं। उसीको हमने बाहर से भीनर कक उनार साने की चेप्टा की है, अपनी समुदा में उस विराद तत्त्व को सेमेटकर। प्राणी में मुदरता की परख समान रूप से नहीं होती। मुदूर मेच को देखकर नावता है, जिने देखकर सनना है कि उसको उमण माती है जब कह मेच को देखता है। परतु यह स्वभावनन्य भी माना जा नकता है। मनुष्य में मुदरता की अनुभृति बहुत अधिक होती है, ययिष सब मनुष्यों में यह मावना समान रूप से नहीं पाई जाती। बहुन-से लोगों की मुदरता बहुत है। स्पूत होती है, जबकि उसकी अतिसुक्त को सो सामा का सकता की भी साम कि स्वरूप होती है, जबकि उसकी अतिसुक्त को सो साम स्वरूप सह होती है।

### रहस्य-भावना स्रोर व्याख्या-केन्द्र

श्रादिस रहस्य-मानना में प्रकृति में मय था। मात्र भी बिजान ने मय को जातरित किया है। तब बतान का भव था, घव श्रविश्वास का भय है। तब भनुष्य सममना था कि उत्तके पार-पुष्प का प्रकृति की शांतिनयों से सीग्रा सम्पर्क है और प्रव वह यह सम्भना है कि प्रकृति उसे निरीह सममनी है। विवेक ने उसे बार-बार जातरित किया है कि वह सपने को इत्ता श्रीवक महत्व न दे कि वह सपने को ही सबका नेन्द्र समस्वे। प्रसुल में मनुष्य का सह यही चाहवा है कि सबपर छा जाए। वह यह स्वीकार नही करना बाहता कि वह समनी सत्ता का सर्थ नहीं समभ्वता।

विवेक के विवास द्वारा मनुष्य का सौटाई एक घोर जहा प्रकृति के प्रति घटा है, वहा प्रसिर द्वार में केवल प्रास्तो-देखा, या परम्परा से द्वारा सत्य स्वीकार नहीं करना घाइना। वह सहव को भी प्रपने सम्बन्ध में सर्पेव प्रसार के देवने का आदी हो गया है। ज्यो-ज्यो वह प्रकृति की व्यारमा करना वा हते, त्यो नेती उसका मह भी बढ़ता जा रहा है। किन्तु महवार प्राप्त-विवास का हो एक गुण है। वह प्राण-नाज में है। प्रह, अर्थात सपने मतपमन की प्रमुद्धि होना, कीट-प्रताो में भी है, तभी मृत्यु से वे भी बरते हैं। यह प्रवृत्यासक सत्य है। प्राप्त-विवास का हो एक गुण है। वह प्राप्त-वा स्वार्त से भी बरते हैं। यह प्रवृत्यासक सत्य है। प्राप्ती ज्यो-ज्यो विकास होना को त्यो कि से से प्रस्त की जीवित रसने की, मानद मनाने की प्रवृत्ति वहती जाती है।

भौर प्रव विजान द्वारा हमने देसा है कि मह का यह विजास जिस रूप मे हुआ है वह एक सहज प्रत्रिया है। मनुष्य ने प्रव उतको कुछ भवन-भर पाई है। घभी भी मनुष्य मे स्वप्न-पक्ष की एक प्रकृति है, जो वह स्वय समक्ष नहीं पाया है।

पुराने लोगों ने इसी 'ग्रपनेपन' वो ग्राधक से ग्राधक समभाने की चेप्टा की थी।

प्रवानद्योल विवन पर विवेचन करना मन सावस्यक है। 'प्रयानद्योल साहित्य के मानस्यड' में हम इक्तपर विवेचन कर चुके हैं, परन्तु वहां को बाते रह गई थी, उनको यहा सप्ट कर देना भावस्यक है। काव्य बया है यह हम स्पष्ट कर चुके हैं। यहां हिन्दी की समस्यामों पर ही विचार करेंगे।

पहली बात यह है कि व्यक्ति की किसी भी भवस्या में ऐसी कत्यना नहीं की जा सकती, जिसमें व्यक्ति के दिवेक अथवा न्यायवृद्धि को समाज के सम्बन्धों में निर्पेक्ष भाव मे मुक्त करके देखा जा सके। दूसरी बात यह है कि व्यक्ति जब समाज के तादास्म्य में अपने व्यक्तित्व की स्वतन्त्र समाभी जानेवाली जन वित्तयों का परिमार्जन करता है. जो उसके दैनिक-सामाजिक सम्बन्धों में बाह्य बस्तुमों का नियत्रण करती हैं, भ्रथवा यो कहें कि एक-दूसरे को हानि-साभ पहचानेवाली ग्रादान-प्रदान, वितरण, क्य-विक्रय करने-वाली दे स्थिति का माध्यम बनती हैं, तब वह अपने व्यक्तित्व का हनन नहीं कर देतर वह समाज में मशीन का प्रय बनकर नहीं रह जाता। जिसे प्रकार समाज-रूपी सरीर में ग्रास-रूपी क्यब्ति ग्रपने स्थान पर नियत है, पर ग्रपनी शक्ति से दूर-दूर तक को देखने के लिए स्वतन्त्र है, उसी प्रकार व्यक्ति की मेघा भी समाज में कृष्टित नहीं हो जाती। मावर्स ने थरोप की तत्कालीन परिस्थिति में इसी सत्य को देखा था । गडड़ा देखकर भी यदि ग्राख गड़डे में शरीर को ले जाना चाहे, अथवा शरीर के मरने पर आख जीवित रहना चाहे. तो जिस प्रकार ग्राप्त के माध्यम से मस्तिष्क परिचालिन होकर भी भपना मना-बरा नियत्रित करता है, तथा सरीर के मरने पर बाब को भोजन मिलना बन्द होकर बाख का काम ममाप्त हो जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति सारे समाज में ऐसी धन्य भी शक्तिया प्राप्त करता है, जो उमपर नियत्रण करती हैं और समाज के न होने पर व्यक्ति भी जीवित नहीं रहना। व्यक्ति भपनी भाषा, भपना चिन्तन, सब सामृहिक रूप से ही सीखता-सम-भना है। ये दो बातें समस्त मचपं को स्पष्ट करती हैं। 'ऊर्व्वनेतन' की ग्रोर विकास-श्रम में प्रागे ले जाने की जो बात बोगी श्री सर्रावन्द ने कही है वह व्यक्ति की चेतना को समाजगत करके नहीं देखती, जबकि ब्रारविन्द ने एमीबा से ब्रापने विकास की प्रारम्भ क्या है।

यह सार है कि मनुष्प का विकास करोडो वर्षों में हो बाएगा, परन्तु उसका कोई विकास व्यक्तिवादी डग से समावगत रूप को छोडकर नहीं हो सकता। यहा कोइस्तर को बात या जातों है, बिसते नहा है कि योगों और कमिसार दोनों का समयत्त्र ही विकास को मनती मडिल है। मर्थान् व्यक्ति और समाज का यह प्रारमोलति और समा-जोन्तित को और उन्यूष रूप ही भौतिक और साध्यालिक रूप का चरम मिलन है। परन्तु यहा दोनों रूपों के द्वन्द्व के रूप में अस्तुत किया मया है। योग का सर्थ दारीर और मन को सिकासों का नियोजन-मात्र है। 'योग' का विकास भारतीय इतिहास में मयाजन प्रतिमाना त्यर्थ दिया घोर घमर काव्यो को सृष्टि की । पुक्तिन ने अवस्य 'यूजीन योनि-गिन' ऐमा पद्योपन्यात तिला जिसको कथा उसने यपने-पाप बनाई यो। यह प्रकट करना है कि शास्त्रोय पदति से, यदबा किसी भी अकार के चित्रण-मौत्य-पात्र से, कोई भी क्यानक, गुग पर प्रभाद नहीं डासता, जब तक कि उसके भीनर सुण्वायोग कोई विषय नहीं हो। युगानुरूष होने का यह सम्य यह भी प्रमाणिन करना है कि विव घपनी कथा भी यह मकना है, उससे यदि शांचन होगी सो नह युग को प्रभावित कर सकेगा।

प्रवन्धनाव्य को यदापि तिभाना अत्यन्त कठिन है, फिर भी उससे वर्षन-चित्रण के लिए हाय-भाव सुने रहते हैं। दिनकर का 'कुरुक्षेत्र' एक सण्डकाव्य है पौर ग्रोज के दृष्टि-कोण से यह सफ्त है। परेनु इनना पुराना विषय भी गुगानुष्य होने के कारण ही जोक-प्रियना प्राप्त कर सका है, जबकि प० ब्रारकाशसाद मिश्र का 'कुण्णावन' उत्तरा स्थान प्राप्त नहीं कर सहस है, जबकि प० ब्रारकाशसाद मिश्र का काव्य कहीं प्रविक्त उत्तर्वण्य प्राप्त नहीं कर सहस हो प्रविक्त कर है। प्रविक्त कहीं प्रविक्त उत्तर्वण्य है। यविष्त सोक्त प्रत्या है काव्य के उद्युख्य प्रदेश होने का परिचायक नहीं है, तथापि यह नित्यवेद सत्य है कि कला कृति प्रयोग सुनन के युग में प्रयोग सुन को प्रयोग करती है। प्राप्त का स्वत्य पर प्रत्योग है। जाने पर प्रत्योग है। जिनसे वह प्रयोग मानवीय मुल्यो और अनुभूतियोग स्था विवय के बल पर जीवित रहनी है, जिनसे वह प्रयोग मुग का सत्य प्रतिपादित करती है।

किन्तु गीतिकाव्य में यह सरलता नहीं होती। पुराने मानदण्डों के बनसार इसकी यो रखा जा नकता है। भाव, विभाव, अनुभाव, सचारी, व्यभिचारी आदि की वर्णन-स्वत-त्रता तथा गुजायरा से प्रवन्यकाच्य में तो रस की निप्पत्ति हो जाती है, परन्तु गीतिकाच्य मे एक गीन में एक ही भाव का वर्षन होना है, ग्रत यहा उतने फैन फटने का ग्रवसर ही नही मिलता। पराने ग्राचार्यों ने गीत में 'ध्वनि' को प्रमुख माना था। बह भी ऐकान्तिक है। गीन भाव पर ही ब्राश्रित होता है, जिसका प्रवृत्ति ने सबध है, जो मनुष्य-मात्र मे सहज और साधारण है, सामान्य है। वही गीत का हृदय से तादात्म्य कराती है, वही सुलम बनाती है। पराने ग्रीर नये गीतिकाव्य में बहुन वडा ग्रन्तर है। पुराने मुक्तक राबाक्रण-सबद्यी. मा प्रार्थनापरक रहे । जयदेव का गीतगोविंद, विद्यापित की पदावली, रीतिकाल के सबैये भौर न वित्त तथा मूर के पद, सब ही राघाकृष्ण के जीवन पर भवलवित थे। इसलिए एक भी पद या छन्द बाम्नव में स्वनत्र नहीं था। उसकी मावमूमि ग्राश्रय में राधाकृष्ण की कपा के रूप मे पहले से विद्यमान थी। वह मुक्तक उस विद्यमान प्रविद्यत भूमि मे एक विशेष एव बनकर खिल जाता या। यत वह भाज के मुक्तक में भिन्न था। दूसरी ग्रोर मिद्रो, नायो और कवार के गीत हैं, जिनकी रसात्मकताका पूरा प्रचलिन दार्शनिक चितन ही मापार था। मन वे प्रचितन हो गए। माज के गीन व्यक्ति-विवेचन-भूमि पर बने हैं और यदि वे सहज ब्राह्म नही होने, तो उनमे लोगो को रस नही मिलता, विशेषतया तव जब उनके लिए नयी दिष्ट से बाम नहीं लिया जाता । मैं प्रयोगवादियों की बात नहीं कर रहा

# सत्य, शिव और सुन्दर

ग्राधुनिक काल वा प्रारम्भ भारतेतु हरिस्वद्र से माना जाता है। दिवेदी-युग भ्रोर उन्नके उपरात द्यायावादी गुन तक को भ्रालोचको ने मिषकाश भ्रष्ययन से अपने मनन का विषय बनाया है। जयसकर 'प्रसाद', नुमित्रानदन पत, मूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा छायावादी गुन के प्रमुख श्रोर माने हुए कवि हैं। इनके उपरात भी हिंदी से बहुत कविता निक्षी गई है, किंतु उस कविता का कोई सहानुभूतिपूर्ण विवेच्यत नहीं हो सका है।

[१] हिंदी ने प्रातोचक वर्ग बहुषा घट्यापकों के वर्ग में से प्राया है, और इत-तिए उन्हीं विषयों पर प्रधिकतर लिखा जाता रहा है, जोकि परीक्षा से सबधित हो। कृत्य सो दूर को बात है, हिंदी में उपन्यास अधिक जनप्रिय हैं और उन उपन्यासों की प्रवृत्तियों तक पर निरपेक्ष दृष्टि से नहीं लिखा गया है।

[२] प्राचार्य रामण्य रामण्य स्वाचन के बाद पुराने प्रालोचको ने प्रधिकारा केवल पिरट-पेपण क्या है। उन्होंने दोप प्रधिक निकाले हैं, प्रालोचक का मून कर्तव्य नहीं निपाला है। प्रीर वह मूल कर्तव्य यह है कि प्रालोचक पाठक और लेखक के बीच की करी है। दुर्भाग्य से हमारी शिक्षण-व्यवस्था में प्रध्यापकों के प्रभूत्व के कारण आलोचक होना लेखक को गिरा देने के पर्याय के रूप में ही साहित्य में प्रचलित हो गया है। प्रालोचक का प्रसली कार्य लेखक के नवीन प्रयोगो, उसके प्रयोगों मी महिमायों को प्रकट करते हुए, उसकी विमयों को इस दग से दिखाना है कि लेखक और भी प्रचटा लिख सकें।

[३] उटने हुए भासोचक सीध्र प्रसिद्ध हो जाने के लिए साब्दिक चमत्कार दिश्मकर विष्यस में बुट जाते हैं और नये कवि को फिर भी कोई भासाग्रद साथी नहीं मिलता जो ब्यक्ति या सस्या के परे, समस्त साहित्य की दृष्टि में रखकर, साहित्य की मिमवृद्धि के दृष्टिकोण से सहयोगी बन सके।

[४] बैजानिक भौतिकवारी दर्शन और यूरोप के विभिन्न वादों ने हिंदी के धालोचको ना जान नई दिया में बढाया । पुराने धालोचक रस, ध्यति, रीति, वत्रीक्ति और मतकार में भालोचना समान्त कर देते थे, उनके बाद धालार्थ गुक्त ने भारतीय और पादवाय दोनों ही दिएकोणों को भारती सामने रखा। नये धालोचको ने उसके

इकाई उमना व्यक्ति है, उसी प्रकार समाजवस्तु-काव्य की स्रनुभूति व्यक्ति में होती है। जिस प्रकार मनुष्य के लिए समाज ग्रीर व्यक्ति अन्योन्याश्रित हैं, उभी प्रकार कान्य के तिए नोज्यक्ष और व्यक्तिपक्ष अन्योन्याभित है। जिम प्रकार मनुष्य का मगल व्यक्ति-परक नहीं है, उसी प्रकार काव्य का मगल व्यक्तिपरक नहीं है। दोनों की अवस्था और ग्रास्या सामुहिक जीवन के मुलाधार तथा ग्रादान-प्रदानस्पी सब्द-व्यवस्था पर ग्राधा-रित है। यन बाव्य के बगी के रूप में व्वति, रीति, अलकार और वकोक्ति मान्य हैं ; परन्तु वे ही सब कुछनही हैं। पुरानी परम्परा का सर्वश्रेष्ठ स्वीकार सेने पर प्रपति सक्-चित नहीं रहती। वह जीवन की सर्वांगीण चेतना का विकास है। वह समाज-पक्ष में लोक-वैषम्य मे प्रेम-मावना ना पक्ष लेकर चलती है और अभिव्यक्ति मे मन्ष्य की कल्पना को समद्भ बनानी है। सीन्दर्य सापेक्ष है अन वह नयी अभिव्यजनाओं को स्वीकार करना है। प्रम, वासना ग्रादि जीवन के प्रति ग्राधिक सजीव प्रनुरिक्त पैदा करनेवाली ग्रनुमूर्तिया काव्य का ग्रावस्थक ग्रंग हैं। वैराग्य की वह सीमा जो चेतना को व्यापक बनाकर, परा-नुभूति के प्रति उन्मूल बनाकर, केवल ऐदियपरकता रोकती है, श्रेय्ड है। युरोप मे ग्राए हुए विभिन्न बाद निम्नमध्यवर्गीय गतिरोधो मे पैदा हुए पलायन हैं। उनके प्रयोग सैली--प्रभिव्यक्ति तक मान्य हैं। प्रतीकों का मृजन काब्य के लिए भावस्थक है। केवल मजदूर-किमानी पर लिखी कविता, विसी-पिटी नारेबाजी, राजनीतिक कार्येक्रमी की तुकबन्दी, भौर व्यक्ति-वैचित्र्य की ग्रतिबुच्छा बविता नहीं है। न उपादेवता के नाम पर उपदेशा-त्मनता श्रेय है. न धारमाभिव्यक्ति के लिए द्रविड प्राणायामी कल्पना। काव्य मे तो 'काक्षा उपदेशवत सरमता' होनी चाहिए ।

रेन'-सुन्प्रदाय का जन्म सामत-काल के विकासतील युग मे हुमा या, घत टास-अया के आते होने के कारण उसमें समाज का कत्याण करने की शक्ति थी। परन्नु सामन्त-काल क्षेत्रे मित्रेशों और उज्वदगीय प्रमुख ने काव्य को, रस के विरोध में व्यक्ति, रीति आदि के जाल में, प्रमिजास्य वधनों में बाधने की चेट्टा की, और यद्यपि वे समाजको उतना पीछे तो नहीं हटा सके कि 'रम' की प्रगति को भूठा दें, परन्तु उन्होंने काव्य के बाह्य परियेटन प्रवस्य दुस्ह बना दिए।

ग्राचुनिक काल के पूरोपीयवाद मध्यवर्गीय टुटपूजियो की वर्ग-व्यवस्या मे से जन्म से सके हैं। उनमे प्राचुनिकता का फैनान है, और वे मूलत सामलीय काव्यवास्त्र के प्रापे नहीं से जाते, विक्त मो कहना उचित होगा कि सामलीय काव्यवास्त्र के प्रापे नहीं से जाते, विक्त मो कहना उचित होगा कि सामलीय काव्यवास्त्र जहा प्रपे दायरों के भीतर पूर्ण है, वहा वे प्राचुनिकवाद उनने भी पूर्ण नहीं हैं। प्राचार्य रामच्य पुक्त ने इन्हें 'व्यक्ति-वैचित्रवाद' मे रक्ता था, किन्तु ये तो उचने मे ही समाप्त नहीं हो जाते। द्वार वेश मे ये 'रम' वा पत्त्रता थक के हैं। भीर यह इनका मबसे बडा सोबलापन है, क्योंकि मौत्यें के प्रतिवंचनीय निरंधे प्रानव्यक्ती उच्च भावभूषि को तमी रम-सम्प्रदाय मे उच्चतर समग्री प्या है, जब उसमें साधारणीकरण का माध्यम स्वीकार कर लिया गया है।

यौन प्रवृत्तिया जो 'हाल' से चली भाती हैं और पूरे रीतिकाल में सामतीय बन्धनों में रही, वे ही इन नमें बादों में नमें रूप लेकर उठ खडी हुई हैं।

इन समस्त स्वरियन्वतामी ने साहित्य वर पातक प्रहार किया है। यहा कवित्व को न देखकर, उसकी कविता को न देखकर, कविमान को ही देखा जाता रहा है। रह्ण्यवाहियों द्वारा समावृन किवनुमगुर रवीन्द्रनाय ठाकुर ही सनजाने में 'अवला-यतन' तित गए में, वहा उन्होंने जीवन के कठोर सत्यों का वर्णन करते हुए समझ्य दिश्रोह न्यायोंकित बताया था। सेम्मीयबर दिवारी-युगीन किव था, किन्तु उसकी खनाओं में मध्यवन की उठवी चेनना का प्रतीक दिवार दे तो है। ताल्यवाय ईंगाई प्रहिसावादी था, परनु की नितन ने उमे वानि का दर्गण कहा है। प्रेमचन्द प्रहिसावादी था, वर्गवाद उसमें साम्यव्यवन स्वान तेता है, क्लिनु उसने किसानों की चेतन को उठाया घोर राष्ट्रीय प्रारंग्यन को प्राप्त कहा है। प्रेमचन्द वहिंदा को उठाया घोर राष्ट्रीय प्रारंग्यन को प्राप्त वहार है, क्लिनु उसने किसानों की चेतन को उठाया घोर राष्ट्रीय प्रारंग्यन को प्राप्त वहार का

माज भी बबियों की बाणी को देयने की सबसे बडी म्रावश्यकता है, न कि उनके बाह्यवर्णनों, गुटों, पार्टियों, म्रादि को ही देखकर उन्हें छोड दिया जाए। म्राये आपको इसके मनेन उराहरण मिलेंगे, कि 'भ्रयें, यह इसी व्यक्ति ने लिखा है।' ऐसे बाक्य तक भ्रापके मुख से निक्त जाएंगे।

<sup>[</sup>४] हमे एक मोर काव्य को बाद, व्यक्ति, देश, काल ग्रीर वर्ग मूमि के ऊपर उठ-

१ दिन्तर, 'प्रगतिरा'ल साहित्य के मानदरण्ड', ले॰ रागेय रापव

साहित्य का सप्टा व्यक्ति होता है और व्यक्ति के महत्व को साहित्य में राजगीति की भाति भुठाया नहीं जा स्कता । व्यक्ति राजा होने पर भी दिस्त के दु ल से
दु सी होता है । और कला के क्षेत्र में, भर्यान् सत्य के क्षेत्र में, कलाकार लिखते समय,
चाह कर भी, भ्रमने को रोक नहीं सकता, उसकी कला बोलती है, और कला बयोकि
सन्य पुरय-ग्राह्य है सत उत्तम पृष्ठप का समस्त बन्धन भी भाव-माध्यम को मक्की में
बाघ नहीं पाता । व्यक्ति भूत होता है, परन्तु काव्य का बुक्ष खडा होने पर, अपनी सत्य
अस प्रति को नीक्ष्य दृष्टि के सहारे से, अपनी हात अपने-माप फैताता है और जो स्व उस बुक्ष में भ्राते है, महान कलाकार कि सन्देह, उनके विषय में नहीं जानता। अगर
दिए गए गेक्सपियर, और तास्तताय के उदाहरण इने सम्पट करने के लिए क्षिकों हैं।

विस प्रकार राजनीति में पार्टी के सदस्य अपने व्यक्तित्व को एक ध्येय में समप्ति करके सामूहिक नियोजन में कार्य करते हैं, उसी प्रकार लेखक नहीं कर सकता, क्योंकि लेखह की संबी, कलाना, प्रविभा, व्यक्तियव चस्तु हैं, और वे सामूहिक नहीं हो सकवी।

हा सक्दा ।

कवि न्यन्तित्व जहा इन दातो मे वध नही सकता, वहा वह उच्छूखत होने का ग्रिधकार प्राप्त नही कर सकता, बयोकि व्यक्ति की यह समस्त स्वतत्रतासामूहिक जीवन के लिए हैं, ग्रीर समूह के लिए ही कता एक माध्यम है जो जीवन को सुन्दर से सुन्दरत्तर बनाती है। यो दोनो एक-दूसरे पर ग्राधित सध्य हैं।

सेनिन ने साहित्य के निए पुकार उठाई थी कि साहित्य को पार्टी उन साहित्य होना चाहिए। लेनिन की विक्रत करनेवाने लोग इसका यह धर्म लगाते हैं कि वह पार्टी-नियमा-वली को हो साहित्य मानवा था। यह बहुत यहा भूठ है। नेनिन स्वव गोर्की से कहता था कि तात्सवास से निवान सीका, स्रोर वह भायकोवस्को से पुरिकन को ऊना स्थान देवा था। तेनिन का धर्म मा के 'कला कवा के लिए' वाले काव्य को दुस्हर नगाते हैं, उसे जनता के लिए खी बकर लामो थीर स्वतन्त्र करो। इस की तत्कातीन परिस्थिति से समस्त्र भाति की पूर्ति तथार थी भीर बहु नगरा भी ठीन था। किन्तु फिर क्या में बदलती परिस्थितियों में भी उम नारों को किनार वी नाव को तरह इस्तेमाल किया गया धीर इतिया एहरेनवर्ग में अब सेवको की समस्या उठाई है। जिसमें उठाने स्वीनगर किया है कि कारि के बाद के स्म में प्रभी महान साहित्य का सुबन नहीं हो सकत है।

प्रमालयत यह है कि रस के काव्यसास्त्र में साधारणोकरण के सिद्धात का ज्ञान नहीं था। लेनिन ने प्रदने पुत्र के प्रमुख्य उद्योको स्थापित करने की सेय्टा की थी। उसकी गत्थारमकना को न समस्रकाने के कारण बाद के लेखकों ने विषय के साथ पूर्ण न्याय नहीं। किया। भारत एक प्राचीन देश है और इसमें प्रधिक मत पैशा हुए, जिन्होंने काफी प्रम-

र 'राश्टर ण्यट हिट अव्पटा,हलिया एहरे नुवर्ग

महादेवी वर्माने अपने छाषाबाद की ब्याख्या करने को चेप्टाको है। परन्तु वह कोई महत्व को बात नहीं है। चस्तुन प्राधुनिक काव्य का नया ही काल-विभाजन साव-प्रकरि।

सामनीय ह्रामकाल में, १०४० ई० से १८५७ ई० नक हिन्दी म मब तरह काव्य का ह्रास हो रहा था। इस समय को प्रभी तक उत्तर रीतिकाल कहा जाता है, जबिक यह मतत है। इस समय कहा एक घोर दरवारी किना लिली जा रही थी, वहा पनटूवार, द्यावार, सहजीवार, हुलमदान, तुर्पी साहेन इस्पादि भनेक किन तकलाव्य की परम्परा को सागे वडा रहे थे। यो या नावार और नृत्युह- स्मद जैसे भूकी किचयों के भीतर इस मुग-विगोप में आए परिवर्तन को भी नहीं पकड सके, न्यांक उन्होंने तो धाराए पकड़ी, मह नहीं देखा कि एक ही विचार का विभिन्न परिस्कितियों में कैसा विकास होता है। यही नह काल था जब हिन्दी का फारसी-गिंभर (उर्द्) काव्य दरवारों में क्ला-फूल रहा था। इस काल के बाद भारतेन्द्र हरिश्वन्द्र का युग मामा। वहीं से सब आधुनिक काल पानते हैं। किन्तु भारतेन्द्र कुन युग केवल उन्हेप-काल था। उर्दू में दान पुरातन परम्परा को सिए हुए थे, और हाली में पुनस्त्यान की भावता थी। वहीं हम प्रकारान्तर से भारतेन्द्र हरिश्वन्द्र ना पूग महारान्तर से भारतेन्द्र हरिश्वन्द्र ना पूग में हरिकी और मीयलगोटन परम्पर गुन प्रमुव तेता थे। यो तो गुन्पशी प्रभी नक लिख रहे हैं और प्रच्या भी सिबते हैं। परन्यु जनकी विषय-वस्तु प्रथम हम नहीं बदत सकी है।

इस कात के बाद हिन्दी मे नवा मोड साया। नुकि इसे सब झायावाद कहा जाने सार है, मुनिश के सिए मैंने भी वही नाम प्रस्तुत किया है, किन्तु वस्तुन छायाबाद-काल की जयह नाम होना चाहिए सम्युद्ध-काल। इसी युग के व्योतिस्तम्म प्रसाद, निरासा, पत्र प्रीर महादेवी हैं। महादेवी मोर प्रसाद ने वो आगे नहीं तिला है। परन्तु पन्न प्रोर निरासा प्रभी तक लिय रहे हैं। अस्युद्ध-काल जिस प्रभीव्यवना को लेकर चला था, उसकी चरमसीमा प्रसाद की 'कामायती' में लाकर हुईं। उस सोमा नक तिराखा, पत्र प्रीर महादेवी नहीं पहुच सके। मवस्य ही पन्त प्रीर निरासा ही हमारे प्रातोच्यकाल के युग्मवर्वक कि हैं। व्यहीय प्रमाया प्रारम् प्रोर प्रकृत्यपुत्त आदि रचनाए देकर खाने के मोड की प्रसाद के कि हैं। व्यह्म स्थान करना है। ने प्रपत्न के नवे पूग्म करना है। नाम गिनाना साहित्य के इतिहास के साथ प्रमाय करना है। वे प्रपत्न के नवे पूग्म कि लिए उपयुक्त मही बना सके। नवी बागडीर तो नवे कि विभावी। प्रात्न के हिन्दी कविता निरासा, पन्ते में सीगित नहीं है। यदस्य ही यह सम्य है कि जिस क्षेत्र में एक नियोप कवाई से लोग पा चुके हैं, इतनी कवाई नवे कि समने से में सुपत्त सके प्रमुख सुपत्त में महीपा सके हैं, परन्तु यह भी महत्व कि कि विता इन दोनों के प्रति-विक भी भागा एक स्वरूप रखती है।

प्राय उनके सामने दीनहील लगता है। विचारों से मेद का प्रस्त नही उठता, उनका तो लेखन ही ऐसे विचारों में स्वय दरित है। लेकिन जहा नो कवियों ने अपनी मौलिक्ता दिसाई है, वहा उन्होंने थेप्ठ काव्य लिखा है।

[६] हम 'बाद' का बिरोच इमलिए करते हैं कि हमे बाधुनिक काल का कोई भी किय ऐसा नहीं मिला जिसने एक बाद में बभी हुई कियता सिली हो। बाद हैं, परन्तु कोई किय एक ही बाद से बद्ध किया नहीं लिल सका है। मत बाद-भूमि पर दिवेचन करने से बहुन-में किय विरिध के भीवर ही नहीं धाते और हम बान्नविक मून्याकन करने में चित्र रह जाते हैं। इस बाद को कभीडी बनावर अगयर किया की फिट नहीं करना है, बरन् पहने कियो को देखना चाहिए, तब उत्तका वर्गीकरण करना पाहिए। आचार है, बरन् पहने के हम के इसे बाद की स्पीत के स्वतान करना पाहिए। आचार कियान के सिल्य के स्वतान के प्रतिकृति के सिल्य करना पाहिए। आचार कियान के सिल्य के प्रतिकृत की सिल्य करना पाहिए। आचार कियान के सिल्य के प्रतिकृत की सिल्य के प्रतिकृत की सिल्य कियान की सिल्य की सुरकर कहते ही उत्तकी महता अपने आप कम हो आती है। भीर किसी

इतीलिए आवस्पकता है एक व्यापक मुनि की 1 काव्य में 'बाद' की उतनी प्रमु-मता नहीं होनी चाहिए, जितनी जीवन और उसके विभिन्न रूपों की 1

यह सज्ञातिकाल है। इनमे सब कुछ बदन रहा है और नयेनये दृष्टिकोण उप-स्थित हो रहे हैं। बहुन से विव जो पलायनवादी समफ्रे जाते हैं उन्होंने जीवन के बहुत सुदर समार्थ जिनम किए हैं। भ्रमी तक नये कियों को निष्पस मालोपना नहीं हुई है। जाने-माने रूप से कुछ बन्त-से बन गए हैं भीर उन्ही-उन्हों लोगों के दो-दो उदस्य देकर नाम विना दिए जाते हैं। और वस्तु-विषय या विचारधारा का साम्य होन के मूल्याक का प्रभार होता है, जबिक काव्य केवल विषय-वस्तु पर निर्मर मही होता। उसके लिए सम्म मनेक सबतों को मानस्यकता होनी है, जो निसी भी वर्ष्य विषय को काम्य की सहार्य सनेक सबतों को मानस्यकता होनी है, जो प्रांग प्रविचन के कि है और इसीलिए रामचन्त्र सुक्त प्रमृति नानो ऐसे मानोचक हैं, जो प्राय प्रवक्त कि हैं और इसीलिए ये सीम यदि एक सहक मान्नोस मने हो मन रखें तो कोई ऐसा धारस्पर्य भी नहीं है। मैं यह बात व्यक्ति-मूनक स्थान पर प्राध्वित नहीं करता, वर्त्य यह तम्म यह प्रकट करता है के इनसे बनेमान के प्रति जो सास्या है, उसमें मध्यापकी सहबा है सौर बह इनके गौरव के लिए स्तृत्य नहीं है।

में यहा दिन्तार ने इस दिषयपर नहीं लिखूगा कि कविता क्या है ? यहा इनना कह देना वाफी है कि काव्य जीवन की सर्वागीण स्थिति का चित्रण करनेवानी सनुपूरियो धीर मात्रो का वर्णन है। वह सपने युगानुरूप समाज की परिस्थितियों में जन्म नेता है, पमता है भीर सपने गुग का निर्माण करता है। व्यक्ति की वे सनुपूरिया जो केवल उसी

१ विस्तार के लिए देखिए, 'काव्य-क्ला और शास्त्र', तसक रागेय रायन

उसे देखना बहुत यावस्पक है।

प्रभिष्यविन के माध्यम के कोष का बदल जाना यह करन मही करता कि उनसे अंग्रं बदल जाना है, परन्नु कारत के इतिहास के बदलते तथों ने उनका सम्पन्न करना प्रावस्त्रक हो बाता है। गुलाजी चौर बत, निराता प्रादि पर हिन्दी के तो भी हुए जिसा जा कुका है। उनके बाद के दुगी का मध्यमन तो बहुत ही अनर्पपूर्ण हुआ है लेगीकि प्राविचकों ने बानायों सुवन की तरत अध्यापक्षिय व्यक्ति सम्माकर बाद-भूमि पर काल का सहित प्रभवन दिया है और नये स्वरी को पूर्णव्या नहीं देखा है।

यहा हम उमीका प्रध्ययन करेंगे।

[२६] माने बदने से पहले मैं महा एक बात भीर स्वय्ट कर देना चाहता हूं । हिसी भी वृत्व का किंव परने सामने एक ध्येय रखता है । इसने वतके भीतर एक मन्या खाद जन्म भेगा है । यह गुण श्रीर व्यक्ति का परम्पराधित सत्य होता है । इसने व्यक्ति की ममुता भीर महता, दोनों हो रहती हैं । इसने व्यक्ति की ममुता भीर महता, दोनों हो रहती हैं । इसे प्रमुख का स्वय नया है । यह भूम प्राच का स्वय राजाओं के बैभन वा स्थानीता, उनकी बीरता की कृति करि का मुग-स्वय था । एक प्रीर समय भाषा जब देवता की स्वृति उसरा भीय कृति करि का मुग-स्वय था । एक प्रीर समय भाषा जब देवता की स्वृति उसरा भीय क्षित की स्वत का सामने के स्वय का स्वय की स्वय भाषा जब देवता की स्वृति उसरा भीय रही कर कर सम भीर यह नार भीर ही रूप बदसा भीर वह की सिमन सत्यो का भाषारकार किया । किन्तु हम बद प्रतिक रणना का मुन्यका अत सुन की सीमा मीर उस सुग की परिविष्ठ के मीतर नहीं करते । हम काम भी विराज की सीमन के के विकास के स्वय में सुन प्रतिक की मीतर की सीमा मीर उस सुग से प्रतिक की मीतर नहीं करते । हम को वो देवते हैं हम स्वय हो हम हम की विराज की सीमन की सामन साम हम सिमन साम की विराज की सीमन साम हम सिमन स्वर्त की सामन साम हम सिमन साम की विराज की सीमन साम हम सिमन सम्या सिमन सम्या होता हम हम सिमन सम्या सीमा सीमा सिमन साम हम सिमन सम्या हम सिमन सम्या हम सिमन सम्या हम सिमन साम सिमन सम्या हम सिमन सम्या हम सिमन सम्या हम सिमन सम्या हम सिमन सम्या सिमन सम्या हम सिमन सम्या हम सिमन सम्या हम सिमन सम्या सिमन सम्या हम सम्या सिमन सम्या हम सिमन सम्या सिमन सम्या हम सिमन सम्या सिमन सम्या सिमन सम्या सिमन सम्या सम्या सिमन सम्या सम्या सिमन सम्य सिमन सम्या सिमन सम्य सम्या सिमन सम्या सिमन सम्या सम्या सिमन

युग के परिवर्गन ने हिन्दी-काच्य को नये रूप दिए। भारतेन्द्र में पुरातन और नवीन का मितन हुवा धौर फिर हम नवीनना की और अधिक बिंद सते। हिन्दी के आनोचनों ने इन समस्त युगो को प्राया ही मानववाद की भावभूषि पर देखने नी केच्या की। परना वे पूर्ण त्याद नहीं कर सके, क्योंकि उन्होंने 'आपावाद' सबद को पकड़ा, उनके 'सम्पुदन' को नहीं निया। प्रसाद, पत, निराता और महादेशों भारतीय समृदिन में एक नये सम्पुदन है। यह सब्द निशी आनोचन ने स्वीतार नहीं किया। जिले सर्वेशों में निस्ता कहते हैं, यह स्वीता लाया हुया है। दन्हीं नीयों ने वित्त के सत्य को पुग के सत्य से एशावार करने के भीम प्रस्ता में सरक्षता पार्द और दशीविष इन्होंने महानदि होते का भी गीरव पाया। फिर भी इनमें एक कमी रह गई कि वे कृष्टि जनता तक नहीं सत्य, शिव और मृत्दर

का 'दिम्ला', प्रभात की 'ऋतवरा' इसी ऊवाई की प्रोर को सकेत है। बाज के युग में किय समें एक पूर्ण जीवन-स्वप्न नहीं सोज पाएं हैं, तभी वे ऊवी चोटी तक पहुंच नहीं पाएं हैं। कीन पहुंचेगा यह अभी नहीं कहा जा सकता। एक नीम-प्रासोचक ने इसे बीनों का युग कहा था। मैं इसे कुला कहना हूं। वहनेवासा स्वय बीना हैं। बीनों के हाय निरंतर प्रामें प्रोर ऊपर उठने हुए नहीं दिखाई देते। हमारे यहा यदि व्यक्ति रूप से अभी पूर्ण उपनिव्य करीं भी हुँ तो भी क्या डर है। जहा तक युग का प्रश्त है, जितना सल्वाच्य इसे मुम में जन्मा है, उनना पुराने यूगों में नहीं मिलना। भीर फिर किंव निरंतर वद रहे हैं। हमें यह नहीं मूलना चाहिए कि तृतसी ने साठ वर्ष की उन्न में भान के स्वयं की उन्न में प्रामें के स्वयं सी स्वयं की वन्न में स्वयं सी स्वयं की प्रामें में नहीं है, वह व्यक्ति की सिनाम की भी रुवलत कहानी है। प्रभी उससे प्रामाएं है और वे प्रवश्य हो फतवती होगी। प्रमान, प्रमोग इत्योदि को हम सहब ही ध्वति, क्योति करवादि के से स्थानर कह सकती हैं। हम किंदी भी बिव की रचना देखते हैं तो वह अपने फ्रंपिन, प्रमोग इत्योदि की हम सहब ही ध्वति, क्योति करवादि के से स्थानर कह सकती हैं। हम किंदी भी बिव की रचना देखते हैं तो वह अपने फ्रंपिन की भी बिव की रचना हम हमी वह साम की साम किंदी भी बिव की रचना हमी।

नहीं थी, बरन् भारत परत्रतता की बेडियो में जकड़ा हुमा था। यह परत्रतता कैवत राजनीतिक ही नहीं थी, इसके साथ एक सामतीय जर्जर व्यवस्था भी थी जो अपूर्णस्प से भारत की अस्वर-असस्य जनता से फीनी हुई थी, क्योंकि अप्रेजो ने मध्यवर्गीय उत्थान तथा मसीनों के नाथ-साथ भारत से पदाएंग करने पर भी यहां का सामनीय जीवन सुर-क्तित होंड दिया था। परिस्थिति के इस भेद ने यही दुस्त्रहंग पैदा की जो ह्यायाद से भक्ट हुई। रोमास्त्राद इसतेड से जनप्रिय हुमा नरीकि उत्तमे तथ्यों से नदीनता का विकास अधिक था, पेसी, कीट्स, आयरत आदि करता में पहुचे हुए किंव वने, जबकि प्रमाद, पन, निराला, महादेवी धारि अपनी अभिजात ब्याजना के कारण पड़े-सिस्त नेयों। तक ही सीमित रह सके। इनमें सेली, वायरन जैसा समाज-पक्ष नहीं हस सवा तथा न पुरिक्त जैसी वनप्रियता ही इन्हें मिल असी, जी स्वय स्वतन्त्रना का हासी था भीर विजनि करी कांप्रियता हो इन्हें मिल असी, जी स्वय स्वतन्त्रना का हासी था भीर

हिन्दी का रोगासवार प्रपति सिल्न परिस्थितियों में बदला हुया था। धायावाद के रूप में प्रतिश्वित यह धारा अपने उद्दाम वैप से बही। इसने जो अपनी
व्यवना से लोगों को चमरहत किया, पुराने लोगों ने इसका घोर विरोध किया, परत्नु नये
मध्यवायि तरणों ने इसका मुक्त कर्य से स्वाग्य भी क्या। धोरे-धोरे हिंदी में व्यवनात्यवता-परि दम बंती को इतना आवाय मिल यया कि इसीनी छात्रा आज भी पीछा
नहीं छोठ सही है। प्रयोगवाद इसीकी पर हने की चेप्टा में है, किन्तु वयीकि प्रयोगवाद
में छात्रावाद का समान महता हो, बहु केवल व्यक्ति-पक्ष को लेकर सद्या होना चाहता
है। प्रयोगवाद का समान महती है, बहु केवल व्यक्ति-पक्ष को लेकर सद्या होना चाहता
है। प्रयोगवाद की इस्ट्रा रांली में ही समाप्त नहीं हो आती, वह भाव की मी प्रक्रिव्यक्ति
को पर खदी है और रोगाखवाद का अन्हरूप उसमें अपने नवीनतम रूप में प्रावा है,
जो मूलत यीनवाद है। बोनवाद, मामलवाद, मादि हिरी में बहुत पिने-पाने जाते रहे
हैं। योगवाद भीर पहुनवाद में भेद हैं। धिनियमर्थवाद सक्तका योज सा मिल्न हम है
हैं। योगवाद भीर पहुनवाद में भेद हैं। धिनियमर्थवाद सक्तका योज सा मिल्न हम है
हैं। योगवाद भीर पहुनवाद में भेद हैं। धिनियमर्थवाद स्वावन्य पा व्यक्ति-पिनाव के रूप
पुष्टपूर्मि छाती है, बहु धो वाधी हद तक व्यक्ति-स्वावन्य पा व्यक्ति-पिनाव के रूप
स्वावनाय हो हम स्वाव प्रयोग स्वाव से प्रावाद स्वावन्य सा व्यक्ति-पिनाव के रूप
स्वावनाय हो हम स्वाव प्रवाद की विद्या करता रहा है। यहा हम इनका विदेचन
स्वावन्य स्वावन समने हैं।

[१] यूरोप में पायड के सिद्धानों का गहरा प्रभाव पड़ा। कायड के विषय से हिन्दों में लिखा बा पुरा है और मार्गड का बहुत बड़ा प्रभाव क्वावा गया है। कायड के अनुसार मनुष्य के वो उपचेवन मिलाय्क होता है उसमें यौन सम्बन्धी माववाए समाज के बजनजीत निपमों के कारण समा जाती हैं और बहु यौन विड्रतिया अपने को विभिन्न क्यों में प्रकट करनी रहती हैं। कायड की बहुत भी वाजों को पद्यपि एडकर और जुन ने ठीक करने को वेस्टा की, किन्तु उस सक्का मुलाधार यौन विकृति ही रहा और वे सुव ज्योति-सी जर से निहल को' ज्योति-सी जर से प्रकृति के मिल भवानक, सण चिकत कर सीन होती किस गगन में ? भाज मेरे प्राण पर घो प्राण! डालो स्निग्ध छाया भगद उस सीन्दर्य-ग्रीत की भ्रयक प्रचार मगाध माया भाज मेरे प्राण उपने मानते ना स्थूल बस्थन ज्योति में निज को सिटाकर हो मिन्तेंग क्या दिये कन ?

–गजेन

संवेदमा का जागरण होता है प्रकृति के ब्रावाहन में 1 मनुष्य उसे प्राप्त कर लेवा चाहता है, किन्तु उसे फिर भी बही लगता है कि वस्तु को यह पूरी तरह से ब्रहण नहीं कर सका है, उसमें एक धाकुलता बची ही रह जाती है, उसके मीतर मी एक ज्योति है, जो समग्र की ज्योति से मिल जाती है, किन्तु वह अततोगत्वा कहा लाकर लीत हो जाती है, यह वह नहीं जात पाता । तभी वह चाहता है कि सीर्ट्स का अवाक् कर देनेवादा, मन में एक पादाका उसन्त कर देनेवाता, विस्मय से चिमूद कर देनेवाना मायावी स्वरूप किसी प्रकार उसके कामने प्रकट हो जाए । उसकी चेतना स्थ्य के व्यक्त में ही सीमित नहीं रह जाता बाहती । वह तो ज्योति मतना चाहता है । किन्तु किर भी वह सदेह से मीचना है कि जब ज्योति में ज्योति मिल आएगी उस फिर दिया होमा गोपन रूप रह ही व्या जाएमा ? क्या गोपन की सोज में अपने की मिटा ही देना होगा ?

'सावन मेथ' के रूप में किंद से। प्रश्त को स्यूल दृष्टिकोण में देखता है और मानवी सौन्दर्भ के प्रति उसकी दृष्टि प्राविक दिखाई देती है। वह प्रपनी वासना में ही प्रकृति को भारता है

> धिर गया नम, उनड ब्राए मेथ काले भूमि के कम्पित उरोजों पर भूका-सा विदाद, ज्यासाहत, जिरातुर छा गया इन्द्र का नीत दक्ष---चन्द्र-सा, यदि तडित से भूससा हुझा-सा। ब्राह, मेरा द्वास है उत्तस्त---धमहियों में उमड धाई है तह की धार

—अवेव

में हरित बन की बासुरी हूं। स्थाम के मसुमय सघर की बारणी पीकर बाबरी हो चुनी हूं। सापना में स्वर्थ-सा गलकर, बेदना की धर्मिन में जलकर प्रेम की लोहित धराका से लोगल ममें में छिद्र कर में मृत्यु में जीवन खिगाकर नागरी बन गई हूं। मेरे

उन्माद की माति, सन्मयता की वासना भी तीत्र होती है

नाभिसर में ग्रमस्ता की माधुरी है।

कवि ऐसा नहीं है, जो इन्ही वारों में प्रत्नितिहत हो जाए। प्रत्न हिन्दी में प्रचित्त इन मान्यनाघों का विरत्तेषण वरते समय हम पदि कुछ कवियों के यहां उद्धरण देते हैं, घो उन्होंके उद्धरण हम प्रांगे किसी दूसरे वाद के प्रत्नर्गत भी दे सकते हैं।

[१०] प्रयोगवाद वा एक ग्रसकार 'प्रतीकवाद' है, जो कुछ ममय पहले बहुता-यत से प्रयक्त किया जाता था। हिन्दी मे प्रतीकवाद छायाबाद की शैली मे ही समाविष्ट है, जराप्रतीको के प्रयोग से भर्ष समभाने की चेप्टा हुई है। प्रतः उसे विलकुत स्वतन्त्ररूप से भ्रतग मानना क्दापि उचित नही है। रुस में मायकोवस्त्री के प्रारम्भिक काव्य-काल में साम्राज्यबादी संस्कृति के बिरद्ध जो 'भविष्यवाद' नाम से व्यक्तिपरक विद्रोह उठा था. वह प्रनोत्रों का प्रधिकाश प्रयोग किया करता था। हिन्दी मे भविष्यवाद का कोई स्पष्ट प्रभाव दिखाई नही देता, कित् प्रतीको का काफी धसर पडा है और नये-नये प्रतीक बनाए गए हैं और बनने जा रहे हैं। प्रतीक अपने असकार के रूप मे बाब्य का गुण है, किन्तु वह स्वय काव्य नहीं है, क्योंकि वह एक मूर्त की छाया दनकर साकेतिक योजना बनकर ही रह जाता है, उसमें माद को जागरित करने की शक्ति नहीं होती। वह भावानुभूति की सीवता नो स्पष्ट करने में भवस्य लाभकारी सिद्ध हो सकता है। प्रतीक काव्य में इसीलिए सदैव ही बनते रहेंगे। वास्तव मे प्रतीक बाह्याचार है जो युपानुरूप परिस्थितियों से प्रभावित होकर देश-काल के प्रनृष्ट्य सदैव बदलता रहेगा। उसे काव्य का जीवन-स्रोत नहीं समभा जा सकता । प्रयोगवाद प्रतीक पर सबसे मधिक निर्भर है, क्योंकि प्रतीक की नवीनना ही प्रयोग की व्यवना की एकमात्र ग्रात्मा है, उसीमें चमत्वार उत्पन्न करने की बहुता शक्ति हो सनती है।

[११] सार्त का सिलालवाद हिन्दी मे सक्ता सोमा प्रभाव नहीं जान मका है। व्यक्ति वीवित रहता वाहता है और किमो प्रकार स्वकत स्वित्व स्वाक्त वताए रहता वाहता है और किमो प्रकार स्वकत स्वित्व स्वाक्त अपने को समाज की पोर वीमता में पिना हुआ सोमता है। उसे न केवन सपने चारो धोर दैन्य और जिसास देवी है, वरन् वह स्वय उनके विरुद्ध होने की कन्यना वर लेता है। इस दृष्टि में व्यक्ति सपने नी तिसहाय समझता है और ममान में सर्घ के पान-प्रतिपात को माणवाद को दुर्दमनीय प्रवाबी-मात्र समझते सता है। उतको सता सपने चारो और परिधिय लेता है। है और एक का सिताब दूसरे के स्वतित्व से सामरस्य नहीं दूडता, वरन् वह वायरों में वय बाता है और उने यह प्रतीत होता है कि यह समार वास्तव में समहोगिटा देने में सता हु सा है।

मस्तितवाद वो स्वापना यूरोपीय प्रयम महायुद्ध के बाद की निरामा में हुई वब पूर्वीवादी सरहति वी विभीषिका में व्यक्ति को लगाने लगा कि वह हुए ब्रीर से ममुसीसत है। साम्यवाद प्रस्तिववाद के दृष्टिकोण से सर्वहारा का बबर प्रीर निरहुत प्रमितास-

## पतकें रोडो धुनें, उन्हें ऐसी फिरकनी बना जा री ! निदिया री त प्राजा री !

—राजनाराच्य रिमारिया

यहा कवि प्रकृति को मानमंत्र वानायरण में भी उत्तार लाजा है। सौरी प्राय-हो पलायन के सीन्यमं को मिक्त करती है। सोक-गोनों में यदाप लोग जीनन प्रतिबिधित होता है, जैसे दक्षिण भारत को कप्रद की एक सौरी है—मरें। हैरतों। गारियल का व्यापारी मा गया। यह गोने समुद के किनारे से मनना जहाज वाता है इत्यादि। शिनु इस प्रकार के गोनों में भी एक स्वणित साया-सो व्याप्त रहती है। मण्डूसिल वो मान-सिक भूमि इतनी व्यापक नहीं है। उसने भपने जीवन के मधर्ष को भी इस सौन्यमंत्रीना में एकरस कर दिया है। पनकों के रीटी बुनने की नरावना वास्त्य में भानूकी है। ऐसे विश्व भूतत प्रकृति की परितत्त्वना में सिखे जाते हैं, परन्तु उनका सम्बन्ध पपने सौन्यमंत्री जीवन से जोडकर उन्हें भावपश के मीधिक समीप बनाया जाता है। इससे एक्ते समूर्य में मुर्ज वो प्रस्तुत किया गया पा, भीर इसमें उस्ती उन्हीं वात दिसार्द देनी है।

प्रपृति के वे पित्र जो उसे मानवीय रूप में भस्तुत करते हैं, ये प्रभिन्नजना के क्षेत्र में मनतो रागितों को मंपिक प्रसार देते हैं। इसीके साथ जब किसी मत-विदोष की भी कलात्मक रुप देकर रक्षा जाता है, तो मत से प्रधिक हम पित्र में ही उताकते हैं:

श्चितिजनीर से झा रही है जतरती
यहाती सुनहरे चरण
कतदा द्यांता पर स्वयं का छे तकुचती
पहनकर सिद्वरी सकत
सितारे ययन के दिपे दूर च्याकर कहीं
यये तो निशा के समुर स्वयन जाकर कहीं
नहीं शेष पय पर रही सब तिमिर को धटा
विरक्तने सणी पूर्व में एक स्वयिक एटा
सौर यह जमा का मबस मागमन है
कि जी सा रहा जागरण

समर पर्व है पाज नववदना का सरे सभी के हुदम हर्ष की भावना से भरे म जावें पुष्प देता की सर्वना के कहीं वे सतीने समन

उठाराष्ट्रका ध्वन, बड़ा पांव दो सब राडा दार खोले बिजन था। ग्राचार्य रामचन्द्र शुक्त काव्य की इस धारा को नहीं देख सके थे।

[१३] भारतेन्दु हरिस्चन्द्र के समय जब ममाज में परिवर्तन हुए तो वे काव्य को इन प्रमित्यक्तियों के समीप लाने में नगें। उनकी राय में काव्य का सहय होता प्रत्यन्त आवश्यक था। परन्तु द्विवरी-काल में कविता को तीनक उठायागया और प्राप्तिमान्त्रयान होते हुए भी यह काव्य उतना सरल नहीं या जितना भारतेन्द्र-कालीन काव्य या। रीतिकाल की शृगारपरकता कम की गई थीर उपारेयनावाद ने स्थान जिया। इसका कारण द्यानन्द के मान्दोलन का प्रभाव था, भीर राष्ट्रीय सथाम की भी उत्तयर द्वाया पढ़ी थी।

किन्तु मध्यवर्ष उतने ही से मतुष्ट नहीं था। द्वायाबाद धर्मात् धरिवात शैली का उदय हुमा, जिसने काव्य को यविष मुन्त में किया किन्तु इनकी उडान साधारण जनता में काफी दूर हो गई। व्यञ्जना-प्रधान इस मैंनी ने मारदेन्द्र तथा दिवेशी-कालीन कविता को उननी ऊसी कोटि का नहीं माना, जिननी प्रपत्ती कविना को। प्राज भी बहुत-से प्रालोक यही मानते हैं कि छायाबाद ने भाषा को वो मानदि दी है, उसकी छोड़ने में कविता का सेपार पिर जाता है। प्रापुनिक कविना को जनप्रिय होने से रोकने-वाला यह मबने बडा कारण है। प्रयोगवादी बाव्य ऐसा ही एक प्रयत्न है जो काव्य को उसी कवी प्रमित्रात सैनी का व्यसावशेष बनाकर रखना बाहना है।

मैकॉले ने कहा था कि ज्यो-ज्यो सम्यता का विकास होता है, कविता का स्नास होता है। मैंकॉले अपनी जगह ठीक या क्योंकि सम्बता से उसका तालवें पूजीवादी मस्कृति के विकास मे या। पूजीवादी सस्कृति धन को मनुष्य के ऊपर स्थापित करती जा रही थी, व्यक्ति समाज के द्वन्द्व में भा गया था, भौर मशीनों का महत्त्व तथा प्रभृत्व धीरे-धीरे प्रकृति के साहचर्य की दूर कर रहा था, और हृदय-पक्ष पर हृदयहीन शोषणसवार होता जा रहा था। सामतीय जीवन मे प्रजा और राजा का सीधा सम्बन्ध था ग्रीर भाग्य-बाद उस समाज की रीड़ था। पूजीवाद ने भाग्यवाद के दूस भोगनेवाले भाग को तो जीवित रखा, निन्तु अब शोषण के रूप बदल गए और शोपक और शोपित का व्यक्ति-पक्ष में भी कोई सम्बन्ध नहीं रहा। यह याद रखने की बात है कि काव्य का जन्म सामु-हिक जीवन के उत्पादन-वितरण के साम्हिक रूप में हुआ था, और व्यक्ति के समाज में ् एवातिक होते जाने के साथ, काव्य का भी ह्याम होता गया। ग्रतएव काव्य की जीवत शक्ति, भावानुभूति का सामरस्य ही जब नष्ट होने लगा तब काव्य का दुसह हो जाना निनात ही स्वाभाविक हो गया। इसके विरुद्ध दूसरी ग्रोर सोवियन काव्य का जन्म हुधा, परन्तु वह ग्रीमिनास नीतिपरक रहा ग्रीर उमने ग्रीमकाश जीवन की वीरता, करणा म्रादि को ही छुप्रा, जिसके कारण जीवन का सागोपाग रूप समाज को नहीं मिला। इत दो दूरियों ने एक खाई पैदा की। सोदियत रूस ने काति की और वहा छलाय समाई गई ह्मंप्रकाने के प्रयोग ने कवि को जनता से प्रलग किया । धौर लिखने, ह्म्पवाने की प्रवृत्ति ने काव्य को जनता के प्रति नये गुग मे सीघा उत्तरवायित्व नही दिया । रीतिकाल की समस्त मुक्तक कविना वास्त्रव में राघाङ्गण्य की प्रचलित कथा पर प्राधारित है, इस-लिए उसे भी ममफर्त में जनता को लो भी उसके निकट ह्या सकी, उनना कष्ट नहीं हुमा, जितना नई कविता ने समफ्ते में होता है, व्योक्ति अवकी धार के मुक्तक काव्य ने जनता में प्रचलित किसी श्राधार को नहीं लिया है। नये मुक्तक के उपमान, तथ्य भादि सब ही। नये हैं, प्रीर उनकी पृष्टभूमि अभी तक बन नहीं सकी है। प्रयोगवाद में तो यह भावितथा भावपत हुस्हना है भीर प्रगतिवादी काव्य की श्रवन दूसरी है। वह सभी नये समाज की नर्दनीत को स्थापन रहा है। इसी उमनये समाज की नर्दनीत को स्थापन र रहा है। अभी उमनये समाज की कल्यना पूरी तरह से जनता में उत्तर नहीं पाई है, क्योंकि व्यक्तिया से प्रपत्ता में प्रवित्त में प्रव्यक्तिय सीची ने विकास किया है, उसने जनता में प्रवित्त काव्य-माध्यमों से प्रपत्ता नहीं, जोड़ है भीर जनता तभी काव्य की भानती है, जब उसका स्थाना जीवन उसमें प्रतिविध्यत होना है।

प्रयोग के विषय में जो हमने बताया था कि उसने घपनी ही परम्परा में मौजूद स्थनों में ग्राथ्य बनाया था उसमें एक यह ही है जिसने काव्य को बढ़ने से रोका है।

[१४] इनके प्रतिरिक्त प्रयोगवाद के प्राध्यक्ष्यल रहस्यवाद ग्रीर प्रलायनदाद हैं, जो अभी तक हिन्दी काव्य में बचे हुए हैं। इनका प्रभाव भारत में दो कारणों से हैं, एक तो दर्शन की परम्परा और दूसरी थोग-मार्गों की परम्परा । दर्शन का प्रदन भारत मे बहुत पुराना है और सताब्दियों ने उसका प्रभाव जनता तक गहरा उतर गया है, जिसका कारण है यहा के जीवन की प्राय एकरसता। खेतिहर प्रणाली इसका मूलाधार है। वह भाग्यवार को जन्म देती है क्योंकि परिस्थितिया भाकारा के बादलो पर निर्भर होती हैं। जल नहीं बरसा, अकाल पड गया । बरस गया, बेली हो गई । सुद्धि की प्राकृतिक कियाओ के ऊपर निर्भरता, गनुष्य को लघुता की ग्रोर प्रेरित करती है ग्रीर फिर वह मृष्टि के रहस्यो को जान तेने की वेच्टा करता है और यही रहस्यवाद का मूल उद्यम है, क्योंकि जानने मे सगा हुमा व्यक्ति जब ग्रमसी सम्य की व्याख्या नहीं कर पाता, तब ग्रहात को अव्यक्त-रूप में अनुमद करने का प्रयत्न करता है। यही रहस्यवादी भावना जब समाज में पुरी-हिन बां के हिहनाद के विरुद्ध पठ खड़ी हुई थी, तब उसने लचुता से महानना को बोर प्रेरित किया था, किन्तु उसके बावजूद प्रपंती वस्तुस्थिति मे वह स्रभावात्मक ही रहा। योग-मार्ग की परम्परा जब रहस्यात्म क जीवन को साधनापरक पद्धति से सोजने का यत्न करती है तब वह व्यक्तिमूलक हो जाती है। मध्यकालीन साहित्य तक हम कह सकते हैं कि मततोगत्ना इसीके रूप काव्य मे प्रतिविम्बित हुए थे, किन्तु मायुनिक काल मे छाया-बाद ने जिस रहस्य की द्वाया देवी, वह यर्गाप पुरानी घारा का ही प्रतिफलन था, दित हो केन्द्र से उदय होती हैं। प्रन यह वैविध्य हमारी जागरूकता का प्रमाण है।

शरद के वर्णन में ऐमी विविधता के दर्शन हमें मिलते हैं। नदी सिमट गई, तो उसमें चमक ब्रा गई, बशोंक विस्तार की भावना निखार नहीं लाती

तिमट गई फिर नदी, सिमटने में चमक धायी
गयन में, बदन में किर नयी एक दमक धायी
दीव कीजायरी बाले कि किर प्रावं विवोगी सब
टोलको से उद्याह भीर उमन की गमक प्रायी।
बादलो के चुम्बनों से खिल ध्रयानी हरियाली
शरद की यूप में रहा-निलस्कर हो गई है मतवाली
मूण्ड कोरों के ध्रनेको शब्दियाँ कराते मेंडराले
मर रही है ध्रान्तर में चुण्चाए खनीली शैकाली।

× सौभः, सूते नील में,

होले है कोजायरी का दिया।

हार को प्रतीक — 'दिया सौ दिया, भूता दिया जो किया।'

किन्तु--शारद चाँदनी का साध्य--

यह सकेत जय का है— व्यार जो किया मी जिया,

प्रथक रहा है हिया, विया।

—शहेव

कही पास हो है, सायद नगते में ठोलको की खावाज आ रही है। ध्रामी हारपान अदनों के पुष्पन से मिल गई है। हिरियाली का जिलार एक बड़ा सार्थक प्रयोग है, जिनमें उसकी चर्कक औरताजरी प्रतिबिध्यत होते हैं। दिया सो दिया, भुका दिथा जो किया, गोकगीतों की सी सहज बंगलता लिए हुए है। धौर किन को सरद की चादनी एक जब का सनेत जैसी दिलाई देती है। किन्तु हुए हो। धौर किन को सरद की करके प्रतिमान भी है, धौर जबन भी। प्रकृति के मन से ऐने हो तो तारतम्य हैं। जब बह व्यक्ति-पक्ष साम्य है तब फिर तोकरजन ही मामने रहता है

हुर-दूर कनक-पूनि, चुरों से उडातो हुई, यातो है सांभ्र कशरो, गाय-सो रंभातो हुई। हैं। मार्क्नवाद ने इस दिष्टिकोण को तोड़ा भौर 'नया 'मानववाद' प्रस्तुत किया जिसमे 'वसुर्धेव कूटम्बकम्' को सच्ची ब्यास्या थी । किन्तु दुर्भाग्य से वह प्रतिष्ठापना ऐसी नहीं हो सकी कि जनमध्यों में से अपना विकास करती, यह बौद्धिक रही, और उसने समस्त परानी परम्परा को ग्रात्मसात करके छोड़ने के स्थान पर, उसपर एकदम प्रहार किया भीर सबको चौंना दिया भीर वह अपना मलग रास्ता बनाने लगी। इसना कारण था सकीर्णताबाद जिसने सामाजिक विदेचन करते समय रुखिबाद का पत्ला पकडा। मानमं ने जिन परिणामी की यूरोप के इतिहास का प्रध्ययन करके निकाला या उन्हें भार-तीय परिस्थिति पर लाग किया गया, जबकि भावसं के परिणामों को नही उसके सिद्धानो को भारतीय परिस्थित पर लाग करने की स्नावश्यकता थी, उसके लिए इस देश के इति-हास. सस्कृति और परिस्थिति को ग्रापते अध्ययन का विषय बनाने की वारवायकता थी। इम प्रकार यथार्थ के नाम पर सङ्गीयत राजनीतिक दृष्टि-भर रखी गई ग्रीर जीवन के ग्रन्थ क्षेत्रों को छोड़ दिया गया, जबकि मान्सेंबाद केवल राजनीति नहीं है. वह जीवन के मुत्यों का नया निर्घारण है जो व्यक्ति, समाज और संस्कृति के मल प्रश्नों को उठाता है भौर जनमे इन्द्र नहीं समन्वय स्थापित करना चाहता है, जो मानव-मानव के पारस्परिक इन्द्र को मिटाकर इन्द्र को मानव और प्रकृति के बीच में पैदा करने की योजना बनाता है, भीर प्रकृति भीर मानव का हुन्द्र वह ऐसे पैदा करता है कि मानव 'ग्रप्राकृतिक' नही हो जाए. वरन प्रकृति को अधिक से अधिक अपने लाभ के लिए प्रयुक्त कर सके, क्योंकि मानद श्रवतोगत्वा प्रकृति का एक भाग ही है, और वह प्रकृति का प्रयोग कर सकता है, उसको बदल नहीं सकता । 'रहस्य' और 'साश्वत' का वह कोई परम्परागत समाघान नहीं करता । [१६] द्विवेदीयुगीन काल्य की उपादेयताबादी चितना के विरद्ध छायाबाद ने

१९६) १२४५ भूगान काव्य को उपाययायात । चताना का वरद द्वायायाद न सपना सफ्त त्यान बनाया, किन्तु श्रीष्ठ ही लोग उससे ऊव उठे क्योंकि गुग नी माग स्रागे वटने को चेट्य कर रही थी। इस आगे बटने की चेट्य को मध्यवर्गीय कता ने ईमान-दारों से देसा और वीदिक दृष्टिकोण ने 'शाम्या', 'युगवाण'।' का सिरजन किया, जिसमे 'होना चाहिए' वी पढ़ित सपनाई गई स्रोर द्वांतिए कवि ने उस चाव्य को 'सद-नीत' कहा। प्रमतिशील काव्य को यह बुनियाद बुद्धिवादी रही। बजाय जन-जीवन मे उतरने के, द्वरसे उसगर विवेचन किया गया और प्रगतिशील कवियों मे यही परस्परा चस पढ़ा।

दूसरी घोर ध्रायावादी परम्परा तश्ण कवियो द्वारा तोडो गई। हासावाद व्यक्ति की मस्ती का प्रतीक बनकर ध्राया, जिससे समाज की कडियो पर प्रहार किया। अराज-कताबाद, सम्पंताद, श्रीतंत्रातिवाद घोर विद्रोहकाद कूट निकला, जो पुराने को पसन्द नहीं करता था, जिसको मुजाए कडकती थी, जो प्रचलित पलायनबाद घोर निरासावाद को उपाड केवना चाहता था, परन्तु व्यक्ति का प्राजीस उसकी सक्ति थी, उसका कोई सामाजिक प्राथार मही था। यह पावाज साम्राज्यवाद के भी विरुद्ध थी। इसने पुरानी वहा व्यापकता की जगह हमे समाज की तीखी गन्ध हर श्वास मे मिलती है

है रँभा रही बजड़े से बिछड़ी एक गाय, यन भारी है, दखते भी है ! ब्राता गजनेरी मांड भटकता सडको पर, चलता मठार, वया वही ददं उसके भी है ? जा रही किसी धर के जुड़े बरतन मलकर

बदचलन कहारी थकी हई,

बीका-बासन, सैना-बैनी में बिता चकी यौवन के दिन काटनी उसे पर उसर ग्रभी तो पकी हुई [ बज रहे कहीं हय-होल-भांभ, पर बहत दर गा रही सब मदमस्त मजुरोकी टोली कल काम-धाम करना सबकी पर नींद कहाँ — है एक वर्ष में एक बार फ़ाती होती !

इस भाग-स्वार से दूर, बन्द कमरे में, चिन्ता में डुबा दार्शनिक एकर्स एकाकी

है सोच रहा यह जीवन प्या, में बया, मेरी यह स्नात्मा क्या ? सब कुछ खोजा, उत्तर न मिला,

कुछ भी न बचा मयकर बाकी !

वह दुर घोर ससार दुर, सब विश्वज्ञुल, सब द्यावा-छल, है बिड्ड परस्पर सुबक रहीं बोनी निधंन ब्रात्मा-काया ! रोए भूगाल, बोला उल्लू, हिल गई डाल, चौंका कूला जो भंक उठा प्रव देख स्वय ग्रयनी छाया।

—सोन्ड नगर के एक मुहल्ले का है यह चित्र । ग्राम से ग्रलग है इसकी घुटन । फिर भी दलित जीवन में अपना ही उल्लास है। होली आ गई है। बहत ही बोभीला है यह वर्णन ! दार्शनिक एकाकी सोच रहा है। उसे कोई उत्तर नहीं मिला। सब कुछ कसकढा है। उल्लु बोलता है, भूगाल रोने है। दश्य दूछ बोभरस हो उठना है, जब कृता अपनी छाया देवकर स्वय ही रो उठना है। चादनी का उन्लेख भी नही है, जबकि कृत्ते का धपनी खाया होलो के दिन देख पाना उसीकी श्रोर इंगित करता है।

एक ही कवि विभिन्न परिस्थितियों में पडकर कैसे दो चित्र देता है। नरेन्द्र हुरात बलाकार है। उसने यनेक नये प्रतीक दिए हैं। उसके गजनेरी साड जैसे दिलक्ल प्रगतियोल चिंतन पर विवेषन करना प्रव आवश्यक है। 'प्रगतियोल साहित्य के मानदण्ड' में हम इसपर विवेचन कर चुके हैं, परनु वहा जो बाते रह गई थी, उनको यहा सप्ट कर देना भावस्यक है। काव्य बया है यह हम स्पष्ट कर चुके हैं। यहां हिन्दी की मामागाग्री पर ही विचार करेंगे।

पहली बात यह है कि व्यक्ति की किसी भी अवस्था में ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती, जिसमें व्यक्ति के विवेक अथवा न्यायवृद्धि को समाज के सम्वन्थी में निर्पेक्ष भाव मे मुक्त करके देखा जा सके। दूसरी बात यह है कि व्यक्ति अब समाज के तादात्म्य मे अपने व्यक्तित को स्वतन्त्र समभी जानेवाली जन वृत्तियों का परिमार्जन करता है. जो उसके दैनिक-सामाजिक सम्बन्धों में बाह्य वस्तुओं का नियत्रण करती हैं, अथवा यो करें कि एक-दनरे को हानि-साथ पहचानेवाली बादान-प्रदान, वितरण, क्य-विक्य करने-बाली दे स्थिति का माध्यम बनती हैं, तब वह प्रपने व्यक्तित्व का हनन नहीं कर देता वह समाज में मसीन का प्रम बनकर नहीं रह जाता। विसं प्रकार समाज-रूपी सरीर में प्रास-रूपी व्यक्ति ग्रपने स्थान पर नियत है, पर ग्रपनी शक्ति से दूर-दूर तक को देखने के लिए स्वतन्त्र है, उसी प्रकार व्यक्ति की मेघा भी समाज में कृष्टित नहीं हो जाती। मार्क्स ने यूरोप की तत्कालीन परिस्थिति में इसी सत्य को देखा था। गड्डा देखकर भी यदि ग्राख गड़ में सरीर को से जाना चाहे, भयदा सरीर के मरने पर मांख जीवित रहना चाहे, तो जिस प्रकार ग्राप्त के माध्यम से मस्तिष्क परिचालित होकर भी अपना भवा-बरा नियत्रित करता है, तथा सरीर के मरनेपर बाब को भोजन मिलना बन्द होकर बाख का काम ममाप्त हो जाता है, उसी प्रकार ध्यक्ति सारे समाज में ऐसी धन्य भी दक्तिया प्राप्त करता है, जो उमपर नियमण करती हैं भीर समाज के न होने पर व्यक्ति भी जीवित नहीं रहता। व्यक्ति भपनी भाषा, ग्रपना चिन्तन, सब सामूहिक रूप से ही सीखता-सम-भना है। ये दो बातें समस्त मधर्ष को स्पष्ट करनी हैं। 'ऊर्व्वचेनन' की ग्रोर विकास-क्षम में प्रागे ले जाने की जो बात योगी श्री ग्रर्रावन्द ने कही है वह व्यक्ति की चेतना को सुमाजगत करके नहीं देखती, जबकि अरविन्द ने एमीबा से अपने विकास की प्रारम्भ क्या है।

यह सत्य है कि मनुष्य का विकास करोड़ो वर्षों में हो आएगा, परन्तु उसका कोई विकास व्यक्तियादों देश से समाजगत रूप को छोड़ कर नहीं हो सकता । यहा कोइस्तर को बात था जाती है, जिसने नहा है कि योगी और किमशार दोनों का समस्यत हो। विकास को मनती मडिल है। मर्थान् व्यक्ति और समाब का यह आएमोलांड और समाव जोनांडि की और उन्युत रूप हो। मेरीतिक और आप्यासिक रूप का चरम मिलन है। परन्तु यहा दोनों रूपों को इन्द्र के रूप में प्रस्तुन निया गया है। योग का सर्थ दारीर और मन की सस्तियों वा नियोबन-मात्र है। 'योग' का विकास मारतीय दिवहास में समाज- मह बमुन्धरा, कभी न लगती इतनी प्रियकर सता-कुज-दूम लगते केवल मूक, तुन्छतर। यदि न विद्वकी वशी में सुर का सरगम भर इतन्द्र बजाते समस्क्ष्यतित क्षा मधर महत्तर।

पृथ्वी की सुन्दरता बिना पश्चियों के क्षेत्री इतनी सुपर नहीं बनती, जितनी कि उनके सपके में बपाती है। हम, जो गांवों में रहते हैं, इसका सारतस्व समभते हैं बौर इसे स्थायावास्थि। ने भी केवल सीनदर्यियाता के कारण समभा था।

वर्षा का वर्णन करते हुए कवि कहता है

बह रही वायु सर्-सर् सर्-सर् बरमते मेघ भर्-भर् भर्-भर् कांपते पत्र थर्-थर् थर्-थर्

तो बाज सजा है ब्रासमान परती पर जीवन भारतमान तपु-तपु धाराएँ धायमान जीनत, दृततर, मनहर, सुन्दर बहुवर्ण धरा, बहुट्य धरा हो गई नवल जन-मनोहरा

यह परम पुरातन चतुःचरा गतिवालि पवन ज्यों जीवन-स्वर हो गया चित्रपट पूर्ण गगन छ्विक्प वर्णभय चचल घन पत में कुछ पल में कुछ बन-बन क्षण-अण में प्रियतर सुबरेतर

लो जठे भूमि से हरिताकुर द्योभित है पाम-प्राम पुर-पुर हो प्राणा शोतत मानत-उर मय कृष्टि करेगा हो तथ्य पाकर पावत का पायन कथा करती स्वरूप का परिवर्तन तन से मन से बनतो मूतन पह म्हति सदा नव जीवन धर

<sup>—</sup>त्रिलोचन शास्त्री

प्रतिभाका स्पर्ध दिया घोर समर काव्यो की सृष्टि की । पुरिकत ने अवस्य 'यूजीन घोनि-मिन' ऐसा पद्योपन्याध तिला जिसको कथा उसने अपने-आप बनाई घो। यह प्रकट करना है कि सास्त्रीय पद्धति से, अपवा किशी भी अकार के जित्रण-सीन्दर्य-मात्र से, कोई भी क्यानक, बुग पर प्रभाव नहीं डालता, जब तक कि उसके भीनर सुगव्यापी कोई विषय नहीं हो। युगानुक्य होने का यह तथ्य यह भी प्रभाणित करना है कि कवि अपनी कथा भी गढ़ सकता है, उसमें यदि सांका होगी तो वह सुग को प्रभावित कर सनेगा।

प्रवन्धवाध्य को यद्यपि विभागा प्रत्यन्त कठिन है, फिर भी उसमे वर्णन-चित्रण के लिए हाय-पाव खुते रहते हैं। दिनकर का 'कुरुश्चेत्र' एक खण्डकाब्य है धौर ग्रोज के दृष्टि-कोण से यह सफल है। परेन्तु इनना पुराना विषय भी युगानुकव होने के कारण ही लोक-प्रियना प्राप्त कर सका है, जबकि पढ़ आरकाग्रसाद सिम्न का 'कुष्णादन' जनना स्थान प्राप्त नहीं कर सका है, सबिक उत्कृष्ट है। यह सि लोकप्रियना है काव्य के उद्युष्ट और अंदर होने का परिचायक नहीं है, तथापि यह निस्तदेह सत्य है कि कलाकृति प्रप्ते प्र्यन प्राप्त नहीं के प्रप्ते प्राप्त स्थान के प्रयोग प्रदा्त करती है और कालप्तय वे इन्हों भानवीय मूल्यो और अनुपूर्तियोग तथा विश्वण के बस्तप्र जीवित रहनी है, जिनने वह परने पुण का स्वस्त प्रतिविद्य का मार्थक्रदांत करती है। किन्तु ने तस्त प्रप्ते पुण का सक्त प्रतिविद्य का सार्थक्रदांत करती है।

यो रखा जा मकता है। भाव, विभाव, अनुभाव, सचारी, व्यभिचारी झादि की वर्णन-स्वत-वता तथागुजायरा से प्रवत्यकाच्य में तो रस की निष्पत्ति हो जाती है, परन्तु गीतिकाच्य मे एक गीन में एक ही भाव का वर्णन होना है, बत यहा उतने फैन फुटने का बवसर ही नहीं मिलता । पुराने ग्राचार्यों ने गीत में 'घ्वनि' को प्रमुख माना था । वह भी ऐकान्तिक है । गीन भाव परही ब्राश्रित होता है, जिसका प्रवृत्ति से सबध है, जो मनुष्य-मात्र मे सहज ब्रोर साधारण है, सामान्य है। वहीं गीत का हृदय से तादारम्य कराती है, वहीं सूलम बनाती है। पुराने और नये गीतिकाव्य में बहुन वडा ग्रन्तर है। पुराने मुक्तक राषाकृष्ण-सवधी. या प्रार्थनापरक रहे । जयदेव का गीतगोविद, विद्यापति की पदावली, रीतिकाल के सबैये ग्रीर वितित्त तथा मूर के पद, सब ही राघाकृष्ण के जीवन पर ग्रवसवित थे। इसलिए एक भी पर या छन्द वास्तव में स्वतंत्र नहीं था। उसकी मावमूमि ब्राश्रय में राधाकृष्ण की क्या के रूप मे पहले से विद्यमान थी। वह मुक्तक उस विद्यमान प्रवद्यत् भूमि मे एक विशेष पूल बनकर खिल जाता या। ग्रत वह भाज के मुक्तक में भिन्न था। दूसरी ग्रोर मिद्री. नायों और कबीर के गीत हैं, जिनकी रसात्मकता का पूरा भवनिन दार्शनिक वितन ही माघार था। ग्रत वे प्रवितित हो गए। ग्राज के गीत व्यक्ति-विवेचन-भूमि पर बने हैं और यदि वे सहज प्राह्म नहीं होने, तो उनमें लोगों को रस नहीं मिलता, विशेषतया तब जब उनके लिए नयी दिष्ट में काम नहीं लिया जाता। मैं प्रयोगवादियों की बात नहीं कर रहा कहना हैं •

सहामिन उठी, चलो, यह घूप, हमारा रूप ! इसीसे खुन हमारा गरम, इसीसे बोल हमारे नरम. दमीसे सन में प्राप इसीसे गान कि जो वर्षा में गुंजेंगे, इसीसे कजली, कदम, हिंडील इसीसे मरज, पलावज, दोल ; इसीसे हास, इसीसे रास, दसीसे घरती पर ब्राकाश सहागिन उठी, द्योद लो घप, विखारी ग्रपना-ग्रपना रूप ! धप पर हँसी, कछौटा कसो. खेन पर चलो समन्मत भाल कांस खोदी, काटो जजाल। बेर के रहे जला दो आगे होकर खडे <sup>1</sup> प्रमीने की घारा बलवती धरा जिससे बनती फलवती. महायो दूचो, पुतो फलो, मुहाबिन, चलो, खेत पर चली <sup>1</sup> घराका परेन सुहाग ' गगन की साथ भ्राय-बब्ता सस्त सुर्वे सुरज सेत रहा है फाग !!

—भवानीप्रसाद मिश्र

धूप का यह वर्णन विलंदुल नमा है। साराजीवन सूर्व के ही कारण चल रहा है। इस पूप को घोड़ लो। इसपर हसो। बाधाधी को हटा दो। यह पूप कुम्हें समिद्ध देगी। इकाई उसका व्यक्ति है, उसी प्रकार समाजवस्तु-काव्य की अनुभूति व्यक्ति में होती है। जिस प्रकार मनुष्य के लिए समाज ग्रीर व्यक्ति ग्रन्थोन्याश्रित हैं, उसी प्रकार काव्य के लिए मोइपक्ष ग्रीर व्यक्तिपक्ष ग्रन्योन्याधित है। जिम प्रकार मन्ष्य का मगल व्यक्ति-परक नहीं है, उसी प्रकार काव्य का मगल व्यक्तिपरक नहीं है। दोनों की अवस्था और ग्रास्या सामृहिक जीवन के मूलाधार तथा ग्रादान-प्रदानरूपी शब्द-व्यवस्था पर ग्राधा-रित है। यन बाब्य के बागे के रूप में व्वति, रीति, अलकार और वकोवित मान्य हैं ; परन्त दे ही सब कुछ नही हैं। परानी परम्परा का सर्वश्रेष्ठ स्वीकार लेने पर प्रगति सकू-चित नहीं रहती। वह जीवन की सर्वांगीण चेतना का विकास है। वह समाब-पक्ष में लोक-बंपम्य मे प्रेम-भावना का पक्ष लेकर चलती है और अभिव्यक्ति में मनप्य की कल्पना को समृद्ध बनानी है।सौन्दर्य सापेक्ष है धन वह नयी अभिव्यजनाओं को स्वीकार करना है। प्रेम, बासना अपूरि जीवन के प्रति अधिक सजीव प्रनुरिवन पदा करनेवाली अनुभूतिया काव्य का बावश्यक बन हैं। वैराग्य की वह सीमा जो चेतना को व्यापक बनाकर, परा-नुभृति के प्रति उन्मूल बनाकर, केवल ऐद्रियपरकता रोकती है, श्रेष्ठ है। युरोप मे ग्राए हुए विभिन्न बाद निम्नमध्यवर्गीय गतिरोधो मे पैदा हुए पलायन हैं। उनके प्रयोग शैली-ग्रभिव्यक्ति तक मान्य हैं। प्रतीकों का संजन काष्य के लिए भ्रावश्यक है। केवल मजदूर-किमानी पर लिखी कविता, विसी-पिटी नारेवाजी, राजनीतिक कार्यक्रमो की तुकवन्दी, भौर व्यक्ति-वैचित्र्य की ग्रतिकृष्ठा कविता नही है। **न** उपादेयता के नाम पर उपदेशा-त्मनता श्रेय है, न धात्माभिव्यक्ति के लिए द्रविड प्राणायामी कल्पना। काव्य मे तो 'काक्षा उपदेशवत् सरमता' होनी चाहिए ।

सरतपुति का रम-सिद्धान शास-प्रयावाने समाज के ह्यामकाल से जन्या था। तव सामन्तवाद दासीको मुनन करके भूमिवढ निसावी को पहले की तुवना ये प्रधिक स्वत-नता दे रहा था। तव सह स्वीकार किया गया कि काव्य केवल पुरोहिनो के लिए नहीं, न विवादी के लिए हैं। नह तो मनुष्य के लिए समाज रूप या हुए है। तव साधारणीकरण के माध्यम से भाव, विभाव, प्रमुपाव, सावारी आदि के योग मे होनेवाली रस-निप्यति वा सिद्धात बना जो समाज-पश को स्वीकार करता था। अयो-ज्यो सामन्त्रीय समाज का प्रगति-तत्त्व पटा, वह योपणकर्ता बना, उच्च वर्गों ने रस-सम्प्रदाय पर हमला किया और आत के प्रयोगवाद, तथा भन्य पतान्यनदारी बारों को भावि, बन्दोहिन, रीति, व्यति, स्वति-कार प्रापित दे द्वारों में सिर उठावर रसवाद को घटाना वाहा। परन्तु साने बठा हुआ दिवहास मही तीर सका। भरत के सिद्धात-निर्माण के समय योपण मिटा नही था, उसने हम बदला था। यन युगानुकद बचना सिद्धात पर प्राए। व्यक्ति-माज विवेचन का प्राधार बना थोर दरवारी नावक—भीरोदात्त की करना हुई। समाज के हिस्स ने नाव्य नो रसवारों तक सीपन कर दिया। काव्य में बहु जो कि मनुष्य-मात्र के सिए यो—'रित'

मानवर्ष्य युव-नेद से बदल जाते वर भी वहन्-साहृत्य में भेट नहीं कर सकते, यो अपने ग्रह-कार की तृत्वि में हतो की जगह ऊटो की मृष्टि करनेवाले विस्तानियों को तो दूर हों में प्रणाम करना श्रेयरकर होता है। हमें काव्य के स्वायो तरब की प्रतिष्ठा करने के लिए प्रवस्त्र ही ऐसी भूमि चाहिए जो सार्वेजनीन हो। मुरके बाल-वर्णन, सुलसी के रामराज्य-वर्णन, क्वीर के जाति-पानि-विदोधी वर्णन, काणिवाछ के काम क्वा विभूषित वर्णन और मायकोवस्की के कार्ति-वर्णन के विमेदों के एकरव को न देसकर जो उनके रसमूल एकरव को विभेद करके बेसते हैं, वे भोषे की हो। सीए कहनेवाले खोग हैं। वे खायाबाद को भाषा चाँनी के लिए एक देनावा समकते हैं, श्रीर कुछ प्रधिक नहीं। प्रकृति के विपय में निस्ती निमन कविना का उनके सम्प्रत कुछ भी मुख्य नहीं हैं

> भेवमाता-सो मुस्ति भन के लिये, रमझाता-सो रिसक जन के लिये मूठ हाला-सो प्रणय की चेतना प्राण, ज्वाला-सी हृदय की वेदना कह सक्त्रावारा, जला में कीन हैं? सुष उदार बनी सहुद में मीन हैं।

> > —श्वामविदारी शुक्त 'दरल'

हिन्तु यदि इसे सचाई से देखा आए तो उसमें हमें जीवन की एक गहरी अनुसूति सिलती है। इसमें लोकिक को असीकिक रूप में रखा गया है और मानम के अनेक सरकार यहां बेरना को अनुसूति बनकर अस्त करते हैं भीर शोखने में तो निरासा, परन्तु वस्तुत दार्धनिक तत्त्व से भरकर पूछते हैं कि मतृष्य को अपनी सत्ता क्या है, बल्कि है ही क्या ?

परन्तु ऐसे चित्र नये युग में बहुत कम मिलते हैं, क्योंकि इनमे दृष्टि का शसार नहीं है. नहराई अवस्य है।

कार्य में इतनो समता है कि वह सपने एक ही खर से अनेक स्वर कर नित्त कर सकता है। ऐसी ही मरेटर की एक किना है जिसमें यह यान तो बसस का करता है। जिन्नु ववयुग के वागरच नी पूरी समीर को उससे उतर प्राती है। और एक-एक उत्तर पुक-एक कोंस यनता हुमा हमारे सामने सुजता है। में पिहारी का दोहा नहीं बता रहा हू यहा, बिल्क इस सरेसे को देख रहा है कि कितना साथव मौजूद है, रस्तू पालोवक करी देस नहीं रहे हैं। बात पतार आदि का प्रतोक है। यह वागरण है। यह मस्कृति का राम-तब्द है। यह साथोक की पूर्वीमृत सफता है, सभी सी यह प्रपन्न बंसा नाम की कीता सगता है म्रोर बीश पर बाँधे फेटा स्वेद-बूंद टपटप कर गिरती टोगी साती सहर-चपेटा काले स्याह हस्त-युग मेरे यहाँ निरतर दर्श हिसाते पक-यक, रक-टक कभी बीच में

--शनभ

'साथी' का प्राय प्रयोग गुढ़ की लचकार के लिए किया जाता है। यहा वह सग मेहनत करनेवाले से स्नेह के लिए आया है। यपने यहा ऐसी रचनाए सचमुन कम है। किन्तु अविष्य में वे भीर भीर आएगी इसमें कोई सन्देह नहीं है। काने हाथों का डाड़ हिलाना न केवल विज्ञात्सक है, न केवल उसमें श्रम की ध्विन है, वरन् उसमें हैं जीवन का वह मनवक विद्यास जो कि इसकी सारी शनित है। विद्या रोकनेवाली भीर है, परन्तु यहा लहर-चरेटा लाकर भी जीवन की मीज सेने निकसी हुई होगी ककती नहीं। यक भी जाए, इक-स्ककर भी चले, तब भी भीत नहीं इकता, यह वीच के व्यवधानों को बार करने का सबत दिए चलता है। भीर छोटा सा साथी जीवन के कोमल स्वप्नों को बाद करता है कि यहा से 'पिककूजन' दूर है। कमलों के वन का स्नभाव ग्रन्त में जाकर पूरा हो जाता है।

केसरी ने प्रपने 'चकोरी' मे एक बहुत ही स्थायी रचना साहित्य को दी है।

किन-स्त्य के रूप में यह प्रवाद चला था रहा है कि चकोरों एक ऐसी चिडिया है जो चन्द्रमा को देखनी रहती है ब्रीर उसके प्रगार चुगती है। हिम से प्रगार ! चकोरी कहती है कि मैं तुम्हारे हिम से से ब्रगारे चुगती है, चुगती हूं चिनवारी कि प्राणों से कभी म बुभनेवाको प्यास जल उठे ! कैसी विभार सर्जना है। इसमें कितनी शक्ति और कितना प्राण है ! नयन हास पोते हैं, मुख समिन !

चुनती चिनगारी कि जले प्राणों में ऐसी प्यास पियां
युग-युग बुधे में, बूग पीवे शास्त्रत तेरा हिम-हास पिया
हिस पीवे प्रमार नगन में चुए प्रमिय-रसपार पिया
हिस पीवे प्रमार नगन में चुए प्रमिय-रसपार पिया
होड प्राग-पानों को रे कहता जा निसको प्यार किया
जाना प्राप-प्रमाप, न जाना नुमको केवल एक पिया
प्रमाप-प्रमाप, न जाना नुमको केवल एक पिया
प्रमा-कृत सूनी में निवेक रेकर प्रपनी यह टेक पिया
पून-कृत सूनी पर जोते-जी ईसा होना सीवा
एकवता में सती-सुहागिन चिता-सेज सोना सीवा

महादेवी वर्मा ने झपने खावाबाद की व्याख्या करने की चेप्टा की है। परन्तु वह कोई महत्व की बात नहीं है। वस्तुन आधुनिक काव्य का नया ही काल-विभाजन आव-स्वक है।

सामन्तीय ह्यासकाल में, १७४० ई० से १८५७ ई० तक हिन्दी में सब तरह काव्य का ह्रास हो रहा या। इस समय को ग्रभी तक उत्तर रीतिकाल कहा जाता है, जबकि यह गनत है। इस समय जहा एक घोर दरबारी कविना लिखी जा रही थी, वहा पलटदास, दयाबाई, सहजोबाई, दुलमदास, तूरसी साहेब इस्पादि अनेक कवि सतकाव्य की परम्परा को आगे बढा रहे थे। आचार्य शुक्त इसे नहीं देख सके थे। वे शेख निसार और नुरमूह-म्याद जैसे सफी कवियों के भीतर इस यग-विशेष में आए परिवर्तन को भी नहीं पकड़ सके. क्योंकि उन्होंने तो धाराए पकड़ी, यह नहीं देखा कि एक ही विचार का विभिन्न परिस्थिन तियों में कैसा विकास होता है। यही वह कास था जब हिन्दी का फारसी-गर्भित (उर्दे) काव्य दरवारों में फल-फल रहा था। इस काल के बाद भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र का यग भाया । वहीं से सब ब्रायुनिक काल मानते हैं । किन्तु भारतेन्द्र का यग केवल उन्मेच-काल था। उर्दे में दाग पुरातन परम्परा को लिए हुए थे, और हालों में पुनकत्यान की भावना, थी। वही हमे प्रकारान्तर से भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र, नायूराम शकर और श्रीधर पाठक में मिलती है। इसके बाद आया मुझार-युग। इस युग में हरिसीय और मैथिलीशरण गप्त प्रमुख नेता थे। यो तो गुप्पणी थभी तक लिख रहे हैं और अच्छा भी सिखते हैं। परस्त उनकी विषय-वस्तु अपना रूप नहीं बदल सकी है। इसकाल के बाद हिन्दी मे नया मोड ग्राया । चूकि इसे ग्रव छायावाद कहा जाने

- (४) व्यक्तिगत वासना अपने स्वरूप में ही प्राय प्रकट हुई है।
- (५) भाषा की ट्विट में सहज को ही प्रधिकतर अपनाया गया है। पदावली प्राय ही कोमलतम बनाने का प्रयास मिलता है।
- (६) नवे क्षेत्र मे नवीतना का ही बायव नहीं है, उसका राग-तस्व स्थायी मानी को लेकर ही चलता है।

अत से इस विषय को हम एक और उद्धरण देकर समान्त करते हैं, जिसमे कम-नीयता और गति का छद बहुत ही सम्यक् मतुषन देता है

वसन्त के चपल चरण !

पिको पुकारती रही पुकारते परा नगम मगर कहीं कि नहीं वसात के चयल प्रश्न । धर्मस्य कांयते नयन सिए विधिन हुम्राविकत प्रमस्य बाहु है विकल कि प्राण है रहे मचल प्रसस्य कर खोलकर कुटु-कुट पुकारती विधोगनी चसन्त की दिगान की निहारती विधोगनी चसन्त की ह्वानी विधाय चन, मगर कहीं को नहीं वसन्त के चयल चरण !

—रामदयाल पाण्डेय

यह है बतन की महासति । मैं ठी सहूता कि नये बसत की गति है। 'ज्वल पग दीपसिनानी धर गृह मन जन में सुलगा वहत,' की परपरा और भी मुंबर जिन्न साई है। इस कविता में केवल कोमलता ही नहीं, फ्रोज भी है थीर इसीलिए इसमें जो स्कुरण-ग्रिका है, वह बहुत ही साक्येंक हैं।

यह सत्य हैं कि छानावारी कवियों के बाद किसी एक किव ने प्रभी उतना महस्व नहीं वाया है, जिनने की प्रामा थी, किंतु मैं ममफ़ता हूं इसका एक कारण यह भी है कि बाद के कवियों को ठीक से पढ़ा भी नहीं गया है। साहित्य में प्रालोचना का क्षेत्र इतना विनय्द हो गया है कि उसमें प्रभी ऐसी यादा तभी होगी जब लोक में शौर प्रधिक दिशा कैनेकी और कवि तथा पाठक का सीवा सपक स्थापिन होगा। उसे देखना बहुत ग्रावस्थक है।

स्रोप्रश्चित्त के माध्यम के कोण जा बदल जाना यह मकट नही करता कि उससे 'धंय' बदल जाना है, परन्तु काव्य के इतिहास के बदलते रायो में उसका अध्ययन करना सावस्यक होजाता है। गुणजी और यह, निराता सादि पर हिन्दी में तो भी हुस लिखा जा चुका है। उतके बाद के ग्यों का सध्ययन वो बहुत ही अपर्यपूर्ण हुसा है, न्योंकि सातोचको ने सावाय पुतन की तरल अध्यापकीय प्रवृत्ति सरवाकर बाद-भूमि पर कास का सहित सम्यक्त रिया है। दीर नमें स्परी को पूर्णवा नही देखा है।

यहा हम उमीका ग्रध्ययन करेंगे।

[२६] माने बड़ने से पहुंचे मैं पहुं एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूं। किसी मो जून का किस पपने सामने एक ध्येप रखता है। इसने उनके भीतर एक प्रमान स्वत्य कम सेना है। बहु पुत्र धीर क्यिक का परम्पराधित सच्च होता है। इसने व्यक्ति भी तम्मुता और महत्ता, दोनों हो रहती हैं। इसी क्यक्ति भी तम्मुता और महत्ता, दोनों हो रहती हैं। इसी के साथ एक स्वत्य पुण-पुण का होता है। वह स्वाप्त के क्याप कर सच्च । एक समय पा चव राजामों के वेशव वा राजामों के वेशव वा राजामां के विराज के वा राजामां के वेशव वा राजामां के वित्र वा राजामां के वित्र वा राजामां के वेशव वा राजामां के वेशव वा राजामां के वेशव वा राजामां वा राजामां वा राजामां वा रा

युत के परिवर्तन ने हिन्दी-कान्य ने नरे रूप दिए। आरकेन् में पूरावत और नवीन ना मितन हुवा धौर फिर हम नवीनना भी और पिषक जिल बने। हिन्दी के मालोबनों ने इन समस्त युगी को अपन ही मानववाद की भावनूमि पर देखने को बेटा की। परन्तु वे पूर्ण त्यार नहीं नर सके, नयीकि उन्होंने 'द्यापावाद' सब्द को पकड़ा, उसके 'मम्पूदर' को नहीं लिया। असाद, पत, निराला और महादेश भारतीय सस्तृति में एक नये मम्पूदर है। यह सस्त निशी मालीचन ने स्तीनार नहीं किया। जिले होते लिला कहते हैं, वह इन्होंना लाया हुमा है। दन्हीं नोधों ने निल के सत्त को यूनके सत्त्य से एराकाद करने के भीम प्रसल में सक्तनार पाई और दशीलए स्तृतीन महाकृति होने ना भी गौरव बाया। किर भी इनमें एक कमी रह गई कि में कृति चनना तक नहीं स्तुन किया जा रहा है ।

कवि का ध्यक्तित्व समाज में अपने भी सुल-दुल लिए रहता है। जब वह उन्हें हुत्व नहीं देता तब हम उसे किसी वडे रूप की ग्रोर बटते हुए देखते हैं। वह कहता है

खत से खींचा गया यह चित्र तमको सौंपता हैं।

X

करन पाया दूर

इसको एक भी क्षण के लिए हूँ, एक पल भी सह न पाया

में उड़ामी की भरतक.

म उदासी की भरतक,

जो कभी इसपर ग्रा गई है! तब यही चाहा कि

ग्रपने प्राण की सजीवनी को घोतकर

इस चित्र को प्रत्येक्ष नम में फंक दं में।

जब कि आँधी का भयानक देश्य

ग्रपने बच्चपम घर जनमगाती भूमि पर उन्मल जैसा

घ्वंस का गायन सुनाता

प्रलय दीया की मिला लय सदल धारामार वर्षा में किलककर

सवल धारासार वधा म ।कलककर तडित जैसे दाँत धिस निश्चित होकर धुमता या

ताड़त जस दाता घस ानाश्चत हाकर धूमता या तब समेटे बांह में इस चित्र को मैने सदा ही

शुचि हृदय के स्पदनों के बोच में रक्षित किया है।

—राजेन्द्र शादव

वह समाव की कबा को एक भी क्षण के लिए मपने से दूर नहीं कर पाता। वह एक मृत व्यवस्था में जीवित स्वास फूककर उने फिर से सबद बना देना चाहता है। बाधी ना देत्य दोषण का प्रतीक है। तदित जैसे दातों का विस्ता प्रच्छा चित्र है। जीवन के स्व चित्र को विश्व हर तरह से बचा लेगा चाहता है। बाधी और पानी की उने दतनी चिता नहीं है, क्योंकि मन में कहीं न कहीं वह यह प्रमुख करता है कि यह साट स्थायी नहीं है। में ब्रांत हैं। चले जाते हैं। किंतु मह जो पित्र है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मही तो सम्मता सौर सस्वति है। यदि यही नष्ट हो गया तो उसके पास बाद में वब ही क्या

विवासन अब पुराने बधनों को छोड़ रहा है। यह पुरानी स्वार्थपरक या आरम-

का 'विम्ला', प्रभात की 'ऋतवरा' इसी ऊवाई की प्रोर को सकेत है। बाज के युग में किंव समे एक पूर्ण जीवन-स्वप्न नहीं सोज पाए हैं। तभी वे ऊची चोटी तक पहुंच नहीं पाए हैं। कीन पहुंचेगा यह प्रभी नहीं कहा जा सकता। एक नीम-सासीवक ने इसे बीनों का युग कहा था। मैं इसे कुला कहता हूं। कहनेवासा स्वय बीना है। बीनों के हाय निरतर प्रागे प्रीर उत्तर उठने हुए नहीं दिसाई देते। हमारे यहा यदि व्यक्ति रूप से प्रभी पूर्ण उपनिवस नहीं भी हुई दो भी क्या वर है। बहुत तक युग कर प्रस्त है, जितना सलाव्य इस मुग में जन्मा है, जनना पुराने युगों में नहीं मिलना। भीर फिर किंव निरत्तर वह रहे हैं। हमें यह नहीं भूतना वाहिए कि तुत्तकों ने साठ वर्ष की उन्न से 'मानक' सिरा या प्रीर प्रस्त वे की साच प्री पर प्रस्त वे की साच की साच को साच विस्त साच प्री हमें हम हम हमें से दलता हो होगी। प्रमीन, प्रयोग इत्योदि को हम सहन ही व्यक्ति विश्वीत होगी हस्वादि के नये स्थात्य कह सकती होगी।

हैं। हम किसी भी कवि की रचना देखते हैं तो वह अपने 'कय्प' के धनुरूप नहीं उतरता।

लेकिन प्राज उसका दर्प है विच्छिन, भवनत शोध, जल पर तैरते जलपान के ये भ्रमणिनत लघु खण्ड जैसे कर रहे हो महत्तम शस्तित्व पर जिसकर सम्बद्ध स्थेप !

×

सान पहली बार शायद जिरगी में कर रहा महसूत में—
कुछ जंगतियाँ मुक्षपर निरतर छठ रही है।
में नहीं समका कभी मेरी महत्ता का कहीं प्रस्तित्व भी है।
किंतु दुनिया की मजर में प्रात मेरा दर्ग,
मेरी शहन का विश्वोत स्वात मेरा स्वात मेरा स्वात स्वा

--धनश्याम श्रद्धाना

व्यक्ति का स्वामिमान भी झाज स्वीकार नही किया जाता, क्वोंकि उसे तो घोट देने की स्नोर ही प्रयत्त हो रहा है। झात्मा में होनस्व की मावना भी स्वयनी कचोट के गर्व का ही परिचास है। किन्नु कवि-हृदय की कामना दस प्रकार है

"कविको वाणो अमृतमयहो जाए। वह मृतको मे नव जीवन भरदे। सन मे

सुन्दर इच्छाए रखकर मानव सुख से निर्भय विचरण करे।

"चिर प्रथिमारे पव को पार करके जीजग्रारा पम मिले। तन, मन, जम फ्रीरजीवन मनलमव हो जाए। मुग की प्रतिनिधि कल्याणी कवि की नवनाणी धन्य हो। सब जतकी जय-जब गाए। " (तरारा पाण्डे)

यह एक पत्र का चिन्तर है या यही किय व्यक्तिय की समझता है <sup>2</sup> में समभता हू कि जीवन में फैनेक पक्ष होने के कारण अनुमूति समय-समय पर विभिन्त रूप से अपने को व्यक्त करती है। कभी-कभी घटना-विशेष से प्रभावित हो जाने के कारण हमें दृष्टिकोण में एक प्रकार की ब्रति भी दिखाई दें जाती है। ऐसी रचनाओं में हमें वैयक्तिकता के अति-रिक्त लोक-प्रभाव की ऐतिहासिक पटना भी देखनी चाहिए। कवि अपने को अभावों से प्रस्त पाता है तो वह सपने की सलगाय के नाम पर विद्रोह करता हुआ प्रकट करता है '

तुम्हें चाहिए प्रेम, प्रेम से मेरा थवा नाता !

तुम मुखके सर्वस्व, ग्रीर में दुखका निर्माता ! कत प्रभात होते चल दूंगा, ग्रलख गीत गता ! में ग्रपने पथ के कण-कण में ग्रपनायन पाता !

**—श्यामिवद्दारी शक्त 'तर**ल'

बचोति-सी इर से निकल को बचोति-सी इर से प्रकृति के मिल भवानक, ज्ञान कित कर सीन होती किस गान में ? माज भेरे भाग पर भी प्राचा ! डाली स्निम्ब छाया भगद उस सोन्दर्य-गांग की भगद प्रचार प्रमाद माया भाव सेरे प्राच प्रमाद सामा भाव सेरे प्राच प्रमाद सामा स्वाच सेरे कर है। मिलेंग क्या दियों कर ?

–शज्ञेन

संदरना का बागरण होता है मक्कि के बाताहन से। मनुष्य उसे प्राप्त कर लेका चाहता है, किन्तु उसे फिर भी बही लगता है कि वस्तु को यह पूरी तरह से बहुण नहीं कर सका है, उसमें एक धाकुलता बची ही रह जाती है, उसमें भीवर भी एक ज्योति है, जो समग्र की ज्योति से मिन जाती है, किन्तु वह भततोगता कहा जाकर तीन ही जाती है, यह वह नहीं जान पाता। तभी वह चहिता है कि सीर्य का अवाक् कर देनेवाला, मन में एक धाक्र वर उन्हें वाला, विस्ता है सिह सीर्य का अवाक् कर देनेवाला, मन में एक धाक्र वर उन्हें वाला है। उसमें विक्र वर्ष के सिम प्रकार कर कर के बात का हती है। विस्तु के व्ययन में ही सीमित नहीं रह जाना चाहता है। विस्तु किर में पात्र के सोमता है सीमित नहीं रह जाना चाहता है। वस्तु किर प्रवार में वह घटेह से सीमता है कि ज्या ज्योति में क्योति मिल आएगी उस किर िहमा हुआ गोपन रूप रह ही नया जाएगा ? बया गोपन को सोज में प्रयोग के मिटा ही देना होगा ?

'सावन मेघ' के रूप से कवि इसी प्रश्त को स्पूल दृष्टिकोण में देखता है और मानवी सौन्दर्ग के प्रति उनकी दृष्टि प्रश्विक दिखाई देती हैं। वह प्रश्नी वासना में ही प्रकृति को प्राकृता है

घिर गया तभ, उमड ग्राए मेय काले मूर्मि के कम्पित उरोजों पर कुदा-सा विदाद, स्वासाहत, विरातुर छा गया इन्द्र का नोल वक्ष---बन्द्र-सा, पदि लडित से मूलसा हुया-सा । घाह, मेरा स्वास है उत्तर्य---यमनियों में उमड घाई है तह को पार

उन्माद की माति, तन्मयता की वासना भी तीत्र होती है

में हरित बन को बासुरी हूं। स्थाम के मसुमय समर की बादमी शोकर बाबरी हो चुनी हूं। सापना में स्वर्थ-सा गलकर, बेदना को धम्मि में जलकर प्रेम की लोहित साराका से नोमल ममें में छिद्र कर में मृत्यु में जीवन छिगाकर नागरी बन गई हूं। मेरे नामिसर में समरता की मासुरी है। श्रपनी सीमामें घुट-घुटकर उसे प्राण लोते देखा है !

×

मैने इन भपनी ग्रांखो से स्रोहचक चलतादेखा है।

— स्वामविहारोश्<sub>वस</sub> 'तरत'

दर्भन का जीवन से गहरा सवय है। दर्भन का विकास मानव सस्कृतिका विकास है। काव्य का इसीनिए दर्भन से सबप है। प्राचीन साहित्य का सिहावजोकन इसे और भी स्पष्ट कर देवा है। काव्यदास्त्र मे दर्भन की मान्यता भाव-पन्न के माप्यम से हुई है। हिंदी काव्य मे मध्यकालीन दर्भनों का प्रभाव सत्वाणी मे दिखाई देता है। सप्य और अमतीय तब भी पा, किंतु उसका रूप तब दूसरा था। व्यक्ति की समस्या तब प्रधान थी। मचे समान के परिवर्तन ने व्यक्ति के साथ समात्र को सामने रखा। विगत समात्रों के मानसिक स्तरों का परिवर्तन है काव्य द्वारा ही मिनवा है। अधुनिक कात में दर्भन की सानसिक स्तरों का परिवर्तन हो काव्य द्वारा ही मिनवा है। आधुनिक कात में दर्भन की व्यक्ति से सामने रखा। विगत समात्रों के सानसिक स्तरों का परिवर्तन हो हो। हो स्वार हो। मत्रव की मुक्ति मानने का प्रतिनिध्यक करते हैं। दर्भन भीर व्यक्ति का बृद्धिकी ए इसीलिए बदला हुआ है। हमारी परेपरा ने ही इस विकास को जन्म दिया है। निवीन दर्भन भीर मानवताबाद की समस्या पुरानी परपरा की भूमि का ही विस्तार है। अब दर्भन धपना रूप अधिक सार्वभीन कर रहा है। धारम-परास्त्र को वादारम्य यव दूसरे रूप मे होना है।

वंद को ऋवाएँ, सूत्र उपनिवदों के
फाइकर प्रावेष्टन जीने पर्मशास्त्रों के
मवत उठे घरती पर सारकार होने को ।
विरत जन की आंखों के मृदे हुए क्यादों से
स्वीत के भन्तर को कंदी मतुभूति रहकर
सबत घोषकों की मृद्दिशों में प्रव बंदी रह न सकेगा,
निवित चराचर की समता के गायक ऋषियों का मंत्र-दर्गन !
पव यह थिएड, एए, रा, प्राकार लेगा
विस्त के इस विराट वस्तु-व्यावार में ।
भूमा का ऐरवर्ष म रहा मात्र भोग-दासो वनकर
कुछ मृद्दी-भर सत्तावानों और पनवानो की:
न रहेगा वह मात्र वीडिक-प्राच्यास्मिक चर्चा का वियव
कुछ महनों को रसीनी वावतों औं सुगन्यी प्रस्यामों पर।
ऋषियों के ऋत, सत् सीर भूमा तकड होने सब

## पतकें रोडो बुनें, उन्हें ऐसी फिरकनी बना जा री ! निदिया री स माजा री !

त्रिया री तू प्राजा रो । —गजनगढन विगरिया

यहा कवि श्रष्टति को मानगंग यानागरण मे भी जनार लाता है। सीरी प्रायही पलायन के सौन्दर्ग को मिकत करती है। सोक-गीनो मे यद्यित तोन जीवन प्रतिबिधित
होता है, जैसे दक्षिण भारत को कग्रड की एक लोगी है—मरे! देगो। नारियत का
व्यापारी मा गया। वह नीने समुद्र के किनारे से मनना जहाज वाता है इत्यादि। शिनु
इस प्रकार के गीनो मे भी एक स्वण्तित हाया-सी व्याप्त रहती है। सम्बद्धीरल वी मानसिक भूति हमाने व्यापक नही है। उसने भग्ने जीवन के समर्थ को भी इस सीन्दर्य-सेला
मे एकरस कर दिया है। जनको के रोटी बुनने की गरावना वास्तय मे मानुठी है। ऐसे
विज्ञ मूलत सप्टित की परिशयना में सिसे जाते हैं, परलु उनका सम्याप भाने सीनिक
जीवन से जोडकर उन्हें भावपत्र के मिश्त सभीग बनाया जाता है। इससे एहले समूर्य
मे भूतं वी श्रष्टतुत किया गया था, भीर इसमें उसरी जत्यी वाहत दिनी है।

प्रपृति के वे चित्र जो उसे मातवीय रच मे अस्तुत करते हैं, ये अभिव्यवना के क्षेत्र मे प्रपत्ती रगीती को अधिक प्रसार देते हैं। इसीके साथ जब किसी मत-विशेष को भी कतात्मक रण देकर रखा जाता है, तो मत से सभिक हम चित्र मे ही उतकात हैं:

भितिजनीर से मा रही है उतरती

धड़ाती सुनहरे चरण कतत सीस पर स्वर्ण का ले सहुचती पहनकर सिद्धरी यतन सितारे यतन के दिए दूर वाकर कहीं गये सी निसा के प्रयुट स्वर्ण जाकर कहीं नहीं शेष पय पर यह में यह सिप्त को बटा चिरकने सारी पूर्व में एक स्वर्णिक एटा धरे यह ज्या का गवल प्रात्मन है कि हो सा रहा नारस

समर पर्व है साज नववदना का धरे सभी के हृदय हुवें की भावना से भरे न जावें पुष्प देश की सर्वना के कहीं ये सुताने हमन

उठाराष्ट्रका ध्वज, बड़ा पांव दो सब स्पदादार स्रोते विजय "जिस तुपा पर पर्यका गतिरोध पल रहा था, ग्राज कवि उस कल्पित तृपा की जड हिलाना चाहता है।" (संबेस)"पथ पर मिटनेबानो का बलिदान व्यर्थ नहीं जाता। जो राही पय पर वित होता है वह मिजन को समीप लाता है।" (ब्रजमोहन गुप्त)

"इघर रूप की सुदर जुल्कें सुदरता की झाग लगाती हुई, राज-झटारी मे पलगी पर भोग-विलासो को फैलाती हैं, दिन मे जो दुनिया मे धर्म भीर सत्ता का रास रचाते हैं,

वह रात में प्रविचारी-व्यक्तिचारी दानव बन जाते है। इसीने सुदरता की जुल्को की सीगध लेकर हो परिवर्तन का लाल सितारा माज नई धाग लेकर जल उठा है।" (भ्रयल) "पथ भते ही यके, किन्तु यह चरण अविराम चलते रहे।" (वान्ति) "पत्तो से

परयर बधे हैं। नित्य नम के धामन्त्रण धाते हैं। प्राण तडपकर रह जाते हैं। मब तो कवि पायाणो को रगड-रगडकर ज्वासा उपजाकर जल मरना चाहता है।" (चिरजीत) "वह भने ही रोता-सादीप है, किन्तु जलता तो है। उमें स्नेह नहीं मिला, इसीलिए प्रतिभा का रग नही खिल पाया, फिर भी यह नया कम है कि वह ज्योति जगाता है। वह स्वय मिटता है, परन्तु भौरो को राह दिखाता है। वह नत होने को पाप समभता है। माना कि वह तम से जीत नहीं सकता, किन्तु कम से कम उसकी ग्राखों में खलता तो है।" (रामकुमार चतुर्वेदी) "सुपतो की अटारी के दरवाते बन्द करके कान मत मूदी, बाहर तुषान गरव रहा है।" (भारतभूषण अप्रवाल)

> जगती के विषण्ण धांगन में, समृतपुत्र, ग्राभिनदन ! माँग रही च्रियमाण मनुजता है तुमसे नवजीवन ! प्रगटे स्वर्णशस्य घरती पर, धागत मगलमय हो । नुतन यय के नव-मानव की दिशि-दिशि में जय-जय हो।

नई चेतना के निर्माता, करो असर वह सर्जन !

मांग रही म्नियमाण मनुजता है तुमसे नवजीवन ।

--बातन्द्रभारायण शर्मा

"कवि एक पगतल में पडा लघु तिनका है। ग्रभी उसका दो दिन का नया ग्रस्तित्व है। उसे भाभा के भाकि भुलाते रहते हैं। जीवन का पय सदा बदलता रहता है। परन्त त्रफानो से उसकी पुरानी प्रीति है। वह यत इतिहासो का भग्नावशेष है। परन्तु वह सप दीपक की जलती हुई जवानी है।" (क्यामिवहारी ग्रुक्त 'तरख')

"कवि का जीवन, नव भाशा-रस से विकसित होकर, प्रेम-प्रीति परिमल से सुर-भित होकर, मानव-मन का मालियन कर रहा है।" (केदारनाथ मग्रवाल)

"मव तक काम ही काम रहा, विश्वाम नहीं। पथ ही को श्रेय मत समसी, श्रेय तो घाम है। विसीकी मधुर याद, किसीका विद्योह लेकर मोह से क्यो वधे हो।" (सुधीन्द्र) "मन का दिया ज्योति नहीं देता यदि उसमें भाग नहीं जलती। दु ख के दाहों से ही हमारा वह ग्ररमान है। यदि मक्तवार मे नाव डूव जाए तो पतवार ही क्या है। जो ब्रमारो पर हमकर न चल सके वह प्यार नहीं है। जो मौन को सीने से लगाकर हम सके, वहीं |जिदगी है। जो स्मशान मे भी प्राण प्रकृदे, वहीं वरदान है।" (दुष्यतकुमार)

"कवि निटने की सीमा-रेखा पर शुरू हुया, उसका आरम्भ हुया रोने मे, परन्तु अन्त हुआ गीतरे मे ।" (गिरिजाकुमार पायुर)

वह नया रास्ता पकडना चाहता है, नाकि पुराना क्रम ही टूट जाए

नवीन पय पहण करो।

जिल्लो न गीत दुग्ल-भरे,

न वेदना विकल करे,
विवाद के प्रदिश्च पहाड

पर भुदुद चरण घरो!

न एक आहे भी उठे

न एक बाह भी उठे

किले समुद्र सामने

सहास संतरण करो!

मनुद्य जुन महान हो,

प्रजेय प्रतित प्राण हो

हरो न सुद्र विदम्मण करो!

—निवेन्द्र कुमार

साहस के प्रति एक ग्रदम्य प्रीति नये कवि मे हमे प्राप्त होती है।

"हर दर्द स्वय नया राग बन जाता है। सदा ही गान आही से फूटा करता है। यौवन मुम्काता रहता है, धौर जीवन नी परिभाषा को नूतन बनाता है।" (राजेन्द्र सबसेना)

एक नया दृष्टिकोण मनुष्य को नवीनता के प्रति कितना जागरूक बना सकता है, यह बात हमें स्पष्ट दियाई देती है।

"सिवार के तार अलग-अलग हैं, किन्तु तान में अनेकता नही है। चाहे आकास में बाबो तारे हैं, परन्तु प्रकाश में महान एकता है। सूर्यताप और चन्द्र की शीतलवा जगती के भेशो को नही जानते। किन्तु मनुष्य जो पृष्यी के शासक हैं वे अपनी समानता को नही मानते। सूत्र भी महान का अतीक है जैसे बीज में वृक्ष होता है। जैसे असीम वेदना के समुद्र को में अपने एक बूद आमू में सम्भान लेता हूं।" (मीरीशकर श्रोमा)

सारी मृष्टिका कारण और मनुष्य के दुस के कारण दोनी को ही कवि एक

स्वर से सुनता है।

हो केन्द्र से उदय होनी हैं। अन यह वैविष्य हमारी जागरूकता का प्रमाण है। शरद के वर्णन में ऐमी विविधता के दर्शन हमें मिलते हैं। नदी सिमट गई, तो

शुरद के वणन में एमा विविध्या के ध्यान हम मिलत है। निवा सिमेट प्रथा जसमें चमक ह्या गई. बबोर्कि विस्तार की भावना निखार कही लाती

ा बहु वस्तार के सारता त्या त्या के साथ किया है किर नदी, सिमटने में चमक धायी स्थव स्मक्त होंगे होता हो हो हो है सिमटने में चमक धायी स्थाव में, बदन में किर नयी एक दमक धायी दीय की साथ से बहु हो है कि किया में विद्याली सब दीतकों से उद्धाह धीर उमम की गमक प्रायी। बादलों के चुस्बनों से खिल ध्यानी हरियाली सरद की पूप में व्हा-निलस्कर हो गई है मतवाली मुग्ड कोरों से धनेकों कबतियाँ कतते में दरित मर रही है धानतर में चुल्चाए संत्रीती शैकाली।

सिंस, मृते नील में,
होते हैं कोजागरी का दिया।
हार का प्रनोक — 'दिया सी दिया,
भूता दिया जो किया।'
किन्तु—शारद वांदनीका साध्य—
यह सकेत अय का है—

यह सकेत अधाका है— व्यार जो किया सो जिया,

षषक रहा है हिया, पिया।

—महेव

गाव कही पास हो है, सायद नगते में डोलको की आवाब आ रही है। स्यानी हिर्मानी बादनो के पुन्कन से नित्त गई है। हिर्माकी का वित्तना एक बड़ा सार्यक प्रमोग है, जिनमें उसकी चन्क औरताजगा प्रतिबिध्नत होते हैं। 'दिया सो दिया, भुता दिया जो किया', सोकगीको की-सी सहंत कोमतता तिए हुए है। और किन शारद की चादनी एक जब सार्वेद जैसी दिलाई देती है। किन्तु तुम्मा मी तो है, सो हृदय में प्यार करके समिमान भी है, भीर जनन भी। प्रकृति के मन से ऐसे ही तो तारतम्य है। जब वह स्विन-यक्ष शान्त है तब फिर सोकरजन ही सामने रहता है

दूर-दूर कतक-धूलि, खुरों से उडाती हुई, खातो है साँध कजरी, गाय-सो रोंगती हुई।

(नागार्जुन )

स्वमं श्रीर सुख का वरण बरेगा । नारी से ही यह मनु का बत्त रक्षित है, वही ग्रादि सृष्टि वी घरितों है ।" (सिवसूर्ति मिश्र)

स्त्री और पुर्य दोनों की भोर ही किन की दृष्टि समान रूप से जानी है। नवपुर के भ्रादि किसे किन कहना है, "बन्म मरण की क्या ने भ्रम्र बनता है। उसे रात-रात मरण भी नहीं मिटा सकते। चिरतत पथ की खोटे-खोटे करण नहीं दिए। सकते।" (भुषीन्द्र) "जिस जीवन में दुल की ज्वाला है वह सोने से कुदन बनता है। जिसका हृदय

(मुझेन्द्र) "बिस जीवन में दुल को ज्वाला हेयह सीने से बृदन बनता है। बिसका हूं-परदुख से कानर होना है, वह प्रनस्वर गीन मजोता है।" (कुमुगनुमारी सिन्हा) मिट रही है प्राज मानवता स्वय

> भन्द जोदन-स्योति की रेखा मुनहती। —महेन्द्र मञ्जागर

मानो कि की हाराकिरी भगवान ने

' तेखनी ही हमारा प्यार है, घरा पट है, छिन्यु मसिपात्र है, हम तुच्छ से तुच्छ जन की जीवनी पर भी बहाती,काव्य, रूपक, गीन सादि विखा करते हैं।"

वह ग्रपना 'नायक बदल' रहा है।

स्वायत करो. स्वायत करो !

पना 'तायक बदल' रही है। झाज की मिटती विता पर उस नये मुगके सिए निज रक्त निष्ठापूर्ण हो झर्पण करो, झर्पण करो और उसका इन्किसाबी सक्ति के नारे सिए

--महेन्द्र भरनागर

"त्रो घरती की धड़वन नहीं सुन सकते, वह नम का समीन क्या मुनेंसे ! धलो की नोकों में डरकर पूनी से कोई क्या प्यार करेगा ! जो पके घरण को ध्रपनी करण का दुनार नहीं देसकता, वह बढ़ने क्यमों की आयी पर यिवकार नहीं कर सकता । ज प्यार यमुन्दर को भुन्दर नहीं बना सकता. उम मरे प्यार की खातिर कोई क्या हस-हर कर मरेगा !" (गोपालकृष्ण कीन)

"बम बन्तिम साब यह है कि हम क्रांति के सिपाही है। तब तक प्यार औ मुन नहीं है, अब तक बरती पर गुतामी है। सीपण का दनुब नुसना विचाड रहा है। जब तक चमका ज्वम नहीं होगा, तब तक मुख और वानि कहा दिन सकती हैं ?" (राजेन्)

वालमारनं के प्रति यावेदा में भाकर तिव कहता है, "तुम जग-बीवन के सव-विहान हो। तुम महात्राति के प्रतिनागत हो। तुम करणा वी कातर पुत्रार हो। तुम दरि-प्रता वी प्रतय-तात हो। तुम साम्यवाद के विजय-गात हो।" (बोहनतात द्विवेदी)

—सरेन्द्र

वहा व्यापकता की जगह हमे समाज की तीखी गन्ध हर श्वास में भिलती है है रेंभा रही बज़ंडे में बिज़ुड़ी एक गाय,

ह रभा रहा बज्ज म बज्जा एक वाय, यन भारी है, बुखते भी हैं! श्राता गज़नेरी सांड भटमता सडको पर, चलता मठार, बया वही दर्द उसके भी हैं? जा रही किसी यर के जुड़े बरतन भतकर बदचतन कहारी पकी हुई, बोका-बासस, संना-वेनी में बिता चको योवन के दिन

बदचतन कहारी पकी हुई, बोका-बासन, संता-बैनी में बितन चुको योवन के दिन काटनी उसे पर उमर प्रभी तो पकी हुई ! बस रहे कहीं दय-ढोल-कांक, पर बहुत दूर गा रही सम मदसस्त मनूरों की टोली कल काम-धाम करना सबको पर नींद कहाँ— है एक वर्ष में एक सार हाती होली ! इस भाँग-दवार से दूर, बन्द कमरे में, चिन्ता में दूबा बसांतिक एकरना एकाकी

बर्शानक एकरस एकाकी है सोच रहा यह जीवन क्या, मैं क्या, मेरी यह स्नास्ता क्या ? सब कुछ खोजा, उत्तर न मिला, कछ भी स बदा मयकर बाजी !

वह दूर घोर ससारद्गर, सब विश्वहुन, सब द्वाया-छन, है बिडुड परस्वर सुबक रहीं दोनों नियंन झारमा-कावा! रोए भूगाल, दोला उल्लू, हिल गई डाल, घोंका कुला जो भंक उठा झब देख स्वय ध्रयनी द्याया।

नगर के एक मुहल्ले का है यह चित्र । प्राप्त से अक्षण है इसकी यूटन । फिर भी दितत जीवन मे घपना ही उल्लास है। होती आ गई है। वहुत हो बोमीला है यह वर्णन ! दार्जीनक एकाओ सोच रहा है। उसे शोई उत्तर नहीं मिला। इन कुछ कसकता है। उल्लू बोलता है, श्वात रोने हैं। दूरव कुछ बोभरस हो उठना है, जब कुत्ता अपनी छाया देवकर स्वय हो रो उठना है। चादमी का उल्लेख भी नहीं है, जबकि कुत्ते का अपनी छाया होतों के दिन देस पाना उत्तीकों और इंगित करता है।

एक ही कवि विभिन्त परिस्थितियों में पडकर कैसे दो चित्र देता है। तरेन्द्र कुसत इसाकार है। उसने समेक नये प्रतीक दिए हैं। उसके गजनेरी साड जैसे दिलकुल

जीवन को पूर्णतम बनाना प्रत्येक सून के मनुष्य की एक साध्य कामना बनी रही है।

"यति को गति के बदले कभी नहीं चुना। फिरलहरों के उत्थान-पतन कर भी न्या सकते हैं ? जिसका जीवन सघर्षों का है, उसे कल में प्यार नहीं है। इसलिए म ऋघार उसे कभी भी डरा नहीं सकी । जीवन के राही को झवरोघो पर भक्ति नहीं हो सकती ।" (राजकमार्रासह 'कुमार')

यह ही है उसका नये रास्ते की भ्रोर बढना। पूर्व चिनन उसे ले जाऊर एक नई

समस्या के सामने खडा करता है।

ये खडी रूढियो की जैंबी दीवारें---जीवन देनेवाले समीर को रोके ! उस पार केंद्रजाने के रह जाते हैं ग्रतमस्त हवा के ताजे-ताजे भोके ! कुछ बरन करो जिससे ऊँची दीवारें . बिखरें पिरकर मिल जाएँ मैदानी में ! किर नई बिदगी की फसलें लहराएँ मस्तौ की हस्ती भर कर इसानों में तो, युली हवा के खातिर हमको-तुमको होगा समाज की परम्परा से लडना ! . बल जोड सकेंगे हम इतना निश्चित है तुम बरा ग्रीर से भन की गीता पढ़ना ।

—शिवङ्गार

रुढियो से मुक्ति का संघर्ष निरन्तर बढता ही जाता है। "प्राण का इतिहास यह है कि व्यास ही अस्तित्व है, जो कभी बुभना नहीं जानती वही प्यास होती है।" (धीहरि)

यह प्यास ही एक नये रूप मे 'प्रगति' वन कर माई है।

"मत जर्जर खडहर से नवयूप की सासें जग जाए। बीते यूप के पतमड से नया मधमास उप ग्राए। ग्राज शोषण की मीनार डगमगा कर गिर जाए। साम्राज्यों की दीवार लडखडा उठे। जालिम की कातिल खुनी तलबार ट्रंट जाए। यूगो के बाद कारा के द्वार टट जाए । ब्वान्तमान प्रवर में पूरा का नया सबेरा जाग उठे । काले मृत्यू-प्रहर से जीवन की किरणें फट पड़े। अपना मूर्य यूगो के बाद निविड तिमिर से निकल आए।" (धनस्याम ग्रस्थाना)

एक घोर परपरा, एक घोर प्रगति । विविदोनो में एक तार वाधने की चेय्टा

मह बमुत्परा, कभी न साती इतनी विश्वकर सता-कुल-दूम साती , केवल मूक, तुन्हतर । यदि न विद्य की बती में मुर का सरमाम भर प्रस्व बन्नाते समस्क्ष्यवित्त क्षेत्र मधर महत्तर ।

पृथ्वी की सुन्दरता बिना पक्षियों के कभी इतनी सुपर नही बनती, जितनी कि उनके सपके में सपद्धी है। हम, जो गांवो में रहने हैं, इसका सारतत्त्व समक्ष्री हैं और इसे छायाबारियों ने भी केवन सोन्दर्यश्चियता के कारण समभा था।

वर्षा का वर्णन करते हुए कवि कहता है

बह रही वायु सर्-सर् सर्-सर् बरमते मेश भर्-भर् भर्-भर् कांग्ते पत्र थर्-थर् थर्-थर्

सो बाज सजा है प्रासमान परती पर जीवन भासमान सप्-सप् धाराएँ धायमान जीमन, द्रततर, मनहर, तुन्दर बहुवर्ण धरा, बहुट्य धरा हो गई नवल जन-मनोहरा

यह परम पुरातन वसुःघरा पतिदालि पवन क्यों जीवत-स्वर हो गया चित्रपट पूर्ण गगन धुदिहप घर्णमध चचल घन पत में कुछ पल में कुछ वन-बन क्षण-क्षण में प्रियतर सुदरसर

लो उठे भूमि से हरिताकुर
द्योमित है प्राम-प्राम पुर-पुर
हो घाषा शीतल मानव-उर
मय मुट्टि करेगा हो तयर
पाकर पावस का पावन क्षप
करती स्वरण का पावन क्षप
करती स्वरण का विश्वतंन
सन से मन से बनती मूतन
पह प्रकृति सदा नव जीवन धर

<sup>—</sup>तिलोचन शास्त्री

मूक-सा कराह उठा । मज्ञागत इस विभीषिका पर भी 'कला-व ता की माला' जप रहा है । तद तो मेरा मानव-तन धिक् है । यह हृदय की ज्वाला निष्फल ही दग्य है ।"

(शिवमगलिंमह 'सुमन')

यह है समाज। इसमे कवि कब तक अन्याय देखता रह सकता है? "जिमे तम भेरी भल कहते हो बही चिर सचित जीवन-मान है।"

(शिववहादुर्रामह)

इसीलिए वह सब भ्रोर देख-दास्कर श्रत में अपने मन में कहता है— "श्रारी व्योगकुषों की परी कल्पने ! श्रूमि को स्वर्ग पर मत तल्या । हम तेरे स्वप्न तक नहीं उड सकते, शक्ति हैं तो था, यही खलका वसा ।" (रामधारीसिंह 'दिनकर')

भीर वयोकि उस समय रूप का विवास मानव-विकास मे एक ब्रद्भुत वस्तु-सा

दिसाई दे रहा था, कवि ने कहा

लाल सितारा हो ध्रुवतारा शत्रु देख हहरे।

लाल घ्वजायह मजबूरो की लाल घ्वजायह है झूरो की छूसकते साम्राज्यन इसको

लाल ध्वजा यह मजदूरी की

भीव देख भहरे !

हमारी लाल व्यजा फहरे, तुम्हारी लाल ध्वजा फहरे।

गुडे देश में लाल पताका

रोके [बढ वंदी का नाका चले लाल सेना का साका •

लाल सेना का साका : अन्यायो का सर्वनात हो

ग्राज न्याय ठहरे ।

—मोहनजाल दिवेदी

इसके मूल मे यह भी था कि भारतीय कवि अगरेडी शासको के रूप मे सारी अगरेड जाति से पृणा नहीं करना चाहता था। वह शासको और जनना को अलग-अलग करके देखना चाहता था। यह उसकी मानववादी परपरा का ही परिचाम था।

"कई दिन से बस्त जीवन है ग्रीर वेश अस्तव्यस्त । मन सतप्त है। प्राणी में निर्धूम चिता भी चिना जल रही है। भीत-सा प्रति रोम भेरा काप रही है और मेरी चेनना हिम-सीन जटना में जकडकर चेप्टा से टीन निर्वीच मीन हो गई है। ऐसी विपम स्थिति मे कहना ह**ै** •

सुहाग्यिन जडो, चलो, यह घूप, हमारा रूप ! इस्रोसे सून हमारा गरम, इस्रोसे बोल हमारे नरम,

इसीसे मन में प्राण इसीसे पान कि जो वर्षा में गूंबंगे, इसीसे पान कि जो वर्षा में गूंबंगे, इसीसे मुख्त, पतायज, दोस ; इसीसे हाल, इसीसे रास, इसीसे हाल, इसीसे रास,

मुहागिन उठो, स्रोट लो घप,

निखारी ग्रपना-ग्रपना रूप ! सूप पर हुँसी,

कछौटा कसो, खैन पर चलो समुन्नत भाल कांस खोटो, काटो जजात ।

बेर के दड़े जला दो आपे होकर क्दें। पसीने की घारा बलवती धरा दिससे बनती कलवती.

नहात्रो दूचो, पूतो फलो, सुहागिन, चलो, खेत पर चलो <sup>1</sup> धरा का परम सुहाग !

भाग-बबूता सस्त मुखं सूरज सेत रहा है फाग !!

वयन की छाय

—भवानीप्रयाद् भिक्ष

पूप का यह वर्णन बितंतुल नमा है। साराजीवन सूर्य के ही कारण वल रहा है। इस पूप को मोड़ लो। इसपर हसो। बाषामो को हटा दो। यह पूप दुम्हें समद्धि देगी। मानदण्ड कुल-भेद से बदल आने पर भी बल्नु-डादुरच में भेद नहीं अरे सकते, यो अपने सद्-कार की तृत्वि में हुयो की वणह ऊदो की मृष्टि करनेवाले विश्वामित्रों को हो हूर ही से प्रधाम करना श्रेयक्कर होता है। हुमें काश्य के स्थापी तरन की मीतप्त करने के लिए सबस्य ही ऐसी मृमि चारिए जो सार्वजीन हो। हुए के बाल-चर्चन, तुल्ती के रामराज्य-वर्णन, अदौर के जाति-पानि दियोगी वर्णन, कालिसास के काम-कता विभृषित वर्णन और मामकोबस्ती के कालि-चर्णन के विभोशों के एकत्व को न देखन यो उनके रसभूल एकरव को विभेद करने देखने हैं, वे पोचे को ही सीप कहनेवाले चीन हैं। वे खायावाद को माथा सैनी के लिए एक देवमान समस्त्रों हैं, और कुछ अधिक नहीं। उन्हति के विषय में विश्ली विनम करिना का उनके समस्त्र हुख भी मृष्य मही है

मेधनाता-सो मृदित मन के लिये, रगताला-सी र्रांतफ जन के लिये मूक हाला-सी प्रणय की चेतना प्राण, ज्वाला-सी हृदय की वेदना कह सकूंगा क्या, नला में कीन हूँ? तुम उदार बनी सुहुद में मीन हूँ ।

—स्वामविद्यारी शुक्त 'दरल'

हिन्तु यदि इसे बचाई में देखा जाए वो इसमें हमें जीवन की एक गहरी बजुमूति सिसती है। इसमें मौजिक को असीमिक रूप में रखा गया है भीर मानग के मनेक सस्कार यहां बेदना की प्रमुम्ति बनकर प्रस्त करते हैं भीर दोखने में तो निराशा, परस्तु बस्तुत दार्सनिक तस्त्व में मरकर पूछने हैं कि ममुष्य की प्रमनी सता नया है, बीस्क है ही नया ?

परन्तु ऐसे जित्र नये युग में बहुत कम मिलते हैं, स्पोक्ति इसमें दूष्टि का प्रसार नहीं है, गहराई ग्रवस्य है।

काल्य में इतनी समता है कि वह प्रपत्ते एक ही स्वर में घवेक स्वर व्यक्ति कर सकता है। ऐसी ही नरेंद्र की एक बिनिया है जिसमें यह वर्गन तो बस्त का करता है। फिल्तु नवपुत्त के बावरण नी पूरी तस्वीर उससे उठर प्राती है। भीर एक-एक टावर एक-एक कीस बनता हुआ इसारे सामने खुलता है। मैं बिहारी का दोहा नहीं बना रहा हू यहा, बस्ति इस मदेवें को देख रहा हूँ कि किता नापय मीनूब है, परन्तु भालीक कसे देख नहीं रहे हैं। वाल पनता क्रांति का प्रतोक है। वह मायरण है। वह सस्कृति का राग-तत्व है। वह सामीक की यूबीमृत सफलता है, तभी तो यह धपना कैसा बनाने की सत्ताव परने मीठर रखती है। प्रवृति कर 'लाल बात है वतास' वाला विव इस रूप में कैसा बन्दता है उन्नके यस्तित्व का विकरण है। वह वितन-मात्र से सो सरीर-अर्म • इस अनह धर्म की गाठ दिखाई देती है। इसीनिए वह शण-भरनमीर व सोचता है

"दिन के मीठे पूटो को जोवचपन पोता चलता है, वह क्या किमी वान ने तीरपर नही पहु च जाना ? जो सित्ता बहती ही रहनी है, वह सागर में हिल-मिलकर हसती है। जो चलता ही रहना है, मिजल उनमें बहुत दूर नहीं रहती। न तो धागत का प्रत है, न पतन की मीमा है। बुन-पथ प्रत्येक चरण पर गृत्यु की घमकी दे रहा है। किर भी एठी जमनी जाती है धौर पजे धामे बढ़ने जाते हैं। जो चढ़ते-चढ़ते रुक्त जाता है, जमे विश्राम नहीं समग्रना चाहिए। प्रत्येक चरण इस जीवन का आमे, प्रागे ही चलता है।"

(उदयशकर भट्ट)

यही चिनन जब अपने वैयक्तिक मध्ये के पक्ष को उसार लाता है तब उत्तमें एक सीक-सी म्रा जाती है। ब्यापक रूप से वह सुल को देखता है। तुम वैयक्तिक-सा ही दिखाई देना है। उसकी सीम्स बदनी है। क्या चिनन उसे चैन नही तेने देता। बह कहता है:

"मैं अपने जीवन में कैसे कह दू कि अब इसका गति से कोई परिचय सेप नहीं है। इस मन को मैं कैसे मायुक कहू, इसे तो जडता में भी कोई क्लेश नहीं है। कमजोरी के गीत बनाकर बया गाना । यह कविता ही क्या जिसमें नई उठान नहीं हो। हाग मेरे प्राण युक्त गए, कवि भी मर गया। अब गुक्ते अपने पर कोई भ्रमिमान नहीं है।"

(भारतभूषण श्रग्रवाल) परत् यह स्वरं जब रूप बदलता है तो सात्वना मिलती है

्यु यह प्याप्त पान प्रमाणिक है। साधाना निवास ह "यह जयती बहुत भीली है, इसमें स्नेह को चयक छलक रहा है। जीवन प्रेम है, प्रेम जीवन है।" (कोमलसिंह सोलकी)

प्रेम । प्रेम की उदात्तता सिद्ध करके, प्रेम की ही व्यापक बनाया जाता है। क्योंकि उमे प्रथिक महत्त्व दिया जाता है

> यह सुधा है, पो रहा हूँ पे ग्रमर बन जो रहा हूँ जो मुभे दृत दे रही हूँ वह हुदय की ग्रम्सरा है, कीन कहता दृत बुरा है! स्रोत हूँ में देल जीवन ग्रात हूँ में देल जीवन ग्रात हमसे सुन मरण-सन महितिसका, प्रस्त उसका महितिसका परण्या है।

-देवरात दिनेरा

भ्रोत शीश पर बाँपे फेटा स्वेद-पूंद टपटप कर गिरती द्वोगी स्वाती सहर-चपेटा काळे स्थाह हस्त-चुग घेरे यहां निरतर डॉड हिलाते यक-पर, इक-रक कभी बीच में 'सापो' भ्रो' 'मं' दोनो गाते

--शतभ

'साची' का प्राय प्रयोग युद्ध की अलकार के लिए किया जाता है। यहा वह सग मेहनत करनेवाले से स्नेह के लिए खाया है। अपने यहा ऐसी रचनाए सचमुच कम है। किन्तु मिविष्य में वे और मीर आएगी इसमें कोई सन्देह नहीं है। काले हायों का डाड हिलाना न केवल चित्राल्यक है, न केवल उसमें प्राय की ब्वति है, वर्न् उसमें है जीवन का वह पनवक विद्याल जो कि इसकी सारी शिंतत है। यिदला रोकनेवाली पीच है, परन्तु यहा लहर-चपेटा लाकर भी जीवन की मौल लेने निकली हुई डोगी रुकती नहीं। यक भी जाए, रक-करकर भी चले, तब भी गीत नहीं करेवता, यह चीच के व्यवधानों को पार करने का सबत दिए चलता है। मीर होटा सा साथी जीवन के कोमल स्वप्नों को याद करता है कि यहां से 'पिककूनन' दूर है। कमलों के बन का सभाव सन्त में जाकर पूरा हो जाता है।

केसरी ने प्रपने 'पकोरी' मे एक वहुत ही स्थायी रचना साहित्य को दी हैं।

कविन्तरय के रूप में यह भवाद चला भा रहा है कि चक्कोरी एक ऐसी चिडिया हैं जो चन्द्रमा को देखनी रहती है भ्रीर उसके भगार चुगती हैं। हिम से भगार ! चक्कोरी कहती है कि मैं तुम्हारे हिम में से भगारे चुगती हैं, चुगती हूं चितवारी कि प्राणों से कभी म बुभनेवाली प्यास जल उठें। कैसी विभोर सर्जना हैं। इसमें कितनी शक्ति श्रीर कितना प्राण हैं! नवन हाल पीते हैं, मुख सन्ति!

> चुनती चिनगारी कि जले प्राची में ऐसी प्यास पिया प्रन-पुन कुमें म, कुन पीये साहबत तेरा हिम-हास पिया हिय पीये पानार नयन में चुए प्रामिय-रासधार पिया होड प्रान-पानी की रे कहता जग निसको प्यार किया जाना प्राप्य-प्रप्राप्य, न जाना तुमको केवल एक पिया प्राह ! न सूंगी में विवेक तेकर प्रपनी पह टेक पिया मून-मूल सूनी पर जोते-जी ईसा होना सीखा एकजता में सती-मुहागिन चिता-रोज सोवा सीखा

पय मुक्ति-साधन न भ्रम-भार । गति ही विजय है, भ्रगति हार !

—सम्मनाथ मिह

मुक्ति उसका केन्द्र है। साधना से ही उसका लगाव है।

"मेरे मन ! क्ट-गहन को सहन करों । यह मत समक्रों कि दुख में दुख की कथा का ही गौरव है। जब तक प्रतिकार न हो, तब तक सहते रहो। जब तक यह बोध

न हो कि मुक्तमे भी कोघ है, बीर मैं प्रतिशोध तूना, सब तक कप्ट सहन करो।"

(रघुवीरसहाय)

दु स का निरावरण हो उसका मुख्य उद्देश्य है, चाहे उनकी भ्रभिव्यक्ति किसी भी रूप मे हो ।

"अपने भाग्य को द्यामय मसीहा बनाकर एक बार एक बन से हाथ उठाकर दुखी थोल उठा। वही एक चट्टान पर शिर पटककर पपीहा अपने हृदय के रकत से लिल पपा सफल याजी को जगत् के तफर में प्रणय हो तरी है, प्रतय हो किनारा है।— एक दिन नदी के किनारे एक विकल प्रमो अपनी अपनीतिवाला के बारे से सोचता खडा याकि घडी एक से एक ट्रेन उघर से निकली, जिसने तिमिर चीरकर लौ-उजाला फेका। बडे मुनत स्वर से ट्रेन चे कहा 'पूर्व समार से आवानी ने स्वार है।'"

(शिववहाद्दरसिंह)

मनुष्य सवपर द्या पया है। इसीलिए स्वत ही कवि को प्रपत्नों सारी परि-भाषाए बदलने को विवस होना पड़ा है। यह पुरानी चीजो से बाहर निकल धाना चाहता है।

"नशोली घाल, घवर कोमल, प्रवर्ते सींदर्य की वासी निशानी वन चुके है। म्राज युग को नृतन इतिहास, शब्द, उली, भावना, विश्वास, सब कुछ नृतन चाहिए।"

(खशदिल)

इस तरह यह घठीत से प्रेरणा तो लेवा है, किंतु उसका अनुकरण नहीं करता । परतु यह एक धावेरा है, या है बौद्धिक चितन । अब वह गरीर धर्म को प्रकृत मानकर उसे प्रपना सध्य नहीं बनाना चाहता । चाहता है उपर उठना धौर प्रकृत को प्रकृति के सामने रसकर केवल साध्य न मानकर उसे साधना-मात्र बनाना चाहता है .

> हां देल घुको को, काको को, हसों को नभ की धनमतता से नित स्पर्धा करते क्या कभी सोचते हो शुम धपने मन सं इस भी क्यो नहीं उड़ान हृदय में भरते?

- (४) व्यक्तिगत वासना ग्रपने स्वरूप में ही प्राय प्रकट हुई है।
- (प्र) भाषा की दृष्टि में सहज को ही ग्रधिकतर ग्रपनाया गया है। पदावसी प्राय ही कोमलतन बनाने का प्रयास मिलता है।
  - (६) नये क्षेत्र मे नवीनना का ही लाघव नहीं है, उसका राग-तस्य स्थायी मानो को लेकर ही चनता है !

ग्रत में इस विषय को हम एक ग्रीर उद्धरण देकर समान्त करते हैं, जिसमें कम-नीयता ग्रीर गति का छद बहुत ही सम्यक् मतुक्त देता हैं

## वसन्त के चपल चरण !

पिको पुकारती रही पुकारते घरा न्यान सर्गर कहीं रके नहीं वसन्त के चयन घरण ! धर्मस्य कांवते नयन सिए विधिन हुमाबिकत समस्य बाहु है विकल कि प्राण है रहे पचल सत्तरथ कठ स्त्रोतकर कुहु-कुहु पुकारती वियोगिनी बसन्त की, दिशन्त की निहारती सियोग का सन्त स्वय विकल हुमा निदाय वन, स्वय कहीं की नहीं वसन्त के चयन वरण !

—रामदयाल शण्डेय

यह है बस्त को महामति । में तो महूना कि नये बसत को गति है । 'चचत पग रोपश्चिमान्से घर गृह मग बन में सुलगा वमत', की परपरा और भी मुदर चित्र लाई है । इस कविता में केबल कोमलता ही नहीं, भ्रोज भी है घोर दसीलिए इसमें जो स्कुरण-सन्मि है, वह बहुत ही द्यावर्षक हैं ।

यह सत्य हे कि श्रायावादी कवियों के बाद किसी एक कि ने क्रमी उतना महत्व नहीं पाया है, जिनने की ग्रामा थी, किंतु में ममफता हूं इसका एक कारण यह भी है कि बाद के कवियों को ठीक से पढ़ा भी नहीं गया है। साहित्य में प्रालोचना का क्षेत्र इतना विनन्द हो गया है कि उसमें ग्रमी ऐसी ग्राया तभी होगी जब लोक में श्रीर प्रधिक शिक्षा फैनेसी ग्रीर कवि तथा पाठक का सीवा सपक स्थापिन होगा। हेंस-हैंस ह्रदय-कियर से जय के कालेयन को योता हूं में स्वयं-कुछुम फूटेंगे, बांत के बीज मधुर नित बीता हूं मं तुम वसन्त सो बिर मगल वा मंपतभार निए जाता हूं जीवन के कथ-कव को में ही गीवन ज्वार दिए जाता हूं। जिनगारी देने प्राया था—इनको मुद्ठी-भर विनयारी एक बार वस जल उठने को प्रव प्राई है इनकी बारी तब तक प्रचल मानवता का में बुकुमार निए जाता हूँ। वुवह भार निए कघो पर पय को पार किए जाता हूँ।

—केदारनाथ मित्र 'प्रभात'

मुन्दर के प्रति अनुरक्षित आवेश के क्षण में वहीं अधिक हो जाती है। जो देता है वह मूक्त्य को बहुन वढा भी देता है

"मरने से डरनेवाल को ही मृत्युद्वार पर खड़ी होकर उराती है। मरनेवाले को समरता जबमाला पहना जानी है। स्वायं-विहित भवभीत हुदय में सर्विनासी का बास नहीं होता। जो भय की मकड़ी के जाने की तोड चुका हो, वही जीवित है। मरने से डरनेवाले को ही मीन निमल-उगलकर सा रही है।" (नरेन्द्र)

यो मृत्युञ्जय होने का यह स्वर विकास का ही स्वर है, व्यक्तित्वको बडा करने

का ही माध्यम है, उपदेश-मात्र नहीं है। तभी वृति कहता है

प्रवत पवन से न डर बटोही दिया जलाता हुया चला चल

तिर्मिर न होता ध्रयर जयत में, प्रकाश का कुछ न मोल होता ध्रमर उदासी हुई न होती, मुहास का कुछ न मोल होता बता रही है यही घटाएँ कि सोचनी की समीर कर के सिखा रही है यही विजलियां कि मुस्कराता हुया चला चल।

ध्यार यकायट हुई न होती विशास की बयो घडी मुहाती? ध्यार कड़िन सींद हुई न होती कभी न मखिल हृदय सुभाती! स्वार रहे हूँ गही सितारे— "प्रमार न मखिल सिलेन घबरा!" सिता रही हूँ गही हितारे कि पन बड़ाना हुमा चला चल!

धनर गरत ही हुमान होता, सुषा जगत में क्से सुहाती? धनर बिरह ही हुमान होता, घडी मितन की न याद माती! बता रहा है यही पपीहा कि प्यास में भी बडा सडा है सिता रहा है यही मधुपरस—गृत्वा सुमाता हुमा सता खत

्र पाता ₄शाचना है प्रस्तृत किया जा रहा है।

कवि का स्पिन्तव समाज में अपने भी सुब-दुख़ लिए रहता है। जब वह उन्हें महत्व नहीं देना तब हम उसे किसी बड़े रूप की ग्रोर बटते हुए देखते हैं। वह कहता है

> रक्त से खींचा गया यह चित्र तुमको सौंपता हूँ।

×
कर न पाया दूर
इसको एक भी क्षण के लिए हूँ,
एक पत भी सह न पाया
में उदासी को फलक,
जो कभी इसपर भा गई है!
तब यही चाहा कि
अपने प्राण की सभीवनी को घोतकर
इस चित्र को प्रतिक न में फंड दें में।

इस चित्र को प्रत्येक नम में फूंक हूं में। जब कि प्रांची का भयानक देत्य प्रपने बच्चपन घर जगमगाती भूमि पर उन्मस जैसा घ्वंस का गायन मुनाता

प्रसम बीपाकी मिला सम सवल धारासार वर्षामें किलककर तड़ित जैसे दौत धिस निश्चित होकर धुमता था

तव समेटे बांह में इस चित्र को मैंने सदा ही

शुचि हृदय के स्पदनों के बोच में रक्षित किया है।

—राझेन्द्र थाइव

वह समाव की कया को एक भी क्षण के लिए प्रपने से दूर नहीं कर पाता। वह एक मृत व्यवस्था में जीवित स्वास फूकर उमें फिर से सबस बना देना वाहता है। याभी ना देख पीपण का प्रतीक है। तरिल् जैसे सातो का पिसना अच्छा वित्र है। जीवन के इस वित्र को विविद्य तरह से बचा देना वाहता है। प्रापी और पानी की उसे इतनी वितान ही है, द्योंकि मन में कही न कही तह यह समुमद करता है कि यह सहर स्थायी नहीं है। में माते हैं। चले जाते हैं। किंतु यह जो पित्र है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। यही तो सम्मता और सस्ट्रित है। यदि यही नप्ट हो गया तो उसके पास बाद ने बच ही कमा

विवासन स्व पुराने बधनो को छोड रहा है। यह पुरानी स्वार्वपरक या सारम-

लेकिन ग्राज उसका दर्प है विच्छिन्न, भवनत शीश, जल पर तैरते जलपान के ये अनगिनत सघ एक्ड जैसे कर रहे हो महत्तम श्रस्तित्व पर छिपकर भयकर व्यंग <sup>।</sup>

श्चात पहली बार शायद जिंदगी में कर रहा महसस मै-कुछ जैंगलियाँ मऋपर निरतर उठ रही है। में नहीं समभा कभी मेरी महत्ता का कहीं ग्रस्तित्व भी है। कित दुनिया की नजर में झाल मेरा इप, मेरे झहम का विस्फोट मेरी रासिनी की शक्ति बनकर एक जलती चनौती दे रहा है !

--धनस्याम ऋस्थाना

व्यक्ति का स्वाभिमान भी साज स्वीकार नहीं किया जाता.क्योंकि उसे तो घोट दैने की ब्रोर ही प्रयत्न हो रहा है। श्रात्मा में हीनत्व की भावना भी प्रयनी कचोट के गर्व का ही परिणाम है। किन्तु कवि-हृदय की कामना इस प्रकार है

" कवि की वाणी अमृतमय हो जाए। वह मृतको मे तब जीवन भरदे। मन मे

सुन्दर इच्छाए रखकर मानव सुख से निभंग विचरण करे ।

" विर यधियारे पय को पार करके जीवयारा पथ मिले ! तन,मन,जग और जीवन मगलमय हो जाए। मून की प्रतिनिधि कल्याणी कवि की नववाणी घन्य हो। सब उसकी जय-जय गाए।" (तारा पाण्डे)

यह एक पल का चिन्तन है या मही कवि के व्यक्तित्व की समग्रता है <sup>7</sup>में समभ्रता ह कि जीवन में प्रनेक पक्ष होने के कारण अनुभति समय-समय पर विभिन्न रूप से अपने ू को व्यक्त करती है। कभी-कभी घटना-विशेष से प्रभावित हो जाने के कारण हमें दुष्टिकीण मे एक प्रकार की ब्राति भी दिखाई दे जाती है। ऐसी रचनाथों मे हमे वैयन्तिकता के ग्रति-रिक्त लोक-प्रभाव की ऐतिहासिक घटना भी देखनी चाहिए । कवि ग्रपने को ग्रभावों से प्रस्त पाता है तो वह अपने को अलगाब के नाम पर विद्रोह करता हुआ प्रकट करता है • तुम्हें चाहिए प्रेम, प्रेम से मेरा स्वा नाता !

तुम सुख के सर्वस्व, ग्रीर में दुख का निर्माता ! कत प्रभात होते चल देंगा, ग्रलख गीत गाता <sup>1</sup> में प्रपते पथ के कण-कण में प्रपतापन पाता !

-- श्यामविद्वारी शुक्त 'तरल'

पय का यही भ्रभिमान कर ले।" (कचन)

पय का ग्रभिमान क्यों ? क्यों कि ग्रांकचन वनकर जीवित रहने में कवि को

कुछ मयांदा दिलाई नहीं देतो । हम जीवत मानव को देखते है । "हमी क्षकेले नहीं, सारी मृष्टि यहा तथा करती है। एक-दो बूद नहीं, सीवन-भादों के जलसर उमड़ने हैं। जब तक बूद-बूद रवि मी ज्वाता पर प्रपना जीवन तील रही है तब

तक तो सावन धन ऊनर को उवर करने से यूक नही सकते ।"(शिवमञ्जलसिंह 'मुमन') पथ होना चाहिए। उसके बिना सक्ष्य भी न्या कर सकता है। कवि कहता है

प्य की पहचान यदि पगको न हो

तो विचारा सक्य भ्राखिर क्या करे।

भूत-शूलो का विद्यायदि जात हो

तो चरण का बक्ष ग्राखिर क्याकरे<sup>?</sup>

हाय में यदि तोडने का बल न हो

भाग्यका लघुक्क्ष ग्राबिर क्याकरे<sup>।</sup>

हो हृदय में घोर तम लिपहा हुग्रा

तो उजेला पक्ष द्याखिर क्या करे<sup>9</sup>

—शिवशवर मित्र

विरवास ही सारे सत्य का आघार है। उसके विना कुढ़ भी नहीं है, क्यों कि दृष्टि-कोण उसपर ही तो घाश्रित है। सबुष्य कीन है। वह तो बहुत व्यापक हो गया है। दर्द की क्यह में उसकी सत्ता बहुत ही सार्वभीम और सार्वकालिक हो गई है।

"सोने में तीनो खोको को पीर लिए हूं। माखो में सानन-मादों की तस्वीर लिए हुए हूं। मैं कि हूं, मानव-सस्कृति का निर्माता हूं। मैं प्रपत्नी वाणी ने मुद्दों में प्राण जनाता हूं। मुद्रा तो बस एक दिवस ही सुष्टि बनाना है। परनु में निर्ध्य नया समार बनावा करता हूं। मुन्तिय से मोन जीव गईं, लिकन कि में नहीं। कि में में राजा है परनु कि बिता कु कभी नहीं मर जाता है परनु कि बता कु कभी नहीं मर जाता है परनु कि बता कु कभी नहीं मर जाती। दुनियायाओं। तुम कि कि सामाना खरीदों में आमू दे-देकर वया मीटे गान वरीदों में त्यों कुर्सी के हैं बात दीवानों। वया तुम चाड़ों के ट्रक्कों पर हमान करीद कों में ने वन मितमद मत्तापारियों पर हमता हूं जिन्हें नादिरसाहों प्रतिविधी पर तिवास है। भावद वे नहीं जानते कि द्वानसात के कभी पर ही भूषण को बोतो जठनी यो।" (रामहमार बनुवेंदी)

्विन का गौरत स्पनी चेतना को हो नहीं, सामाजिक परिस्थित को भी उठाना चाहता है। इसके लिए वह बदसा देने को भी तैयार है, "ग्राब इनना तप कि पत्यर पियल जाए। ज्योति सम को भेद दें, किरलें निकल ग्राए। ग्रद मरण का प्यार भी विकल बयो जाए ? सामना ही मिडियो में बदल जाए।" (सुमिना चुमारी मिन्हा) श्रपनौ सौमार्मे घुट-पुटकर उसे प्राण लोते देखा है !

× मैने इन भपनी ग्रांको से लौह चक चलता देला है।

—श्वाभविद्यरोशुक्त 'तरतः

दर्भन का जीवन से गहरा सबय है। दर्भन का विकास मानव सस्कृतिका विकास है। काव्य का इसीनिए दर्भन से सवय है। काव्य का इसीनिए दर्भन के सवय है। काव्य का इसीनिए दर्भन के नव्य है। काव्य का इसीनिए दर्भन के मान्यता मान-पत्त के मान्यता में हुई है। हिंदी काव्य में मध्यकाओं न दर्भनों का प्रमाव सत्वाय्यों में दिखाई देशा है। सवयं और अपत्योग तब भी था, जिंतु उसका रूप तब दूसरा था। व्यक्ति की समस्या तब प्रधान थी। नये समाज के परिवर्धन ने व्यक्ति के तथा प्रमाव को सामने रखा। विगत समाजों के मानितिक स्तरों का परिचय हमें काव्य द्वारा ही मिलता है। आधुनिक काल में दर्धन की व्याख्या भी वदसी है। प्रभावशाली विचार मानव की मुक्ति मानने का प्रतिनिधित्य करते हैं। दर्भन भीर व्यक्ति का वृद्धिकाल हो स्वर्धन हमारी परंपरा ने ही इस विकास को जन्म दिवा है। नवीन दर्भन भीर मानवतावाद की समस्या पुरानी परपरा की भूमि का ही विद्यार है। ध्वा दर्भन प्रपत्त क्या हमारी का हमिलार है। ध्वा दर्भन प्रपत्त का सुन्ति का हमी हमारी परंपरा ने प्रभावशास का हमिलार है। ध्वा दर्भन प्रपत्त का प्रविक्तान कर रहा है। धारा-परपास का सादात्य अब दूसरे रूप में होना है.

वेद की क्ष्मण, तून जानितारों के काड़कर धानेयन जीण पर्मसाहतों के मनत उठे परती पर साकार होने को । विरास अन की शीलों के मुंदे हुए करायों से ध्यतित के धन्तर को कंदी अनुभूति रहकर सबत सोधनों के मृद्दिक्यों में ध्यव बंदी रहन सकेगा, निश्चल साधन की मृद्दिक्यों में ध्यव बंदी रहन सकेगा, निश्चल साधन की समता के गायक व्यक्तियों का मंत्र-दर्शन ! धन यह पिप्से का मृद्दिक्यों में धन विद्या के स्वत्य ने स्वत्य के इस विराद वस्तु-व्यापार में । भूमा का ऐस्वर्ध न रहेगा मात्र भीग धनवालों वी: न रहेगा यह साथ बीदिक-आध्यारिकक चर्चा का विषय हुद्ध महतों को रसीलों वावतों थीं मुगाची राय्याओं पर । व्हित्यों के ब्हत, तन् बीर भूमा सन्द होंने धव

लुटित मस्कृति को अपना पय-निर्माण चाहिए। जीवन विसर भी रहा है और निसर भी रहा है। एक को ब्राल और दूसरे को नाण देना है। जीने को यह लोक बना है और मरने को परलोक। तुन्हें और किनना प्रमाण चाहिए कि तुम्हारा इतिहास कलुपित है।" (उटयसकर सट्टी)

बहुती नया दे रहा है सब जुद्र। उसमें कोई प्रश्न कर बैठे तो कवि उसे केसे स्वीकार कर सकता है। क्योंकि सत्तय ही परावय का मुख स्रोत है।

इमीसे कवि मानता है

"सुनी । मृत्यु का प्रवपुष्टन सुनने से पहले ही जीवन का अभिमान कािकरने-वाला है। वािसतो का रक्त एक दिन रम दिसाएगा। नव पापो के दुगम दुगे विकार जाएगे। सभी विरोधानाम एक दिन टल जाएगे। यह जीवन का विश्वास टलनेवाला नहीं है।" (कुमार)

विद्वास भी कितनी वडी चीज है। यह किसके अवर्गत आ सकता है। यह प्रेम

के भीतर की दात है भाज तो पतवार है, मक्सधार है, तट का सकाजा।

पूज जीजन का पंडा कल प्रवंता में भी करूँगा।
प्राज भी तो मीत भिक्षा की खड़ी दापन पतारे
सांत दे लूं, कल मदद की प्रापना भंभी करूँगा।
दर्द की हद भी हुई क्या, माह भरता हूँ प्रभी तो
के शपप इनकार की में चाह करता हूँ प्रभी तो
के शपप इनकार की में चाह करता हूँ प्रभी तो
को का तो जब नवन से प्राण को दुनिया क्यांती
और जीने के लिए सो बार मरता हूँ प्रभी तो
धान तो इस भूत से है हर कदम पर हार मेरी
जीत लूँ तो स्वर्गकी कस कामना में भी करूँगा।

—इम**नु**मार दिवारी

प्रेम ही सबंदना का प्राथार है। वही स्वतन्नता चाहता है, "मानव वही है जा सिर्फ मुक्ति में ही जीवा जानता है। जो देत के लिए प्राण देना जानता है, जो मानव-पर्म-मात्र को ही मानता है, वही मानव है।" (तेजनारायण काक)

देश तो केवल एक ग्रीभव्यक्ति है। उस क्षण की मर्यादा है। ग्रन्यया वहा तो ग्रीर भी स्थापकता है

"सामों में सामों की बरबाद कहानी कब तक पीड़ा का तील करेगी ? कब तक निटी जवाभी सामों पर मजबूर प्रमत्ती हो साम लिए पलभी रहेगी ? यदि तुमने प्राणी का विद्यास तीड दिया तो वह जिंदगी में ही उठ जाएगा। सच, तब यूभने जो मूकको तालो "जिस तुवा पर पय का पतिरोध पल रहा था, आज कवि उस कल्पित तृपा की जब हिलाना चाहता है।" (सैलेश)"पय पर सिटनेवालो का विविद्यान व्यय नहीं जाता। भी राही पय पर विल होता है वह मजिल को समीप लाता है।" (ब्रजमोहन गुप्त)

"इपर रूप की मुदर जून्कें सुररता की घ्राग लगाती हुई, राज-प्रदारी में पलगी पर भोग-विनासी को फैलाती हैं, दिन में जो दुनिया में घम घीर सत्ता का रात रचाते हैं, वह रात में प्रविचारी-व्यभिचारी दानव वन जाते हैं। इमीने मुदरता की जुल्को की सौगय क्रेकर हो परिवर्तन का लाल विजारा प्राज नई घ्राग सेकर जल उठा है।" (प्रचन)

"पय भते ही यके, किन्तु यह चरण भविराम चतते रहे।" (शानित) "वसी से परसर वर्ष है। नित्य नम के आगन्यण धाते हैं। प्राण तडणकर रह जाते हैं। प्रस्ता ते विवास से पायाणों को राज-राज कर जवासा उपजाकर जल मरना चाहता है।" (विर्वीत) "बहु मते ही रीता-सा दीप है, किन्तु जलता ती है। उमें स्नेह नहीं मिला, इसीसिए प्रतिमा का रा नहीं सिल पाया, फिर भी यह चया कम है कि बहु ज्योति जगाता है। यह स्वय मिटता है, परन्तु सौरों को राह दिखाता है। बहु नत होने को पाप सममता है। माना कि यह दम ने जीत नहीं सकना तो है। माना कि यह दम ने जीत नहीं सकना, किन्तु कम से कम उत्तकों प्राण्यों में सजता तो है।" (रामहुमार चतुर्वें) "पूपनों की अदारी के दस्ताने बन्द करने कार मत मूरी, बाहर तुक्ता नरन रहा है।" (भारतभूतण ध्रयनाल)

जगती के विधण्ण धांगन में, धमृतपुत्र, धभिनदन ।
सांग रही ज़ियमाण मतुजता है तुमसे नवजीवन ।
प्राटे स्वर्णशास्य घरती पर, धांगत मगतमय हो।
नृतन युग के नव-भानव की दिशि-दिशि में ज्या-अय हो।
नहीं चेतना के निर्माता, करी धमर वह सर्जन ।
भाव रही ज़ियमाण मनुजता है तुमसे तवजीवत।

--बानन्दभारायण शर्मा

"कवि एक पगतल में पडा लघु तिनका है। सभी उसका दो दिन का नया झिस्तत्व है। उसे भक्ता के भोके भुवाते रहते हैं। जीवन का पथ सदा बदलता रहता है। परन्तु तूकानों से उसकी पुरानी प्रीति है। वह गत दिवहासों का भग्नावसेय है। परन्तु वह सपु दीपक की जलती हुई जवानी है।" (स्वामविहारी गुक्त 'तरल')

"कवि का जीवन, नव भाशा-रस से विकसित होकर, प्रेम-प्रीति-परिमल से सुर-भित होकर, मानव-मन का मालिगन कर रहा है।" (केदारनाथ सप्रवाल)

"मन तक काम ही काम रहा, विश्वाम नही । यब ही को प्रेय मत समझो, श्रेय तो पाम है। क्रिसीको मधुर याद, क्रिसीका बिद्धोह तेकर मोहते को वसे हो।" (धुभोक्र) "मन का दिया ज्योति नही देता यदि उसमे ग्राग नहीं जलती। दु ख के दाहो ते ही हमारा ब्राइमी को गफलतो की नींद से जैसे जगा दें प्राण मेरी बुरा मत मानो कि ऋठा है कुम्हारा प्यार—

—गोपी उथा गोवेश

यह है वास्तविक प्यार । वह केवल व्यक्तिपक्षी नहीं है। यो धर्म और रित के मिलन में 'मानकीयता' का जन्म होता है।

"जो पीडिनों में एक्य का मचार कर रही है, ये तुम्हारे प्यार की कडिया अमर

होगी।"\_(रामकुमार चतुर्वेदी)

इसीनिए कवि घत यार की परिभाषा बदल रहा है। मनुष्य का स्वभाव है एकरसता से अपने मन वी मिद्र करना, अमे धानु या पारे को मिद्र किया जाता है। उसके द्वारा मनुष्य व्यक्ति, समात्र और चराचर का पहने मन में स्पष्टीकरण करके एक सामकस्य और तादास्य बैठाता है। उसके विना उमें सब कुछ मूना-सूना-मा लगता है। वह जैसे दसरों का न्याय्य नहीं बना सकता।

डितिहास का विशाल विगत रूप देलकर वह होर नहीं मानता, नया ब्राह्मान देना है

"मिरियो ने मरघट की लगडें जग में उठली आई है, अब मरघट को मधुबन के गीत बुनाने हैं।" (बलबीर रत्न)

मधुबन के गीन मरघट को कभी नही बुता पाए थे। पहले मधुबन ही मरघट मे जाकर सोमा करने थे। यह है नये वाय्य का स्वर। वह कहना है

निरायुत्त सत्य का तुष्पान प्राता है
तरणों के घरण थामे
गमन की देह दमती है
तहित् की पत्तियों में
पित प्रियों टूट मसती है,
दिसा के प्रसक्त सागर में
भूजगों-से तडणते है
कि तम का दैरा पढ़ वंडा
मुजन के प्रत के सण में

—मारतभूग्र अवहान इमीलिए वह नई उपमाए हालता है ग्रीर इसमे वह चमलार पैदा कर देता है।

वह ग्ररमान है। यदि मऋघार में नाव डूब जाए तो पतवार ही क्या है। जो ग्रमारो पर हमकर न चल सके वह प्यार नहीं है। जो मौत को सीने से लगाकर हम सके, वही । जिन्दगी है। जो समसान में भी प्राण फ्रंक दे, बही वरदान है।" (दृष्यतकमार)

"कवि मिटने की सीमा-रेखा पर शुरू हुगा, उसका आरम्भ हुगा रोने मे, परन्तु

अन्त हुआ गीनो मे ।" (गिरिजाकुमार माथर)

बह नया रास्ता पकडना चाहता है, ताकि पुराना कम ही ट्ट जाए

नदीन पय ग्रहण करो। लिखो न गीत दुःख-भरे,

न वेटना विकल करे. विचाद के भ्राडिग पहाड

पर मुद्र चरण घरो !

न एक झाहभी उठे

न एक दाह भी उडे

मिले समुद्र सामने

सहास संतरण करो !

मनुष्य तम महान हो,

अजेय शक्ति प्राण हो डरो न शुद्र विध्न से

समोल ग्रातिक्रमण करो ।

—जितेन्द्र कमार साहस के प्रति एक अदम्य प्रीति नये कवि मे हमे प्राप्त होती है।

"हर दर्द स्वय नया राग वन जाता है। सदा ही गान आहो से फूटा करता है। यौवन मुन्काता रहता है, घौर जीवन की परिभाषा को नतन बनाता है।" (राजेन्द्र सब्सेना) एक नया दृष्टिकोण मनुष्य को नवीनना के प्रति कितना जागरूक बना सकता है,

यह बात हमें स्पष्ट दिखाई देती है।

"सितार के तार प्रलग-प्रलग हैं, किन्तु तान में अनेकता नहीं है। चाहे आकास में लाखो तारे हैं, परन्तु प्रकाश में महान एक्ता है। सूर्यताप और चन्द्र की शीतलता जगती के भेदो को नही जानते । किन्तु मनुष्य जो पृथ्वी के शासक हैं वे प्रपनी समानता को नही मानते । शुद्र भी महान का प्रतीक है जैसे बीज में वृक्ष होता है। जैसे ग्रसीम वेदना के समुद्र को मैं अपने एक बुद आमू में सम्भाल लेता है।" (गौरीशकर श्रीभा )

सारी सब्दिका कारण और मनुष्य के दुस के कारण दोनी को ही कवि एक

स्वर से सनता है।

जिसकी महलो को दोवारें
उसी खून से सनी पड़ी है।
जहां जमी महफिल के तालो
पर स्वप्तित मारकता तिरती
एक ग्रंग की ग्रंगडाई पर
बोमिल ग्रांत जहां विरकती
इसी महल के तले खड़ा
दम तोड रहा इन्मान भूख से,
पत्थर भी देगा जवाब,
विख्त का विग्तल बजेगा साथी।

मृशाल

विस्तव । इसका उत्तर है बिस्तव । एकदम की अकऔर जो सब कुछ उत्तर-पुतर दे। पुराने को उलाड दे। ग्रपने पौरप का भीम पराश्रम प्रतिब्बनित कर दे। नई दानित जगा दे। वह करता है

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाथों कि जिसमें उचल-पुचल मच बाए। एक हिलोर इपर से प्राए, एक हिलोर उचर से प्राए, सर्वनाश छा जाएं। याग बरसने लगे। नभ का बक्ष कट जाए, नारे टुक-टुक हो जाए।" (बालहृष्ण शर्मा 'नवीन')

भी पान कर पार्च पार्च के हुए आहा । (पार्च क्या पान पान ) भीर प्रव हम देखेंगे कि इस ब्राह्मान को सुनकर नई चेतना उस विध्यस से नई मध्य की किस प्रकार करनना करती है। स्वमं स्रोर मुख का वरण करेगा। नारी से ही यह मनु का बना रामित है, वही स्रादि सृष्टि वी परिजो है।" (शिवसूर्ति निश्च)

स्त्री और पुरप दोनो की ओर ही किन की दृष्टि समान रूप से जानी है। नवपुन के प्रादि निविध किन नहना है, "जन्म मरण की कहा ने प्रमर बनता है। उसे रात-रात नरण भी नहीं मिटा सकते। चिरतन एक की खोटे-खोटे चरण नहीं द्विपा सकते।" (सुपीन्द्र) "जिस जीवन में दुल की ज्याला है वह सोने से सुदन बनता है। जिसका हृद्य परदुख से कानर होना है, वह प्रनस्वर गीन बनोना है।" (कुन्यमुमारी सिन्हा)

मिट रही है माज भानवता स्वप मानो कि की हाराकिरी भगवान ने मन्द जोवन-ज्योति की रेखा मुनहनी।

—शहेन्द्र भटनागर

' तेसनी ही हमारा पार है, घरा पट है, छिन्बु प्रसिपात्र है, हम तुन्छ से तुन्छ जन की जीवनी पर मो कहानी,काव्य, रूपक, गीप प्रारि निसा करते हैं।"

(नागाजंन )

वह प्रपत्ता 'वायक बदल' रहा है। स्नान की मिटती विद्या पर उस नवे पुग के तिस्त नित्र दस्त निस्टापूर्ण ही स्वयंत्र करो, सर्वण करो सौर उसका दक्तिसादी सब्ति के नारे लिए स्वास्त करो, खायत करो !

--महेन्द्र भरनागर

"जो बरती की धड़बन नहीं सुन सकते, बहू तम का सपीत बेबा कुनेंगे । धलों की नोकों में डरकर पूनी से कोई बया प्यार करेगा । जो पके घरण को प्राप्ती करणा का इपनी करणा का इपनी करणा का इपनी करणा का इपनर नहीं दे सकता, बह बढ़ने नदमों को प्राप्ती कर अधिकार नहीं कर सकता। जो प्यार यमुखर को मुन्दर नहीं बना सकता, उस मरे प्यार की खातिर कोई क्या हम-हस-कर मरेगा।" (गोदानकृष्ण कीन)

"बम बन्तिम साथ यह है कि हम क्रान्ति के सिपाही है। तब तक प्यार और मुन नहाँ है, बन तक बरती पर मुलामी है। सीपण का दनुन नुसना विधाड रहा है। जब तक उमका प्रमान नहीं होगा, तब तक मुलक्षीर सानि नहां मिल सकती हैं ?" (राजेन्)

नालमावनं के प्रति यावेदा में भाकर निष्क कहा। है, "दुस जग-जीवन के नव-विहान हो। दुस महात्राति के मीनगान हो। दुस करणा नी कादर पुकार हो। दुस दरि-प्रदा नी प्रवयन्तान हो। दुस साम्यवाद के विजय-गान हो।" (बोहनलाल द्विवेदी नगर, बाम, बन, सबकी ही और उसकी दृष्टि गई है। मौर माधुनिक जीवन के परिवेद में उसने अपनी विवदानाओं को काफी बहराई ने टटोला है। मौर उसने उस बेदना को वदी हो मुक्तमारता से उडेल भी दिया है।

'शहर को रात' से चंदा उसा। नये किय ने देखा। अपने जीवन की विवसतासी स्रोर पुरन को देखा। विज्ञान के चरणों को भी उसने निहारा स्रोर वह कह उठा

रात हो गई।
जले राह पर खड़े लीह खम्भो पर लड़के लड़्दू।
चमक उठों सहसा सड़कों पर
चलतो हुई मोटरो को गोल उल्लुई बांखें।
क्तिसल पड़ों किरचें प्रकाश की
कोलतार की सड़क हो गई गोरो।
सद्दू बलते रहे।
परकरों घड़ों अनकतों रही
व बिजलों केल कर सकी
और इसीलें दूर गगन का पुरा-पूरा चांद

रह गया भेंह लटकाए ।

—नगेन्द्रक्मार

-विन्द्रमार पहले तो मोटरों की गोल उन्जुई ( तथा शब्द ) आखों ने उसकी प्राप्तों को चौंपिया दिया। धौर सरकरीं लेम्म की रोशनी के कारण माकाश कर बदा उठ ऐसा दिखाई दिया, जैने मुह लटकाए रह गया। यह केवल उक्तिवैचित्र्य के धन्तगैत साने-वाली रचना ही नहीं है। इसमें केवल धाधुनिकता का गर्व ही नहीं है। वरन इसमें मनुष्य के नये जीवन का प्रतिविग्य है, एक नये दृष्टिकोण का धामास है, जिसमें यात्रिक जीवन प्रकृति के सहन मंदियं से दूर होना चला जा रहा है। वह सब मुख पर ह्या जाना पाहता है। क्लि उपकी धनुमूलि की कोमलता विनय्देति चली जा रही है। मानो यह विकास स्वार के सून का सहस्व केवल इतना मानेगा कि उसमें में इन निकाला जा सकेगा धौर वाकी सब व्यर्ष होगा।

कित् मनुष्य ना हृदय यह स्वीकार नहीं करता। प्रकृति से मनुष्य समर्प इनिलए करता है कि प्रष्टित को अपने लिए ऐसा बना दे जो उसे मुख दे। जिन राज्यों से वह पर बनाता है, वे भी तो प्रकृति के ही थग होते हैं। जिस विजसी को उसने काच मे धेर तिया है वह भी तो बस्तुत एक प्राकृतिक बस्तु है।

भीर काव्य जीवन की एक मनुभूति ही नहीं, बहतो उसके जीवन की विभिन्तता से उत्पन्त मनुभूतियों का प्रसार है। व्यक्ति सबको देखता है मीर उस सबका उसपर जीवन को पूर्णतम बनाना प्रत्येक मृत के गनुष्य की एक साध्य कामना बनी उटी है।

"यित को गित के बदले कभी नही चुना। फिर लहरो के उत्थान-गतन कर भी क्या सकते हैं ? जिसका जीवन समर्थों का है, उसे कूल में प्यार नहीं है। उसलिए ममधार उसे कभी भी डरा नहीं सकी। जीवन के राही की अवरोधों पर अस्ति नहीं हो सकती।" (राजकमारांसड 'कमार')

पह ही है उसका नये रास्ते की श्रोर बढता। पूर्व वितन उसे ले जाकर एक नई समस्या के सामने लड़ा करता है।

> ये खडी रुदियों की अँधी थी वारें— जीवन देनेवाले समीर की रोके ! उस पार कंदबाने के रह जाते है सलमस्त हवा के ताओ-ताने कोके ! कुछ मत्त करो जितने जैंधी थी वारें क्विजर पिरकर मिल जाएं मेदानों में ! किर नई जिंदगी की फतलें तहराएँ मस्ती की हस्ती भर कर इतानों में ! सो, जुली हवा के खातिर हमको-तुमको होगा समाज को परम्परा से खड़ना ! बल जोड सकेंगे हम इतना निरिच्य है तम जरा गोर से मन की पीता पड़ना !

> > —शिवज्ञमार

रूढियों से मुक्ति का समयं निरन्तर बढता ही जाता है।

"प्राण का इतिहास यह है कि प्यास ही अस्तित्व है, जो कभी बुभना नही जानती वही प्यास होती है ।" (श्रीहरि)

यह प्यास ही एक नये रूप में 'प्रगति' वन कर प्राई है।

"मृत जर्ज र स्टड्स से नवमुग की सामें जग जाए। बीते युग के पतऋड से नया मथुमास उग धाए। याज शोषण की मीनार डगमगा कर गिर जाए। साम्राज्यों की दीनार सडसडा उडे। जानिम की कातिल सूती सलबार टूट जाए। मुगो के बाद कारा के डार टूट जाए। स्वान्तमान प्रवर में युग का नेया सवेरा जाग उडे। काले मृत्यु-प्रहर से जोवन की किरसें सूट पडे। प्रपना सूर्य युगो के बाद निविड तिमिर से निकल प्राए।"

(धनस्याम ग्रस्थाना)

एक घोर परपरा, एक घोर प्रपति। विविदोनों में एक तार वादने की चेटा

भोड़कर बांदनी रातका आवरण भूमिको सेव पर सो गए पूलिकण सियुको गोव में सो रही है लहर फूत के प्रंक में सो रहा है अमर बांद सो शे रहा हूर आकास में लाव भो सो रहा है अणय-पादा में नॉरह है स्वामिनो साल है जायरण चेवना विना, मुक्त है जायरण

—गगवदत्त नित्र

मिमु की गोद में सहर सो गई है, और भूमि को सेज पर धूजिरूण चादनी रात का मादरण फोड़कर सो गए हैं। बाज प्रणम के पारा में तो गई है। जानरण दात हो गया है, क्योंकि नीद स्वामिनी है। वेजना वदिनी है, परतु जानरण मुक्त है। यह कैसा विरोजाभात र नहीं कवि का चमत्कार है। यह वह जागरण नहीं है, जो प्राप्त खुनते में मिनता है, क्योंकि बहु तो दास हो चुका है और उसके पास हो चेतना भी बदिनी हो चुकी है। यह जागरण है नीद के मीतर का जागरण, जिसे कहते हैं स्वण, वह मतस्या जब सीते हुए भी प्रणो यहाँ महमन करनता है कि वह जाग रहा है।

नेकिन अब बाद कैसा सगता है ? रेदामी, गीला, मुनहरा। अर्थान् उसकी

स्निन्नता, इसकी कमनीयता आगे आती है।

रेतमो, गोला, सुनहरा चाँद घरती पर उत्तरना चाहता है। सौगुओ रपतार से भगभीत पृथ्वी भागती है।

प्यार का घट रिक्त, मन के स्वप्त के घनश्याम सारे, बैठ की जलती द्वहरी में, विजन की ड्रंगरी के

देव मंदिर की फटी-मैली ध्यजा से उड रहे हैं सुसकर।

विजन की दूनरी का प्रयोग राजस्यानी है। उसकी वरूपना वरने की विकी दूनरों के देवपदिर को देवना प्रावस्थक है। न्यास मे प्रपनी करूपना और दास्तविकता का सपर्य बज रहा है। वरूपना बार-बार सुन्दरता की और ले जाती है, किन्तु यथार्थ किर पर हपीड़ से माने क्वाती है। विजना करण विदूत है। तमी तो कवि भी मीचे उजरवद देवना है

> मास-भन्नाहोन, सक्ती का बना मनुपुत्र पोता बोडियां झाचे जले छडे उठाकर हो रहा निर्माण, भव निर्माण, सारे विस्व में

मूक-सा कराह उठा । मतागत इस विभोषिका पर भी 'कला-वला को माला' जप रहा है । तब तो मेरा मानव-तन धिक् है । यह हृदय की ज्याला निष्फल ही दृख है ।" (शिवमयलर्मिड 'समन')

यह है समाज। इनसे कवि कब तक प्रत्याय देखता रह सकता है? "जिसे तुम भेरी भूल कहते हो वही चिर सचित जीवन-गान है।"

(शिवबहादुर्सिह)

इसीलिए वह सब म्रोर देख-दाखकर मत मे प्रपने मन मे कहता है—"भा री व्योगकुयो की परी कल्पने ! मूमि को स्वर्ग पर मत ललचा । हम तेरे स्वप्न तक नही उड सकते, ग्रवित है तो था, यही मलका वसा ।" (रामधारीसिंह 'दिनकर')

थीर वयोकि उस समय रूम का विकास मानव-विकास में एक ग्रद्भृत वस्तु-सा

दिखाई दे रहा था, कवि ने कहा

लाल सितारा हो ध्रुवतारा द्यानु देख हहरे ।

लाल प्यजा यह मजदूरों की साल प्यजा यह मजदूरों की लाल प्यजा यह है जूरों की छूसकते साम्राज्यन इसकों भीरदेल भहरे!

> हमारी लाल घ्वजा फहरे, तुम्हारी लाल घ्वजा फहरे।

तुम्हारी साल ध्वजा फहरे गडेदेश में साल पताका

रोके [बढ वंदी का नाका चले ताल क्षेता का साका : ग्रन्थायों का सर्वनक्षा हो

ग्राज न्याय ठहरे <sup>ह</sup>

—मोडनजाल दिनेदी

इसके मूल मे यह भी षा कि भारतीय कवि भगरेती भासको के रूप मे सारी भगरेज जाति से पृषा नहीं करना चाहता था। यह सासको श्रीर जनना को अलग-प्रलग करके देखना चाहता था। यह उनकी मानववादी परपरा का ही परिणाम या।

"कई दिन से उस्त जीवन है घोर वेश धम्तव्यस्त । मन सतप्त है। प्राणी में निर्मूम चिता को चिना जल रही है। भीत-सा प्रति रोग भेरा काप रहा है घोर मेरी चेनना हिम-सीन जरना में जकडकर चेप्टा से होन निर्मीच गोग हो गई है। ऐसी विषम स्थिति मे कहानी नयी जिंदगी कह रही है पुरानी विगत स्वप्न में वह रही है।

×

मनुज से बड़ा सत्य कोई नहीं है मनुज से बड़ा तथ्य कोई नहीं है समुग्मत जीवन गरल पी रहा है इसे मृक्ति दो, यातना से बचान्नो, कहां मृक्ति इसकी, मुम्देयह बतान्नो।

-- उदयशंकर मह

चारो क्षोर वादनी छिटको हुई है। पूजिमा मुखद गीत गा रही है। मनुष्य भी मचे मोड पर प्रा गया है प्रीर पुरानी चेनना में उमका प्रव नवर्ष हो रहा है। वह किसे मुला दे ग्रीर जिमका स्वागत करें। वया त्याच्य है ? क्या प्राप्य है। नई जिंदगी बोल रही है प्रोर पुरानी बिदगी स्वप्नवन् हो गई।

प्रविक्विहुकार कर नई माम्यता को स्थापित करता है कि मतुष्य में वढ़-कर कोई मत्य नहीं है। एक दिन बड़ीदास ने भी कहा था, "शाबार उपरे मानुस सत्य, ताहार उपरे नाइ।" नया कि भी मही कहना है—मतुष्य से वड़कर मत्य ही नहीं, कोई तथ्य भी नहीं है। है तो कैमे सृष्टि में बहुन कुछ किंद्र मनुष्य तो जो कुछ जातना है वह प्राप्ती है। बुद्धि ने न ? यत यह जान उमीकी देन हैं। हमारी सीमा ही ऐसी है कि हमे प्रमी तक उसे ही भवांतर स्वीवार करना पड़ना है। ब्राव को विषयना ऐसी है कि जीवन में। विद्यादी पीना पड़ रहा है। इसे दिसी प्रकार वचाना होगा, इस यायना से मन्त करना होगा।

सरन मानव के प्रति मनेदना एक पक्ष है। दूसरे पक्ष में किन यह मुलक्काने का प्रयत्न करना है कि उसका अपना जीवन इतना दुवी क्यों है ? जने सुरत्या से प्यार है, फिर भी वह मुनी नहीं है। मन तो यह है कि वह सीदर्य के रहस्य को नहीं समक्ता, और इमी कारण वह यह भी नहीं सोचता कि वह कुछ अनय है, बल्कि मदमें बचा हुआ नहीं है

मुक्ते तुमाना गीन चाँद की उजली-उजली प्रीत का समस्र न पाना भेद चाँदनी के मधुमय सगीत का,

2

सुनते हं सापर से उठते मीठे-मीठे गान भी क्या जाने क्या बात कि मुक्तको मिलते हें तृकान ही, को उसने प्रपते से तिरस्कृत नहीं किया बल्कि समग्र का ग्रस बनाकर स्वीकार किया है।

"क्या मुक्ते हार से विजय मिनेगाँ? उपिय के उर में कवी उमहतीं, यून्य घरतीं को तपातीं, यून्य घम्बर से यूमहतीं धनयदा उठी। वह मीनेत परम पातर मुलद-मजत कुरार से गिर पत्री। वो यूमिन ववण्डर द्या दिगाओं से धान-कान दिवस को यूमि व स्थान करके, सीपण निशा से तीन करके बचा, वह एक एक से मृद्ध मनय वयार से सब हो गया। गिरि-शेमवर से गर्व से समकर वो निर्मेर परजा वह बना वह परा का पार पत्री हो सरपति हो हो कर मीने-मा निरंतर नदी की बार में या बमा। जो प्राप्त कुछक बुचलता, आ जो से गतनीं, विषय से समनता हुंगा निरन्द प्राप्ति-मुच पर अपनी सफलता हा का से गतनीं, विषय से समनता हुंगा निरन्द प्राप्ति-मुच पर अपनी सफलता हा का हो या, वह प्यार के एक पन से हिस अक से बसकर हक गया?"

(सुबीन्द्र) स्टब्स्

बह क्षोपण को अपना शत्रु मानना है। उमे उसने अनेक-अनेक नाम दिए हैं, ताकि उसके देविच्य को पहचान सके।

"जिनने बिदयों घोर मीन में हुछ फक्षे नहीं माना, वो दिसीको निर्म्मकाना ही नहीं जानना, बिनकी जवानी मीन को चुनौती दे रही हो, जिसको मारा जमाना खडा हुमा एक्स्बर में कोमना हो, जिसके तन-बदन में बिद्रोह की सफ्टें निकल रही हो, नता कवि उस हुदय के ब्रमारो-मा उला है। उसे सार नहीं समसना चाहिए, वह ती जवाना-मरा घमारा है।" (निरकारदेव 'मेनक')

बहु कमें भीर एन की विवेचना में नया तय्य निकालना है। "केयन बनेमान की ही चिना में भानेबान कल का ब्यान मन मुना हो। धगर फन के बारे में नहीं मोचेंगे तो हम यहां विष के बीज वो जाएंगे।" (शिवकुमार) झब उसके सामने भारनीय चिनन के सन् भीर मनन् का बन्द भी बाना है भीर वह दार्शनिक-मा कहना है

हार-जीत दो सब्द नियम के गति के, मति के, सान्ति सौर सथम के जीवन दो सज्दों में रुवा नहीं है। प्रार्थ से सम्बद्ध हो स्टब्स

प्यार भीर सधर्ष : शब्द दा गति के, यति के, तान भीर विश्रम के यौदन दो शब्दों में वेंधा नहीं है। गुनगुनातो भी हवा चुप हो गई जागकर तकदीर जैसे सो गई मुद्दतो के बाद पाणा पा जिसे चोज प्रालोगान मेरी खो गई

> गम की दुनिया का यही पंगास है हर सुबह के बाद होती द्याम है हर कदम पर मुक्तिकों का सामना जिदयी में किर कहां धारास है।

> > —नर्नेदेश्वर उपाध्याय

म्रमेदी की एक प्रसिद्ध कावता है जिससे पास्तास्य वेदना ने पुत्रारा था—
यिद हमें (पेड पर चडती गिलहरी इत्यादि को ) छड़े होकर निहारने का समय
हो नहीं है, तो यह चिन्नाम्रस्त जीवन है क्या ?—इमी प्रकार हिंदी का कि मी प्रेम
मीर सीदर्य की वेदला है परंतु उसे परिदर्वन भीर वेपमी ने त्याञ्चल कर रखा है।
उसके जीवन में कही भी माराम नहीं है। पुराना कि कमी ऐसी परिप्तानी में नहीं पड़ता
या। वह समाज को भादर्य देता या, या फिर वगों भीर एक प्रकार से सौक की विलास के
गीत सुनाता या। 'प्रसाद' ने उद्दें के दु गम्दरीत्य को प्रस्तुत किया था। उसीते यह व्यविक्त पर्ता हिंदी में उमरता चला माया। माज भी यह समस्या है कि काव्य कि के जीवन वा
प्रतिचित्र है, उसके व्यक्तित्तर जीवन की मनुभूतियों का मकत है, या वह समाज के लिए
एक प्रराप है। यह इन्द्र ऐसा उलभा हुया है कि परम्पर रूप में दोनो हो पद्मों के प्रत्योन्याधित रहने से दोनों के बीव कही एक रेखा मही खीची वा सकती। पूरोप भीर विद्यासया
प्रवेश काव्य में दितीय महामुद्धीगरान के काव्य में व्यक्तिन्य के का्य में विद्युपर (आवजित्र) वह हो सकती है।
पहुंत किया जाने क्या है। हिंदी में सभी तक यह रूप मुखर नहीं हो सकत है। यहा
प्रयोगवार सभी मानसिक उनसन्ता में ही बुवने वी चेदग में रख है।

'विविध को राका निया' इसी उलामन का एक अध्यान्या उदाहरण है। उसने सब बुछ देखा, मारा प्रतीत। प्रीर उसे लगा कि वैमे उसके लिए प्रव कुछ भी सेप नहीं बचा या। उससे पहुंत ही कृषि सब कुछ लिस चुके थे

बचना है चौंदनी सित

म्हूठ वह माकाश का निरविध गृहन विस्तार शिक्षिर की राका निशा की शांति है निस्सार !

दूर वह सब शाति, वह सित भव्यता, वह शून्य के ब्रवलेय का प्रस्तार इयर केवल क्लिमिनाले चेतहर, दुर्यर बुहाये की हलाहल-स्निग्य मुट्ठो में उक्कने ब्रह्मिल्य का विकिरण है । यह चितन-मात्र से सी घरीर-बर्म इस जनह धर्म की गाठ दिलाई देती है । इसीनिए वह शण-भर समीर व सीचरा है

"दिन के मीठे पूरो को जो वचक पीता चलता है, वह बवा किमी वायम के तीर वर नहीं पहुच जाता? जो सरिता बहती ही रहनी है, वह बागर में हिल-मिलकर हमती है। जो घलता ही रहनी है, वह बागर में हिल-मिलकर हमती है। जो घलता ही रहनी है, मिलन अमले बहुत हुन नहीं । नती घागत का प्रत है, व पतन की मीमा है। दुल-पष प्रत्येक चरण वर मृत्यु को घमती वे रहा है। फिर मी एरी अमने बाती है और पने कामी बढ़ने जाते है। जो चवने-चढ़ने कर जाता है, जे विश्वाम नहीं समझना चाहिए। प्रत्येक चरण इस जीतन का आगे, प्रांगे ही चलता है।"

(बदयशकर भट्ट)

यही बिनन जब अपने वैद्यक्तिक नधर्ष के पक्ष को उसार लाता है तब उत्तमें एक सीम-सी स्रा वाती है। स्थापक रूप से बहु मुल को देखता है। युम वैद्यक्तिक-सा ही दिखाई देता है। उसकी सीम्स बदनी है। नया चिनन उसे पैन नहीं लेने देता। वह कहता है :

"में घपने जोचन में केते कह दू कि घव इसका गति से कोई परिचय दोप नही है। इस मन को मैं केते माबुक कहू, इसे तो जडता में भी कोई क्लेश नहीं है। कमजोरी के भीत बनाकर क्या माना । यह कविता हो क्या जिसमें गई उठान नहीं हो। हाय मेरे प्राण क्क गए, कवि भी मर गया। घव मुफ्ते अपने पर कोई प्रक्रिमान नहीं है।"

(भारतभूषणं श्रेष्ट्रवास)

्मारत सूपण अश्रयात परतु यह स्वरं जब रूप बदलता है तो साखना मिलतो है

"यह जयती बहुत भोली हैं, इसमे स्तेह का चयक छलक रहा है। जीवन प्रेम हैं, प्रेम जीवन है।" (कोमर्लाग्रह सोजकी)

प्रमाप्त्रेम की उदात्तता सिद्ध करके, प्रेम को ही व्यापक बनाया जाता है। क्योंकि उमे प्रविक सहस्व दिया जाता है

यह सुधा है, पी पहा हूँ
भी प्रमर बन जी रहा हूँ
जो मुक्ते दुख दे रही है
बह हु दय की प्रश्तरा है,
फोन कहता दूस नुरा है।
सात हूँ भी देख जीवन
सात हूँ भी मुन मरण-धन
प्राह्म हैं।
सार हैं भी मुन मरण-धन
प्राह्म सिस्ट परम्परा है।

—देशराज दिनेस

र्श्वच शुभवसना स्वर्ग को अतरी परी, नीरव नृपुर योवन मधुर, कर्पण प्रचुर सहसा उठा वक्ष विश्व-वीणा में ग्रमीखा कीन सुर नीलाभ नभ हरिताभ भू किस मदिर मधु में है सना

हँसता कभी जीवन हमारा, आज ज्यो हसती हिना

× यह बासना की लाझ पर सहसा रखा किसनै कफन

—हन्तुनार निवारं
प्रोह <sup>1</sup> कैसा जल्लान है। अब शीरसामर उमब्दा चला मा रहा है, मह कमा चादनी-भर है ? स्वर्ग से परी ज्वर रही है। इसीको प्रानद नी तृष्टि कहते हैं। दिस्द-बोगा में निसने कान लगाकर मधुर स्वर सुन लिए, वह तो आकास भीर पृथ्वो को मदिर मधु में सना हमा देख रही है। यह लो <sup>1</sup> अब सरद ऋतु मा गई। यह तो आमन है वादनी का।

ब्राई आई तारर ऋतु ब्राई।
परतो पग मन्द मनुर, लग्रतो जल विस्तम मुकुर,
स्रित्ती तालो में नव परद्याई।
स्रोले हैं नयन कसत, टोले है ब्रग वपत,
वॉट पूनम की बदन नुनाई।
स्रोलह सिगार किए, ब्रमृत रसवार सिए,
पूल शेकालो में मुस्काई।

—सुमित्रा बुमारी मिन्हा (कोक्स कोक्स — गुरु

पूनम को मुदरता मिली है, शरद के मुख के लावच्य से । 'लोना लोना मुख' है। चरती का यार उस समय जनता है, जब व्यक्ति सपने को सकुचित सीमा से बाहर निकाल लाता है। भेषानी में जब सरद प्रमृत रसंघार निए मिल जाता है, तब की-हुदण एक प्रास्था में विश्वास रखना है, उसकी वातना सथकार में सपने-साथ को समिनित मुझे करती।

सराबोर मस्ती से कवि नाता है कि स्वर्ग की मधूणे मुपना हो यह चावनी है। साद ऐखा बमलन्सा मिला है—प्रौर भी सौ दलो वस्ता—कैमे दूध के समुद्र मे जग प्राप्ता हो। याज प्रावाग धीर पृष्वी घपने हो गए हैं

> नयन मन उन्मादिनी याज निकली चौंदनी। याज नेवल जून ऊपर, सून्य उत्पर स्वां की सम्पूर्ण सुपमा भ्राज भूपर!

पथ मुक्ति-साधन न भ्रम-भार <sup>ग</sup> गति ही विजय है, भ्रगति हार <sup>1</sup>

—राम्भनाथ मिह

मुक्ति उसका केन्द्र है। साधना से ही उसका लगाव है। "मेरे मन! कच्ट-नहन को सहन करो। यह मत समस्रो कि दुख मे दुख की

कथा का ही गीरव है। जब तक प्रतिकार न हो, तब तक सहते रहो। जब तक यह बोध न हो कि मुक्तमें भी कोध है, धौर में प्रतिशोध लूगा, तब तक कष्ट सहन करो।"

(रघुवीरसहाय)

दु स का निरावरण हो उसका मुख्य उद्देश्य है, चाहे उनकी श्रीभव्यक्ति किसी भी रूप मे हो।

"अपने भाष्य को द्यामय मसीहा बनाकर एक बार एक बन में हाथ उठाकर हुआं थेंछ उठा। बही एक चट्टान पर किर पटककर पर्पाहा अपने हुएय के रक्त से लिल पना सफल बानों को जनत ने सफर में प्रणय ही तरी है, प्रवय ही किनारा है।— एक दिन नवी के किनारे एक विकल अंगी अपनी ज्योतिबाता के बारे में सोचता खड़ा या कि घड़ी एक में एक ट्रेन उपर से निकती, जिसने तिमिर चौरकर ली-उजाला फेका। बड़े मुख्त दसर से ट्रेन पे कहा, 'मुफ्ते समार में आवसी ने सजार है।"

(शिवबहादुरसिंह)

मनुष्य सबपर छा गया है। इसीनिए स्पत ही कवि को अपनी सारी परि-भाषार बदलने को विवस होना पड़ा है। वह पुरानी चीजो से बाहर निकल आमा चाहता है।

"नतीची घाल, यथर कोमल, अलकें योंदर्य की वासी निवानी वस चुके है। म्राज सुप को नूतन इतिहास, राब्द, रीली, भावना, विश्वास, सब कुछ नृतन चाहिए।" (स्वादिल)

इस तरह यह प्रतीत से प्रेरणा तो वेता है, किंतु उसका अनुकरण नही करता । परनु यह एक धावेरा है, या है बौद्धिक चितन । धन वह सरीर-धर्म को प्रकृत मानकर उसे प्रपना सक्ष्य नही बनाना चाहता । चाहता है उपर उठना धौर प्रकृत को प्रकृति के सामने रसकर केवल साध्य न मानकर उसे साधना-मान बनाना चाहता है .

> हांदेख शुको को, काको को, हसों को गभ की धनम्तता से नित स्पर्धा करते क्या कभी सोचते हो हुम धपने मन में हम भी क्यो नहीं उड़ान हुदय में भरते?

जीलक के क्षांगन में शोभित जैसे साँडी का पाल धवल<sup>†</sup> धीपल-तस्त्रों से निकल रहा यह चाँद मधुर ऐसा लगता शिश, मांके कथे पीछे से. प्रकटा हो ज्यों करता 'स्या-स्या' यह घुनी ६ई-सा स्वच्छ विमल यह इस्थ घवल, हिम-सा शीतल, चांदी का चमकीला उज्ज्वल किरणो का स्पर्श मुखद लगता, जैसे शिरीय के कुसमी के सरभित पराग के तत महल, या शिश के गमधारे कुन्तल । यह गोल-गोल, गोरा, भलमल, इयो मधवन में तमाल-तश्-तल श्रीकरण ग्रंक से सटी खडी राधाका सहिमत मलमण्डल।

—रामेरनरनान दर्श्वतास 'तरुख'

कासिदास में जैसा रों का देमव है, वैमा ही यहा भी है। उसने कहा है—ऐ मेय ! वहा नीलम की चोटो का कोडाईल है, बगल मे मरकत-या कदली-कुब है, सोपान है मरकत-विलामों के, नीलम अल में हरितामृगाल-कमल हैं—हैयवर्थी ! यहा नीलम के मागन में बादी का चक्कता पबल चटमा है, पीपल के पेठों के पोछे से ऐसा निकल रहा है जैमें मा के कमें के पीछे से तुनताता बच्चा बोल रहा हो ! ममुमारे कुन्तल कितनी मोठो मिन्यिन्त हैं ! ऐसा है यह देसे मणुकन में राया का, तमाल के नीचे खड़े कृष्ण के पात, महकराता प्रमा मुख्या। केवल तुममा ही यहा चित्रिन है।

इस मस्ती में बहुत ने ब्याकुल हृदयवाले अपने सपने डुवोते हैं, और खो देते हैं। धनोत की मारिल व्ययाए एक सारवता-सी पा जाती है

> रात बॉटनी मस्त हवा है, नींद भरी-मी है सरमर ! स्वप्नतोक के यौत मुनाता बॉदी-ता मरना ऋस्मर ! मस्त बर्दालयों जैसे तम केहो सुग्दर सपने सुकुमार चले जा रहें निर्मित करने सुल का एक नया संसार !

हेत-हैत हृदय-किंदर से जग के कालेपन को धोता हूं में स्वर्ण-हुसुम फुटेंगे, बित के बीत मधुर नित बोता हूँ में तुम बसन्त सो बिर मगल वा में पतभार लिए जाता हूँ जीवन के का-पान को में हो गीवन ज्वार बिए जाता हूँ। जिनगारी देने प्राया था—इनको मुट्टी-भर विजयारी एक बार बस जन उठने को मब आई है इनकी बारो तब तक सबस्व मानवती का में मुदुमार सिंग् जाता हूँ। बुबंद मार लिए कागे पर पण को पार किए जाता हूँ। बुबंद मार लिए कागे पर पण को पार किए जाता हूँ।

—बेदारनाथ मित्र 'प्रभात'

मुन्दर के प्रति ब्रमुर्गनित झावेरा के क्षण में कही अधिक हो जाती है। जो देता है वह मुख्य की बहुत बढ़ा भी देता है

"मरने से डरनेवाल को ही मृत्युद्वार पर सडी होकर उराती है। मरनेवाले को समरता जयमाता पहना जानी है। स्वामं-निहित मयभीत हुस्य में सविनायी का चाम नहीं होता। जो मय की मकडी के जाने को तोड चुका हो, वही बोबित है। मरने से डरनेवाले को हो मौत निगल-उगलकर सा रही है।" (नरेन्ट)

यो मृत्युञ्जय होने का यह स्वर विकास को ही स्वर है, व्यक्तित्व को बडा करने

का ही माध्यम है, उपदेश-मात्र नहीं है। तभी विव कहता है प्रवस पवन से न डर बटोड़ी

दिया जलाता हुमा चला चल<sup>ा</sup>

तिमिर न होता ध्रयर जयत में, प्रकास का कुछ न मोल होता ध्रमर जदासी हुई न होती, मुहास का कुछ न मोल होता बता रही है यही घटाएँ कि जोवनो नी सनोर कर ले सिखा रही है यही बिजलियां कि मुस्कराता हुआ खसा चल।

ग्रार यकावट हुई न होती विराम की क्यो घडो मुहाती? डगर कडिन यदि हुई न होती कभी न भडिल हृदय सुभाती! बता रहे हुँ यही सितारे—'प्रगर न भडित मिलेन घडरा!' सिला रही हैं यही हिलोरें कि पण बडाना हुया बता बता!

धनर गरत ही हुमान होता, सुषर जगत में क्लि तहाती? भ्रमर बिरह ही हुमान होता, घडी मिलन की न बाद झाती! बता रहा है यही पपीहा कि प्यास में भी बडा मडा? निला रहा है यही मधुपरस—'तृवा बुक्ताता हुमा पेता चल

## एक नया इसान चला

—में नदरह दिससे

सब मनुष्य नया हो गया है । यह कष्ट सहन करके भी सिने बढ़ रहा है। वह द्रीह केवल प्रोह की भावना से नहीं बर रहा है। उसके सामने कोई साथ है, विमे बह महत्त क्षमना है, विसके लिए उसने नये विध्यकों। को माननास है।

मात्मा का ही विकास भागी भपने बाह्य रूप में तीक का कल्यान बना है।

मनुष्य प्रव प्रमुख है।

"पुरन के गर्व 'तूने दी पत्ती के निस्सीम भगन का विस्तार नार डाता । नसीं की नोक से बताब का समार गहन गर्म चीर डाला। बना सुन्ने मूचा के पता बेदी बना सर्चे ?" (नदेन्द्र)

पुरानो दुनिया को वह सीमित मानता है, तभी वह उने पूर्व नहीं मानता :

चो सिपाही यदि तुम्हे कुछ चाहिए तो चोंछ प्रपने धाव पर धतका हथा यह रक्त

इन प्राने गोरशे का कर न कुछ विश्वास में सब बींग के नीते समन्दर में समाकर बुबक्यां यत गए हैं साज शाहंशाह वन के ।

------

प्रतिक्तिवादारियों से उसे घृगा है । वह उन्हें राह का रोड़ा समस्त्रा है । भग्नी बगावत को वह फैना देना चाहता है :

"भेरे इस स्वर को समरातम के लोडि-कोटि उन पोडामी तक पहुचाता वो मेरी हो तरह बानी के लोने-कोरे में मधनार से बुक्त रहे हैं।" (डगेन्यनाम 'महर')

वज नितरर बेंने एक मोर्चा वना रहे हैं। वह धव एक ही बिराट धवर्ष के तिए उठ रहे हैं। या को द्वार व्यक्तियों को एक मृति पर ऐसे हो ताया करती है।

"में एस को बारा बहाकर क्लिक्साड़ी देह को ही बरेश कर रहा हूँ। मैं सक् के कर्म म कर से बस्ती बोडकर मानकी स्थानीनना के बीच बोडा वा रहा हूँ। मैं अन-बीबी हिंडो के मकुरों को बजाड़ा जा रहा हूं। बी क्लिके क्यांकित और क्लिके निटाए नहीं वा सक्ले, को मिरि हो, सेक्नि किर बीकर सबसे, कर्ने मैं जनर कहाड़ा वा रहा हूं। में मोबे पर सबाई कर रहा हूं।" (केंद्रास्ताय महत्रात)

हवपुन वह भरते को योदा हो समझता है। यो कभी वारम था, लुनि बाता यो, मावेश बवाता था, बह भव भगूमा बन गया है। वह राह दिवानेवाता बना है रह, प्यश्नय्य ग्री विक्षित वासना-सी श्रतृप्त कहीं ये दूर कमी रक-रक्कर किसीके प्यार-भरे गीत के टूटे-मे स्वर भूत से जागकर मानो तभी तो जाते हैं। चारनी रात है चुपचाप सर्मोप्त मीहित प्रचल कियत के ग्रारकेव में सीयी, खोरी, श्रदृभ स्वप्न में, जेसे तुम हो, कभी चुमचाप ग्रनायात सेरी योद में सो जाती हो

—नेमिचइ जैन

चित्र घवदय सडे होते हैं, परतु भवतोगत्वा वावावरण ही सामने आता है, वयोंकि एक के बाद एक छवि जल्दी-जल्दी आती है जैसे कवि सबका धकन कर देता बाहता है। जिन कविदाफों में चित्र की एकारमस्ता होनी है उनका प्रभाव संधिक मन्द्रा पडता है, यद्यपि बात उनमें भी प्रेम वी ही होती है। और छद को गीतासकना के कारण स्टटर-सटर उनमें नहीं होती.

हे किरण की सहज बिल्लार्य ध्योम में
चाँव खेता रहा चाँदनी की तरी
झोर भुज - पाश में तस्वारों की की
भूमि पर गीत गातो रहीं बल्लारी—
भ्रू तुम्हारी उठीं, इस्प्यु जिच पया
भर गई सब दिशाएँ मदिर हात से
प्राण थेरे रहें द्वाप की सला

--राजेश दीचित

चांद एन खिवैया वन गया है भीर किरनों की विन्तयों से पोरनों की नाव को से रहा है। बहुत सुदर करपना है। किर चौननों में विनासपक्ष जाग उठता है धौरें कि को सूचित को प्राप्ति होनी है। ऐसा सतीय इनने मुखर रूप में कम मिनता है, नशींक प्राप्त कीव दर्द की माहें तो सेते हैं, पर यह साफ-साफ नहीं कहते कि उन्हें किसी की से ध्यार है। कम देने में एक स्वस्थता होनी है भीर संप्य्त हों यह "रानी' वाला गींत नहीं है। ऐसे गीत जो स्नेह की नृष्ति देते हैं, उनकी तुनना में वे भींत रखे जा सकते हैं जिनमें परेत जीवन की हाथा मिनतों हैं।

> रैन हुई जीवधारी! चाउर चौक पुराए मैंने

पय का यही प्रभिमान कर ले।" (कचन)

पय का श्रीभमान क्यों <sup>7</sup> क्योंकि श्रीकंचन वनकर जीवित रहने में कवि को कुछ मर्यादा दिखाई नहीं देतो। हम जीवत मानव को देखते हैं।

"हुमी श्रकेने नहीं, सारी नृष्टि यहा तथा करती है। एक दो बूद नहीं, सावन-भादों के जनमर उनड़ने हैं। जबतक बूद-बूद रिव मो ज्वाला पर श्रपना जीवन तौल रही है तब कर तो सावन-भन ऊनर को उनर करने से चूक नहीं सकते।"(रिवमङ्गर्वाहह 'सुमन')

पथ होना चाहिए। उसके बिना लक्ष्य भी क्या कर सकता है। कवि कहता है

पय की पहचान ग्रंदि पगको न हो

तो विदारासस्य श्राबिर क्या करे। भूल-शूलो का विद्यायदिजाल हो

तो चरण का बक्ष प्रासिर क्या करे?

हाय में पदि तोडने का बल न हो

भाग्यकालधुक्क प्राखिर क्याकरे!

हो हुदय में घोर तम लिपटा हुआ

। हृदयम घार तमालवदा हुग्रा तो जोलायक्ष ग्राखिर क्याकरे?

—शिवशवर क्रि.

विष्वाध ही मारे सत्य का प्राचार है। उसके विना कुछ भी नहीं है, क्योंकि दृष्टि-कोण उसपर ही तो याश्रित है। मर्नुष्य कीन है। वह तो बहुत व्यापक हो गया है। वर्द को बजह में उसकी सना बहुत ही सार्वभोम और सार्वकातिक हो गई है।

"सीने में तीनों लोकों को पौर निए हूं। मालों में सावन-मादों को तस्वीर निए हुए हूं। मैं विष हूं, मानव-सस्कृति का निर्माता हूं। मैं प्रपत्नी वाणी से मुद्रों में प्राण जमाता हूं। यहा तो बेख एक दिवस ही मुख्य वनाता है। परतु मैं विश्व नया समार बनावा करता हूं। इनियस से भीन जीत गई, लेकिन कि में में ही । कि ने में र जाता है परतु कविता कभी नहीं भर लाता है परतु कविता कभी नहीं भर लातों। वृत्तम्बाता । तुम कि न मानान सरीदोंने ने मानू देनेकर कथा भीते मान सरीदोंने ने मानू देनेकर कथा भीते मान सरीदोंने ने मौतु मोनि के हिम्म दीवानों। वया तुम चादों के दुक्ता पर ईमान सरीद लोगे ने मैं उन मिताब सत्ताधारियों पर हमता हूं जिल्हे नादिरसाहों प्रतिविध में पर दिस्सा है। देनिया विश्व को जीती कि ह्य बमान के कथी पर ही भूषण की जीती उठती थी।" (रामदुमार चतुर्वेटी)

विका गौरव धरनी चेतना को हो नहीं, सामाजिक परिस्थित को भी उठाना पाहता है। इसके लिए वह धदता देने को भी तैयार है, "ग्राब इनना तप कि पत्थर पियल जाए। ज्योति तम को भेद दे, किरलें निकल शाए। प्रद मरण का प्यार मी विकल बयो जाए ? नाधना ही निदियों में बदल जाए।" (मुमिया कुमारी मिन्हा) मुख्य बांदनी सौरस-भरी जवानी में माती थी।
युपने-चुपके प्रथता कोई प्यार तिये प्राती थी।
नयनों हो नयनों में क्सी हुई प्रनोखी बात !
प्रनायास ही ब्रिट्सन करता रहा क्सीका यात !
तहरों को स्वप्तिल द्वाया में यह किया सौत !
हिन्दु किसीका पाय किर भी दनुक-मुनुक होती थी
मेरे योती पर कोई शर्माया सारी सात।

--- च्यदीय

तारों ने स्विन्त क्षांचा में दुनिया सो गई, धौर किलोको स्नुक-भूनुक पायत -वनती रही। धौर सारी रात वर्ड़ देख-देखकर पदा मुक्कराता रहा। पुत्रक जब नोई नाम नरते हैं तो सम मने हैं कि जनने रहते किमोने ऐसा नाम निया हो नही। जबानी है ही ऐसी, कि उत्ते हर पुराना भी नया हो लगा है। विचारा पाँद भीर करता भी क्या ! दिल के तारों पर सारी रात जाने नितने लोगों को वह गाते परते कि मुन चुका है। इस मोई पीनो पर सारी रात जाने नितने लोगों को वह गाते परते कि मा मा मुर्च है हिन्न कि न न मान रम बात पर नहीं गया निकाम क्यनित हो रहा है। बचा गीत दशो तासक थे कि उननर क्रियों के मा मातों और कोई दूर होने के कारण चुप्ताय मुस्कराता रहना ! मात्मस्थोहनि की मैं तो सनीसी बात है ! तेकिन यौजन में मनुष्य यह कहीं सोचता है कि उत्तमें विनना ऐसा है जिस्सर लोग मुस्करा करते हैं। इस दृष्टि से यह क्विता हास्य भी कातती है, क्यू वो दुक्क होगा मीर समान मोगी होगा, वह तो बटी लबी मारे मरेगा ! क्यू जब व्यक्ति भीर मागे बड़ना है तब उत्तमें युटन पंता होती है मोरे ऐसी पुटन कोंकि उसे भीतर हो मीतर साने सपनी है। ऐसा हो बिब सबत ने विवा है

इत्ती, विश्वे पहर की वांदरी-सी सनमनी हूँ आज मेरे प्राण पर कैसी परन मंदिराम दिस्ती हैं साज मेरे प्राण पर कैसी परन मंदिराम दिस्ती हैं को साज तन-पन पर तृथा की बार पिरती हूं सहनो साजिशी-सी में उज्जवती तीन होती हिस्स दिएल बैंकर में दूषी, सिहरती सुधि पिरोसी साथ मेरे दूषने मेरे क्सोंकी खांद-तारे जो को पे मार्ग-दांक इस समापति के हिनारे जो को पे मार्ग-दांक इस समापति के हिनारे

लटित सस्कृति को ग्रयना पद-निर्माण चाहिए। जीवन दिखर भी रहा है श्रीर निखर ु भी रहा है। एक को प्राण ग्रीर दूसरे को त्राण देना है। जीने को यह लोक बना है ग्रीर मरने को परलोक । तुम्हे और कितना प्रमाण चाहिए कि तुम्हारा इतिहास कल्पित है।" (उदयशकर भट)

बहुतो नया दे रहा है सब कुछ। उसमे कोई प्रश्न कर बैठे तो कवि उसे कैसे स्वीकार कर सकता है। क्योंकि सन्तय ही पराजय का मूल स्रोत है।

इमीसे कवि मानता है

"सूनो ! मृत्यु का ग्रवगुष्ठन खुलने से पहले ही जीवन का ग्रीभमान काति करने-वाला है। बासितों का रक्त एक दिन रम दिखाएगा। नव पापों के दुर्गम दुर्ग विखर जाएगे। सभी विरोधाभाग एक दिन टल जाएगे। यह जीवन का विश्वास टलनेवाला नही है।"(कूमार)

विस्वास भी कितनी वडी चीज है। यह किसके अवर्गत का सकता है। यह प्रेम के भीतर की बात है

> श्राव तो पतवार है, मभधार है, तद का तकाजा। फल जीवन का चढा कल ग्रवंना में भी करूंगा। द्याज भी तो मीत भिक्षाको खडी दामन पसारे सांत देलं. कल मदद की याचना मंभी कहेंगा। दर की हद भी हई क्या, ब्राह भरता है श्रभी ती ले शपय इनकार की में चाह करता है सभी तो भांक जाती जब नयन से प्राण को दनिया रुग्नांसी ग्रीर जीने के लिए सी बार मरता है ग्रभी तो श्राजती इस भूस से है हर कदम पर हार मेरी जीत लूं तो स्वगं की कल कामना में भी करूंगा।

<del>−</del>इमक्मार तिवारी

प्रेम ही सबेदना का प्राधार है। वहीं स्वतंत्रता चाहता है, "मानव वहीं है जा सिकं मुक्ति मे ही जीना जानता है। जो देश के लिए प्राण देना जानता है, जो मानव-पर्म-भाव को ही मानता है, वही गानव है।" (तेजनारामण काक)

देश तो केवल एक ग्रभिव्यक्ति है। उस क्षण की मर्यादा है। ग्रन्यथा वहा ती ग्रीर भी व्यापकता है

"सामों में साथों की बरवाद कहानी कब तक पीड़ा का तील करेगी? कब तक मिटी जवानी सामो पर मजबूर प्रपनी ही सास लिए चलनी रहेगी <sup>?</sup> यदि तुमने प्राणी का विस्वास तोड दिया तो वह जिंदगी में ही उठ जाएगा। सब, सब यूभमें जो मुभको गानो ब्राहमी को गफलतो की नींद से जैसे जगा दें वाल देशी बरा मत मानो कि मुठा है तुम्हारा प्यार---

—गोर्पा उपन गोरोजा

यह है वास्तविक प्यार । वह केवल व्यक्तिपक्षी नहीं है । यो धर्म और रित के मिलन से 'सानवीदका' का जन्म होता है।

"जो पीडियो मे एक्स का मचार कर रही है, से तुम्हारे प्यार की कडिया अमर

होगी।" (रामकुमार चतुर्वेदी)

इसीलिए कवि ग्रव प्यार की परिभाषा बदल रहा है। मनुष्य का स्वभाव है एकरसना से अपने मन को मिद्ध करना, जैसे धानुया पारे को मिद्ध किया जाना है। उसके द्वारा मनव्य व्यक्ति, समाज श्रीर चराचर का पहले मन में स्पट्टीकरण करके एक सामञ्जस्य भीर तादातम्य बैठाना है। उमके बिना उमे सब कुळ मना-मना-मा लगता है। वह जैसे दसरों का न्याय्य नहीं बना सकता।

इतिहास का विशाल विगत रूप देलकर वह हार नहीं मानता, नया ब्राह्मान देना है

"मदियों ने मरघट की लपटें अग में उठवी आई है, अब मरघट को मधुबन के गीत बुनाने हैं।" (बलबीर रत्न )

मध्वन के गीन मरघट को कभी नहीं बुना पाए थे। पहले मध्वन ही मरघट में जाकर मोया करने थे। यह है नये काद्य का स्वर। वह कहता है

> निरादत सत्य का तुपान ग्राता है तरगी के चरण थामे गगन की देह दलती है तडित की पसलियो में पिस घरित्रो ट्ट गलतो है, दिशा के घलक मागर में भजगो-से तडपते है कि तम का देत्य चढ बैठा सजन के ग्रन्त के क्षण में मुकी ग्रालीक-माला पर।

> > –भारतभूपरा श्रेयदान

इमीलिए वह नई उपमाए दालता है ग्रीर इसमे वह चमत्नार पदा कर देता है।

ग्रमिब्यक्ति ग्रीर विधान

में हो मन सोमिल रहो, जीवन का प्रान्द भी लो। पर वह यह भी जानता है कि वापना से तृष्णा का प्रत नहीं होता। सारी रात चुम्बनों से भीगा चौंद खंदरे भी मचु की प्यास ही लोजना रह गया। कवि नहीं समक्ष पाता कि जब क्या वाकी रह गया, क्योंकि वह तो तुप्त हो चुका है 'पर यह समस्ता है जो क्यों प्यासा ही है

> काधीरात वई, प्रामीरात रही । सांक सो गई दीप जलाकर जागी नहीं प्रभाती जल-जल प्रामी रही गगन पर तारों की हर बातो झभी जगत के बेमुप नपनों में है स्वप्न क्रपूरा मक सैंदेशों में प्रिय तुम तक

दलता मीरव चाँट गात में

ब्राघी बात गई, आधी बात रही !

х

निशिक सपनो में अम्बर पर चली बाँद की डोसी पर उस पथ सक पहुँच न पाई किसी प्रात की रोसी गोतों के सब दूस सजीले तुम सक पहुँच न पाते, दर पिया के देश प्रदय की

दूर पिया के देश हुदय की कुछ सीयात गई, कुछ सीयात रही।

—जगनप्रकारा चतुर्वेदी

जिसकी महलो की दोवारें
 उसी खुन से सनी पड़ी है।
जहां जमी महस्कित के ताजी
पर रविन्त मारकता तिरती
एक अन की स्नेताडाई पर
बोमिल प्रांखें जहां विरकती
इसी महल के तले खड़ा
दम सोड रहा इन्मान भूख से,
परवर भी देगा जवाब,

–मृशाल

विस्तव । इसका उत्तर है विस्तव । एकदम की अकओर जो सब कुछ उत्तर-पुतर दे। पुराने को उताड दे। अपने पौरप का भीम पराश्रम प्रतिब्बनित कर दे। नई पनित जना दे। वह क्टता है

"कवि कुद ऐसी तान सुनायों कि जितमें उथल-पुथल मच बाए। एक हिलोर इयर से खाए, एक हिलोर उथर से झाए, सबनास छा बाएं। धाग बरसने लगे। नभ का बक्त फट बाए, नारे टूक-टूक हो जाए।" (बालहृष्ण सर्मा 'नवीन')

भीर प्रव हम देखेंगे कि इस ग्राह्मान को सुनकर नई चेतना उस विध्यस से नई मुद्रि की किस प्रकार करपना करती है। विषयवस्तु नही है। सजाव-सँवार से इनकी प्रतिभा में सर्जन भी कम ही है, परन्तु फिर भी कुछ रचनाए इनसे अच्छी भी निकल गई है, जिनमे बस्तु भी है। प्रयत्न करते रहने से पा ही जाती है। ऊपर की एक कविता इसीका ग्राकर्षक उदाहरण है। प्राय अजेय की कविता उसके उपन्यास 'दोखर एक जीवनी' ने दग की ही होती है, आत्मपरक ही, क्योंकि लोकपरक दृष्टि सहज होती है जो उत्म की तरह फटती है, जबकि आत्मपरक में वहत चेष्टा करके लिखा जाता है और सन्दों के चमल्कार को अधिक प्रध्य दिया जाता है। टी॰ एस॰ इनियद का प्रथम लेवेवाने ये लोग इसियट से कोई समानता नहीं रखते. वयोकि जममे जो 'कैबोलिक मानववाद' है वह इन लोगों में केवल 'व्यक्ति वैचित्र्यवाद' मात्र है। परन्तु उपयुंक्त कविता इसके अतर्गत नहीं बाती। चाँदनी की सुभ्रता जैसी यहा है, वैसी ही एक और स्थल पर हमें मिलती है पर दूसरे ही दग से

शशि-शारव - काश्र वे शारव - श्रश्न ! हिमधवल कपोतो-से मजुल, ग्रति मदल तुल के फाहो-से या नभ-उर रह-रह मंडराते वर्षा को शेव मधर साथ से: चनले - चनले विखरे - निखरे दादा-शरद-शभ ये शरद-सभ । मस्तिक हृदय पर छा जाए वह प्रखर प्रखरता कब इसमें ? नयनों में सहज समा जाए वह सहज सुधरता बस इनमें. सिध से उभरे, निज सुधि विसरे शशिकारद - सुभ वे शरद -अभ्र ।

शास्तु के मेघो का वर्णन कर रहा है कवि, परन्तु उसकी उपमा वह शशि-शास्त शक्त से देता है। यहाँ शिव एक तुल्लीय है जैसे शिव का अट्टहास । सारा चित्र अपने आप मे प्रपुण है. व्यर्थ है, यदि 'शिन-शरद-शुभ्र' निकाल दिया जाए। कविता मे चिलकती धर मा जाएगी, जोकि सरत की विशेषता है। शरत शशि को ही मुख तुलनीय व ने दृश्य को एक शीतल स्निन्धता प्रदान की है, और वही इसका प्राण है। प्रय चादन मर्त स्त्री वनती है

तब बसन्त की राका रजसी पहन चाँदनी की चोली, धोढे धम्बर पट गोरे लाजारण गालो पर कतल केशों को बिखराएं जैसे स्वर्णिय स्वप्न-लोक को कोई दस्त्रन भाँका करती धपने अँचे राजमहल के वातायन से - नगर, बाम, बन, सबकी ही और उसकी दृष्टि गई है। और साधुनिक जीवन के परिवेद में उसने अपनी विवदानाओं को काफी गहराई में टटोला है। और उसने उस वेदना को वहीं हो मुक्तमारता से उडेल भी दिया है।

'शहर की रात' में चंदा छगा। नये कृषि ने देखा। अपने जीवन की विवसतासी स्रीर सुटन को देखा। विज्ञान के चरणों को भी उसने निहारा स्रीर वह कह उठा

रात हो गई।
जले राह पर कड़े लीह बाम्मो पर लड़के लड़रू।
वमक उठी शहसा सड़कों पर
बजती हुई मोरदों की गोल उल्लूई ग्रांखें।
किसल पड़ी किरणे प्रकाश की
कोलतार की सड़क हो गई गोरो।
सट्टू जलते रहे।
परकरों पड़ी बामकतों रही
व बिजलों फैल कर सकी
और इसोसे दूर गाम का पूरा-पूरा चांव

—नगेन्द्रक्मार

पहले तो मोटरो की गोल उन्लुई ( नया शब्द ) बाखो ने उसकी प्राक्षो की विध्या दिया। और सरकरी नैम्य की रोतानी के कारण माकाश का बदा उसे ऐसा दिया, जैमे मुह लटकाए रह गया। यह केवल उक्तिवैनिच्य के शन्तगँत धाने-वाली रचना ही नहीं हैं। इसमें केवल धाधुनिकता का गर्व ही नहीं हैं। वरन् इममे मनुष्य के नये जीवन का प्रतिविम्य है, एक नये वृध्यिकोण का प्राप्तास है, जिसमे वादिक जीवन प्रकृति के सहन मींदर्व से दूर होना चला वा रहा है। वह सब बुद्ध पर ह्या जाना पाहता है। विश्व उसकी श्रुमुल को कोमलता विनय्द होती वर्जी जा रही है। मानो यह विकास गुतान के पूलन मा सहन्व केवल इतना मानेगा कि उसमें में इन निकाला जा सकेगा और वाकी सब वर्ष्य होगा।

किंतु मनुष्य ना हृदय यह स्वीकार नहीं करता । प्रकृति से मनुष्य सथर्ष इसिल्ए करता है कि प्रष्टित को अपने लिए ऐसा दना दे जो उसे मुख दे। जिन पत्र्यरों से वह पर बनाता है, वे भी तो प्रकृति के ही थग होते हैं। जिस बिजसी को उसने काच में धेर लिया है वह भी तो वस्तुत एक प्राकृतिक वस्तु है।

भीर काव्य जीवन की एक प्रमुभ्ति ही नहीं, वह तो उसके जीवर की विभिन्नता से उत्तन्त सनुमूखियों का प्रसार है। व्यक्ति सकको देखता है भीर उस सबका उसपर द्या गई प्रांधी विरे
बादल घने धाकात में
धूल के तधु पृष्ठ मोले
फूल के इतिहास में
बान की चित्रपारियां
चडने सार्गी मधुमास में
धान की विद्युत असी तब
भारत में
साधनानी जा रही।

—केदारनाथ निध 'प्रभात'

ऐसे समय मे चाँदनी का अपना महत्त्व नहीं रहता। वह प्रकृति की एक त्रिया-मात्र वह जाती है और कवि-मानस उससे प्रभावित नहीं रहता। उसकी दृष्टि केवल दार्तीनक वनकर रह जाती है। यह वित्र गहन भी नहीं होते, यद्याप होते हैं गभीर। यदि यैंग से उनपर वितन किया जाती हैं ने किया हो जाने पर वह कतिता नहीं रहती गहराई तक प्रभाव डानते हैं। कितु इतनें। किया हो जाने पर वह कतिता नहीं रहती काफी हद तक स्पूत है, जो गहराई को एक्टम केवा हुमा दर्मा। वेने यह सहज का मार्ग काफी हद तक स्पूत है, जो गहराई को एक्टम के असता करके रख देता है। इस का प्रवास तेकर नवनों में चौदनी मोतियों की हैंसी-सी वित्रेर देती है। तब तून्य सब्द बन जाता है, किनु कि ने यहां अम होड दिया है। हम कह सकते हैं कि सब्द भून्य वन जाता है और व्यापक रूप में सब्द एक सिम्बलिंग है, तो सुन्य उसका स्वरूप। इस प्रकार दोनो एक हो ठहरते हैं। सौंदर्ग की प्यास दोनों में है। चादनों के उपरात दूसरे प्रकृतिरूप को वित्र सामने उपरिचत करता है। सौर चाँद जब जीवन का साथी बनता है तब वह बहुत हो सीसा वित्र सामने उपरिचत करता है। हमें स्वरूप भी है।

> मेरे बचपन का साथी यह चंदा मामा मेरे ब्रांसू देख जिसे मी निकट बुलाती तुम कहते हो किसी सुबरो-सा सुबर है जिसका यौदन चुदा निशा नभ में मुस्काती;

मुक्ते याद है जब मेरी बुतसो-सो बोली रोड चाँद से घरती पर झाने को कहती तब मेरे नर्हे हाचों मे देकर रोटो मुक्ते घरा का चाँद दिला माँ पो बहुसाती प्रोहरूर चाँदनी रात का आवरण भूमि को तेज पर सो गए प्रतिकश सिषु को गोद में सो रही है छहर पूत के धंक में तो रहा है अमर खाँद सो भी रहा हूर आकास में लाज भी सो रहा है अगय-थादा में निंद है स्वामिनी दास है जायरण चेतना बदिनी, मुक्त है जायरण

→सपत्रदत्त नित्र

ित कु गोर में सहर हो गई है, और भूमि की सेज पर धूर्तिकण चादनी राव का मायरण घोडकर सो गए हैं। बाज प्रणय के वारा में सो गई है। जागरण दाव हो गया है, क्योंकि नीर स्वामिनी है। चेतना बदिनी है, परतु जागरण मुक्त है। यह कैसा विरोधाभात ? यहीं कवि का चतरकार है। गह बहु जागरण नहीं है, जी प्राप्त खूतते में मिलता है, क्योंकि बह तो दास हो चुका है और उसके साथ ही चेतना भी बदिनी हो चुकी है। यह जागरण है नीर के भीतर का जागरण, जिसे कहते हैं स्वप्त, वह प्रवस्था जब सीते हुए मी प्रणो यही स्वनुभव सरता है कि यह जाग रहा है।

लेकिन प्रव चार्य केवा लगता है ? रेतमी, गीला, मुनहरा ! मर्थान् उसकी स्निम्पता, उसकी कमनोयता आगे प्राप्ती है।

> रेप्रामी, गोला, मुनहरा चाँव घरती रर उत्तरना चाहता है। सीपुनी रपतार से अपभीत पृथ्वो आगती है। प्यार का घट रिवत, मन के स्वयन के घनस्थान सारे, कैठ को अजबी दुवहरी में, विजन की डूनरी के देव संदर को कटी-मैंसी एयना से उठ रहे हे सुसकर।

विजन की कुमरी का प्रयोग राजस्थानी है। उसकी क्सना करने की किसी दूगरों के देवसदिर को देवना सावस्थक है। त्यास में सप्ती कल्पना घोर वास्तविकता का समर्थ बल रहा है। क्लज बार-धार मुख्यता को घोर से जाती है, किंतु ययार्थ सिर पर ह्योंडे से मारने स्वतता है। विजना करण विद्रुप हैं। तमी तो किंव भी नीचे उत्तरकर देखना है

मास-भग्नाहोन, सकडो का बना मनुषुत्र पोता बोडियां प्रापे जले ब्रद्धे उठाकर हो रहा निर्माण, भव निर्माण, सारे विश्व में भव-दव-तर का दोपक
फंता प्रकाश प्रपत्तक ।
धालोकित धरा-गगर
विक्तित है चिनन तथन
सूक स्टे हैं तर-गरन
किराने की पहुने कक !
फोटे पढ गये नखत
इन्दु-व्योति धत-विक्षत
सकत व्योतियाँ धानत
कम्पत तम-उर घक-घक ।
विपत्तव दोपक नगमग
धालोकित नवधुग-गय
दोष जले ज्या-दंग, नव्

—अनन्तकुमार 'पाधारा '

विष्यत के दीवक के जल उठने पर ही नवपुत का मार्ग झालोकित होगा, जन-जन-मन-दुग में तीतला हाएगी और मह किय को नामना है कि यह दीवक पुन-पुन तक जले । कियु इस गीत की धरिष्यां निर्मात के ताजनीतिक रूप तक ही सीमित नहीं है। यह सास्ट्रितिक पम भी लेता है और प्रहृति उठका प्रतीक वन वाती है। वस्तुत मन-द्व-तक का दीवक भद्रमा नहीं है। वह तो इस नई ज्योगि के धागे सत-विस्तत हो गया है धीर सकल ज्योतिया सिर मुचा गई है। धक्तार का हदय पन-पक कर रहा है। प्रमिव्यक्ति ध्रायादारी प्रव्यावनी में पस्त है, परतु वस्तु उतके बाहर की है। मैं जब प्रायावारी कहता हू तब मेरा पर्य यहा उस तीनी-विद्याय से हीजत मे ऐसे सम्ब रसे जाते हैं बो केवल व्यापार्य में बचना मर्थ प्रवट-रसकें। धन्याय ने ठीक तथ्य पर नहीं ले बा सकते। यहा में सकतारें को बोज वरके प्रायार्थ रामचन्द्र युन्त की भाति पिसी-पिटी

निरासा में चरा का दर्जा फिरता है। "बरो चाद नंब बन गया, चौदनी क्षार वन गई। मौन मरण नी बीही में तहरूँ बयो सो गई ? जिदगी की जीठ क्षण-मर में हार बचो बन गई ? मो जिदगी। मायो मन। छाती में सब भी तुम्हारा प्यार जीवित है।"

(राजेन्द्रकिशोर)

पराजय में उस्टा ही सगता है सब । परतु सुधा यब चाद से गीत में प्रधिक मानी जानी है : "प्रणय नो मधुर रागिनी मिल गई है, जिस तरह स्वातिक सीप में कहाती नयी जिंदगी कह रही है पुरानी विगत स्वप्त में बह रही है।

मनुत से बड़ा सत्य कोई नहीं है मनुज से बड़ा तथ्य कोई नहीं है समुम्मत जीवन गरल थी रहा है इसे मुक्ति दो, यातना से बेचानी, कहां महित इसकी, मभ्येयह बतान्नी।

— उदयशंवर मह

चारो कोर चाइनी छिटको हुई है। पूजिना मुखद गीत या रही है। मनुष्य भी नये भोड़ पर मा नया है प्रोर पुष्पनी चेनना में उनका सब नवर्ष हो रहा है। वह किसे मुला दे प्रोर चिमका स्वागत करें। क्यारयांच्य है ? क्या प्राप्य है। नई जिंदगी बोल रही है बोर दुरानी जिंदगी स्वज्वन हो गई।

प्रविश्वहिष्कार कर नई मान्यवा को स्थापिन करता है कि मतुष्य में वर्ड कर कोई मत्य नहीं है। एक दिन बड़ीदास ने भी कहा था, "शाबार उपरे मानुस सत्य, ताहार उपरे ना ।" ने या किय भी गहीं कहना है —मतुष्य से बड़कर मत्य ही नहीं, कोई तथ्य मी नहीं है। है वोई से मुस्ति नहीं है नहीं की मतुष्य तो जो हुख वानता है वर अपनी श्रे बुद्धि ने व ? यत यह जान उनीको देन हैं। हमारे सीमा ही ऐसी है कि हमें सभी नह जने ही मवॉनिर स्वीनर करना पता है। ब्राव को विषयना ऐसी है कि जीवन को विषय ही पीना वर रहा है। इसे दिमी प्रकार बचाना होगा, इस यावना से मुक्त करना होगा।

मन्त्र मानव के प्रति मनेदना एक पश है। दूसरे पक्ष में कवि यह मुलक्षाने क प्रयन्त करता है कि उसका अपना जीवन इतना दुवी क्यों है ? उसे सुदरता से प्यार है फिर मी वह मुली नहीं है। मन तो यह है कि वह सरिय के रहस्य को नहीं समस्ता, स्रोन इसी कारण वह यह भी नहीं मीचता कि वह तुन्द्र प्रत्य है, बल्कि मदने वधा हुछ नहीं है

मुफ्ते नुसार्ता गीन चाँद की उनती-उनती प्रीत का समक्ष न पाना भेद चाँदनी के मयुगय सगीत का,

सुनते हैं साफर से उठते भीठे-भीठें गान भी क्या जाने क्या बात कि मुभकों मिलते हैं तृफान ही, ग्रहरार बोलना है—सुवा तो है, पर मेरे गीत मे हैं। माम्रो समर के लिए तत्पर हो जाम्रो ! दिल जिसे ईंदर में विस्तास है, यह वहना है

यह मधुर यामिनी, चंत चाँदनी टेर रही है हार - हार खोलो किवार, खोलो किवार।

Υ

दो घडी सुम्हारे लिए धाज प्रभु ने खोले हैं स्वर्गद्वार ।

-- नेमरी

इन जीवन में परमात्मा ने सब तरह के दृश्य तुन्हें दिए हैं। सीदर्य तुन्होंरी उदात भावनाए जपाने के लिए हैं। उक्की उपेशा यत करो, तुम कुछ भी करना चाहते हो, उने प्रदर्श करो, शिंतु कसी भी यह मन भूनते तुम नियामक नहीं हो, चौर से सिरजन वरनेवाला एक भीर है, जो तुमने भी ऊदा है। तुम निधित्त हो, मने हो अपने महानार में 'दुमें देखने से इंगर करने। उसकी छांत सत्तमुन कहीं पिषक सम्बन्ध है.

तयो है सुधि की रैशम डोर भूत रहा म्रांतों के पनने में मेरा चित बोर सिथ-सी उसकी स्वष्त - हिलोर---

⊸दे मरी

प्रभु नो बात इस युग के कवियों भे नहीं के बराबर पाई जाती है। यह नहीं कि सब ही नास्तिक हो गए हैं किन्तु बब नये-नये उपमान रखे जाते है। नये-नये प्रतीको से प्रभु नो याद दिया जाता है।

इसमे देश, जाति श्रीर प्रकृति सथना भी समन्त्रम हमे कही-कही मिल जाता है।

राजिसवपुरी की एक विवता में ऐसा चित्रण बहुत प्रावर्धक हुमा है। नारी-हृदय प्राय ही समर्पण में सीदर्प देखता है भीर भारत में तो यह विदेशवा है। अर्चना के जनजान इसी दृष्टि ने खले जाते हैं।

चादनों सा गात लिए धरती हसती है। मारत मुनन हुया है। उसके बानद से हुदय सराबोर है। पृष्यों घौर घावास दोनों में ही दीवक जल रहे है। घाकास के दोवक नक्षत्र हैं, जो यर्चना के जसजान में दिखाई देते हैं। परतों एक सीप की तरह अपने में मोनी दिवाए हुए है। दोमुदी से पथ लिय गया है। यह वितनी मनोहर अभिव्यक्ति है।

देशभिन-मत्रधी विश्वता में चादनी वा ऐसा वर्णन हमें अन्यत्र नहीं मिला है इसलिए भी इन विवर्ता वा प्रवता महत्व हैं। भारत, 'दीव बाला देश' है गुनगुनाती भी हवा चुप हो गई जावकर तकदीर जैसे सो गई मुद्दतों के बाद पाया या जिसे चीज झालोशान मेरी खो गई

यम की दुनिया का यही पंगास है हर सुबह के बाद होती शाम है हर कदम पर मुश्किसो का सामना जिदयी में किर कहां श्रास्तम है।

—नर्नेदेश्वर उपाध्याय

स्रवेशी की एक प्रसिद्ध कावता है जिससे पारवास्य वेदना ने पुरारा या—
यदि हमें (भेड पर चडती गिलहरी इत्यादि को ) खडे होकर निहारने का समय
हो नहीं है, तो यह चिन्नाद्रस्त जीवन है क्या ?—इसी प्रकार हिंदी का कित भी प्रेम
भीर हों नहीं है, तो यह चिन्नाद्रस्त जीवन है क्या ?—इसी प्रकार हिंदी का कित भी प्रेम
भीर हों दर्य की वेदला है परंतु उसे परिवर्तन भीर वैपम्यो ने व्याकुल कर रखा है।
उसके जीवन में कहीं भी साराम नहीं है। पुराना कित कभी ऐसी परिसारों में नहीं पड़ता
या। वह समाज को सादर्य देता या, या फिर वर्गी प्रीर एक प्रकार से लोक को विलास के
योत मुताता या। 'प्रताद' ने उद्दें के दू पप्रतीत्य को प्रस्तुत निया या। उसी से यह व्यक्तिन
पस हिंदी में उसर्या चला माया। भाव भी यह समस्या है कि काव्य निवि के बीवन का
प्रतिय्व है, उसके व्यक्तिगत जीवन की सनुभूतियों ना सकत है, या वह समाज के लिए
एक प्रराग है। यह इन्द्र ऐसा उलभा हुमा है कि परम्पर रूप ने दोनो ही पक्षों के अप्योगाधित रहने है दोनो के वीव नहीं एक रेखा नहीं खीची वा सकती। भूरोप भीर विद्यासया
प्रवेशी काव्य में दिवीय महासुद्धीपराग के काव्य में व्यक्तिया को अस प्राय किती पाप
की वरनुपरस (यावजीवटर) दृद्धि परकड़त उनके द्वारा धारम्य रक (सवजीवटव) अनाकर
प्रस्तुत किया जाने सता है। हिंदी में सभी तक यह रूप मुसर नहीं हो सका है। यहा
प्रयोगवार सभी मानसिक उनकातों में ही उतने वी चेद्या में रख है।

'गिशिर की राका निया' इसी उलभन का एक सम्द्रानी। उदाहरण है। उसने सब बुख देखा, नारा धतीत। घोर उसे नगा कि बैसे उसके लिए प्रव बुख भी रोप नहीं बचा या। उससे पहले ही कवि सब बुख लिस चुके थे

बना है चांदनी सित मूड वह माकाम का निरविध महन विस्तार मिसिर को राका निसा को दाति है निस्सार ! दूर वह सब साति, वह सित भण्यता, वह सूच के सबतेव का प्रस्तार इयर केवल मिसिनिताते चेतहर, दुयर नुहासे को हलाहल-स्निध मुद्धी में शतभ - सा उन्माद सेकर चूमने नस-न्योति तेरी मिट चता वह प्यार तन्मय । चरण में उत्सर्गजीवन-दान तो है।

—राकुनावा रेहा

व्यक्ति को इतना महत्व कांब्य में पहले नहीं मिला । पहले किन को बाह्य आधार मिलता था। घव उसे स्वय ही धपना आधार बनाने को मजबूरी है। यह जिम्मेदारी बहुत बड़ी या पड़ी है। "मैंने तो तेरी एकाकी भिन्न मागी थी। पर उस एकाकीकन ने जन को सारी सीमा नाप डाली। वह तो यपार सिन्धु बन गया और मैं उतराती फिरने समी।" (विद्यादती कोकिस)

इसीलिए यह सकट घाया है कि क्षण में कुछ भीर दूसरे ही क्षण कुछ भीर दिखाई देता है। इसीसे चमत्कार भी श्रपना सबल खोज पाया है।

नाव्य नी मिठास केवल चमत्त्रार में नहीं रहती। ग्ररूप को विचित्र ग्ररूप के भाष्यन से चित्रित करने पर काव्य उज्ज्वन हो जाता है।

जहां चनकारमात्र ही प्रमुख रहते हैं, वहां भाव फरुसोर नहीं करते। केवल प्रकृति के क्षेत्र में जब उनका मन सहज रूप से मिल जाता है, तब वे ऐसे नहीं रहते। सपुनिवता की बनावटी लगाम डीसी कर देने पर उनकी भागा का प्रस्व हिरत की तरह नहीं चलता। ऐसे कवियों को चुनोती दी है गिरिजाकुमार ने मौर कहा है

 शुंचि शुभ्रवसना स्वगं की उत्तरी परी, नीरव नृषूर योवन मधुर, कर्पण प्रवृर सहसा उठा वज विश्व-बीणा में ग्रमीखा कीन सुर नीलाम नम हरिताम मु किस मदिर मधु में है सना !

.

यह बासना की लाश पर सहसा रखा विसने कफन हैंसता कभी जीवन हमारा, श्राज ज्यो हेंसती हिना

— स्नुतार निवारें
प्रोह 1 कैसा उल्लाम है। अब शीरसामर उमडता चना भारहा है, मह क्या
चादनी-भर है? सर्ग से परी उतर रही है। इसीको आनद की तृष्टि कहते हैं। दिस्व-बोधा में निबने कान लगाकर मधुर स्वर सुन लिए, वह तो आकाश और पृथ्वो को
मदिर मधु में सना हुया देख रहा है। यह ली ! अब सार्य ऋतु मा गई। यह तो आनन
है पावनी का।

> साई आई शरद ऋतु आई। घरती पण भव्द भपुर, तावती जल विश्वल भुकुर, विरती ताली में नव परदाई। खोले हैं नवन कमत, डोले हैं ध्रय वध्यत, वटि पूनम को बदन जुनाई। सोलह सिगार दिए, अमृत रससार तिए, पूल शेकाली में मुस्काई।

—सिम्बा इमारी भिन्हा पूत्रम को मुदरता मिली है, दारद के मुख के लावच्य से । 'लोना सोना मुख' है। परती का व्यार उस समय अगता है, जब व्यक्ति यपने को सर्जुचित सीमा से बाहर निकाल साता है। भेफानों में जब सरद प्रमृत रसधार लिए मिल जावा है, तद कवि-हुररा एक प्रास्था में विस्वास रखना है, उसको वासना सथकार में सपने-साथ को समितिन नहीं करनी।

सराबोर मस्ती से कवि गाता है कि स्वयं की मचूर्ण मुजमा ही यह बादनी है । बाद ऐसा नमल-सा मिला है—और भी सी दलो बाला—जैसे दूध के समुद्र में उग प्राचा हो ! धात प्रानाम फीर पृष्वी घपने हो गए हैं

> नयन धन उग्मादिनी धाज निकली चाँदनी। धाज केवल धुल ऊपर, सुन्य ऊपर स्वर्गकी सम्पूर्ण सुपमा धाज भूपर!

फिर उसे बची हो न विश्रम ' गुक्तिरत बातावरण है' दूप से मानो, पुला ब्राह्मा का सत करण है, स्वान में भी चींक उठते प्राण शािको देश स्नत्वम '

—आरसीप्रमाद सिङ्

इस गीत में न कोई विशेषना है, न कोई चमल्कार है, किंतु वह है बहुत सुन्दर ! ऐसे मौके पर बड़ी सुनीपत हो जाती है। कहा उनसी रखी जाए ! किंतु यह सोदर्य इसकी स्रतुपूति में है और कही नहीं। 'श्राज' में ही एक आवेश है, और वहीं से इसमें पकड आ जाती है। ऐसा कल नहीं या, 'श्राज' हो यह बात है।

एक युवक कवि को यह चद्रमा भी काला दिलाई देने लगता है

नीम के पीछे उगा है

पाँव पूनम का सलोगा। है बगीचो में जुड़ी रंगीन कलियो की सभाएँ, है बिटए के एक इगित पर लिपट जाती सताएँ, छे रही ग्रेंगडाइयाँ किरणें सिहरते पल्सवी पर, चत रहा मूं पर गयन का

एक चाहू, एक टोना।
एक है वह रात, जो है हैंत रहीं पूँगट उठाए,
एक तुन हो, रह गई जो भूमि पर धाँखें गडाए
स्था सजारो हो भना इस चाँचनी, इस चडमा से ।
चडमा तो है तुनहारे

रूप का केयल दिठौना।

—सम्फुमार चतुर्देदी

अपनी-प्रपनी पास टर्री। प्रिया का मुस इतना उच्छल है कि उसे नजर न सग जाए इसिनए माने पर लगाएं वाले दाग-सा लग रहा है बदमा। प्रेमियों ने काले निन को गोरे गान पर देवकर बड़ी हाम-हाम की थी। विहासीलाल चादनी में साझा कर तन ही नहीं देय पाया, क्योंकि वह भी गोरी बीर स्था भी गोरी। मबर आजकत होते तो तोहा मान मए होते । कि बदमा केवल दिठौना है। शोवन भी कैसी स्त-भरी स्वस्था है, वब पाने सामने कुछ दीसता ही नहीं। इस विवान ने पदकर मुक्त अवभूति की यह बाप माद हो साद जहा उसने कुछ है कि सरस्वती मेरे पीछे ऐसे चलती है जैसे बीलक के द्यांगन में बोभित जैसे खाँडी का पाल धवल<sup>†</sup> धीवज्ञ-जन्मी से निकल रहा यह चौद मधूर ऐसा लगता शिश्व. मांके कथे पी**डे** से. प्रकटाही ज्यों करता 'स्या-स्या' यह बनी ६ई-सा स्वच्छ विमल यह रमध धवल, हिम-सा शीतल, क्षेत्री का समझीला उज्ज्वल किरणो का स्पर्श सुखद लगता, जैसे शिरीय के कुसुमी के सर्भित पराग के तत मदल, या शिश के गभुषारे कुन्तला यह गोल-गोल, गोरा, भलमल, ज्यो मध्यम में तमाल-तर-तल श्रीकरण ग्रंक से सटी खडी राधाका सस्मित मत्यमण्डल।

—रामेखरलाल यहटेलवाल 'तहरा'

कासिदास में जैसा रगो का देभव है, वैमा ही यहा भी है। उसने कहा है—ऐ मेव ' यहा नीजम की चोटो का कोडाईंस है, बगल मे मास्कत-सा करती-नुष है, सोपान है मरकत-सिसाप्रों में, नीजम अल में हरितम्गाल-ममल है—हैमवर्णी 'यहा मीलम के सागन में बादी का चयकता थवल चढ़ागा है, पीएन के पेठों के पीछे से ऐसा निकल रहा है जैमे मा के कपे के बीठों से गुलता विजयी सोठा झाल कर हहा हो ' ममुपार कुनता विजयी सीठी झाल्यानित है ' ऐसा है यह जैसे मणुनन में राया का, तमान के नीचे खड़े कृष्ण के पात मुक्कराता हुया मुख्या। कि

इस मस्ती में बहुत-में ब्याकुल हृदयवाले अपने सपने डुवोते हैं, और सो देते हैं। धनीत की मारिल व्ययाए एक सास्त्रतान्सी पा जाती है

> रात बांदनी मस्त हवा है, नींद भरी-मी है सरमर ! स्वप्नतोक के गीत मुनाता बांदी-सा भरना भरमर ! मस्त बर्दालयों जैसे नम केहो मुख्य सपने मुकुमार बले जा रहें निर्मत करने सुब का एक गया संसार !

बडी मुनोहर सब्दावनों है, जो चादनी के विभिन्न प्रभावों को प्रकट करती है। किंतु इननी हो सीमा नहीं है। इस सुग में झाकर बिचारा चाद लगड़ा भी हो। यस है। वह चादी की किरनों की वैमाखी लेकर चला झा रहा है

> देख रहा हूँ— रजत रश्मियों को बैसाधी कर में लेकर सङ्ग्रा ग्रातर चाँद ज्योति के

> > **−**%न्हैयालाल चन्चरीक

त्यवा तो है, मगर है रईन। बसता है चारी की वैसासिया केकर। यह है चसते-चमते टिटका देना। 'मजाव' ने 'विनए की निराब, मुख्ता का सममा, बेबा का प्रसाद, मुख्तिस्स को क्वासीं? हत्यादि कहकर ब्दामा की मक्कर की है। श्वान रहे बीनए नी निराब के तारपर्य वहीं से हैं, सिपटी हुई वहीं से, निसके कीने नहीं दिखाई देते। वैसे दोनसंपियर ने 'ए यिट समर नाइटस होस' से मदमा के कीने बहुते ही सानटैन से मुसबाकर यह समस्या हल कर दी थीं। और कहा है कि ने वे

प्रश्त मीन भ्रवर

उत्तर

मुखिरत हो जाएँ तो रस बरसे, लाज-भरे चार नयन स्यात् उठें, गिर जाए गाज भहीं प्रचल के द्वीर घगर उठ जाएँ होंचे से शामीट रचींग भी मन हो मन कोसितवम् ?

एक चितेरे की कृति वर्त्त रेखाग्रों में सिमटी-सी।

**—कःदै**यालाल चञ्चरीक

यह उसनी दूमरी प्रस्तोत्तरी है। रस बरमता है बादसे। पर अधरो से भी बरस सकता है, प्रगर वे बोल पढ़ें।

तो यो हम अपनी यात्रा में एक दूसरे छोर पर मा निकलते हैं। नये कवि को भोस नीती दिलाई देगी हैं। प्राय घोस नहीं दीलती, पर जब उत्तपर किसी रण की छाया पड़ती है तो दोलती ही है। होरे-सी वह क्यों लगती हैं? किरन पड़ने से। पर नीनों लगती है नीने यहसान को छाया पड़ने से।

चाद ग्रार्टना-मा भी समता है।

चाद दही-सा भी दीखना है। यह मुक्ते ग्राम्यत्व दोप जैसी खटकनेवाली चीज

'पूरा चाद' में अनरीश गुज ने इनना ही नहीं रखा है, अनवीबी किरन से उसके हाथ सरेमा भी बहु बाबा जा सकता है। मनमुच बड़ा मनोहारी चित्र है। प्रत्येक पुण के कृदि मये रूप मिराजते हैं। आज का कृति भी पीछे नहीं है। जो उपमाए लोक में व्याप्त हैं, वे भी एक दिन ऐसी हो नई थी। एक प्रामयित्र है

> जन्हाई खिली पनम विपन्नी में चौदी के स्वर भर गाता है निर्भर ग्रहेला विहास नभ को घटारी से चदन सटाकर घोता है राकेश सब दिन के दाग सरक्षिज की पाँधी में दुधी किरण की रजनी को भीठी पहनाई मिली जुम्हाई विली भरमट की छाया में सारस की जोडी सोबी है दबकी-सी चोचें मिला दयलो की पाँने पौखर के तट से उडती है घते-घुले ईने हिमा उजती तहर पर फिसलती लगाएँ पेडो की चुप परछाई हिली जुन्हाई खिली कॅचल के पथ पर सुनै पहर में खरहा सहमकर भरता खलाग हुँ फ़ती हुई है ये जो नी नौल गायें ज्यारों के खेती से ब्राई हं भाग, ठण्डी बयारों से सिहरी हुई-सी डोली है भौगी मकाई-तिली, जन्हाई खिली

—शोतनामद्वाय श्रीवास्तव

जुःहाई सिल गई। चारों के स्वर भरकर निभंद गा रहा है। राहेबा ने चदन बरसाकर दिन के दान पो दिए हैं। दूपी किरण को सरसिब को पालों में रखती ने पहु-नाई दो है। बहुत हो घन्छा करा है। मैं उपारेपताबारियों में नहीं हूं जो इस कोमल कन्मनत को मामिकना को नहीं देखा। दुस्थित समाजवारनी घवस्य इसे केवल सन्दों कर सेत कहेंगे, किंतु बह इससिए कि वे प्रहति भीर मानव-मन के गहन प्रोर मभीर सबयो रद्ध, ययभ्रस्य ग्री' विकित्त वासना-सी अवृत कहीं ये दूर कभी रक-रहकर किसीके प्यार-भरे गीत के दूरे-मे स्वर भूत से जागकर मानो तभी सो जाते हैं। चांदनी रात है चूपचाप सर्मापत मीहित ग्रवत दिगत के ग्रारकेव में सीयो, खोयी, श्रवृभ स्थल में, जेसे तुम हो, कभी खुपवाप ग्रनायात मेरी गोद में सो जाती हो

--नेमिचर वैन

चित्र प्रवद्य सक्षे होते हैं, परतु प्रजतीगत्वा वाहावरण ही मामने आता है, क्योंकि एक के बाद एक छवि जत्दी-जन्दी आती है असे कवि सबका प्रकल कर देता चाहता है। जिन कवितामों में चित्र की एकारमस्ता होनी है उनका प्रभाव यधिक प्रच्या पढ़ता है, ययपि बात जनमें मो प्रेम की ही होती है। ग्रोर छद की गीवारमकना के कारण घटर-सहर उनमें नहीं होती.

हे किरण की सहज बिल्तवाँ स्थोम में
चाँद स्वेता रहा चाँदनी की तरी
ग्रीर भुव - पात में तस्वरों को क्से
भूमि पर गीत पाती रहीं दल्लरी—
अ, सुन्हारी उठीं, इत्यनु जिल्य पदा
भर गई साथ दिसाएं मदिर हास से
प्राण मेरे रहें सुन्थ केंसे भसा
जब कि मस्ता रहे हैं सुन्हारे नवन

--राजेश दीवित

चांद एन सिवैदा वन गया है और किरनों को विन्तयों से पोरंगों की नाव को से रहा है। बहुत मुदर करना है। फिर चोंड़नी में विवासपक्ष बाग ग्रद्धता है छोरों कि को सूचित वो प्राप्ति होनी है। ऐसा सतीप इनने मुखर रूप में कम मितता है, वरोंकि प्राप्त कवि दर्द वी माहे तो सेते हैं, पर यह साफ-साफ नहीं कहते कि उन्हें किसी क्षी है। ऐसे पीन वो सेन्ह को सूचित देते हैं, विवास सुना में से भीत रखे वा सकते हैं जिनमें परेनु चीकन की हाथा मिलानों हैं

> रैन हुई जीवधारी! चाउर चौक पुराए मेने

थे, लेकिन सत्य हो नहीं पाते । तब वे घपने को सबसे फुछ घलग बना सेने की वेष्टा करते हुए भी दिखाई देते हैं कि मुफ्ते साधारण मत समफ्ती। करते हैं

र्जांडली सेरा करेगी स्वा

×

मे निषट सोमेंट का हूँ पन्य, मेरे लिए भी है वही राही परम हित

मेर तिए भी है वही राहा परमा है सम्पूर्ण जीवन का उसीको भाष्यम भेता में जान सकता हूँ कि छाया दे रहे हैं पेड एशब दे रहे हैं फूल,

× मेरे हृदय हो तब ती ! चौड़नी मेरा करेंगी क्या !

—भारतभृषयः प्रयावाल

सीमेंट के पय को यह हुदय के घ्रभाव में लिखी गई कविता कितनी मजेदार है। छात्रा, सुशबू, पपकी, सब ऐने जाने जा रहे हैं, जैसे धनुभव किसीका नहीं किया जा रहा है।

थपकी दे रही है चाँदनी

प्रव तो विचारा चार कुछ जली-कटी भुनने लगा। यह तो मान लिया गया कि उत्तमे कुछ प्रावर्धक प्रवस्य है। एक कवि ने उस ज्योति के फूत को देखा। कुन्हताया पड़ा या। जरत् ने उत्तको सुर्राभ ते तो भीर काम निन्त गया तो उसे भूत गया। ऐसा सर्वद होता है। वेकिन विचारा चाद निर्वाण पा गया तो कोई बात नहीं, उसकी साधना तो सक्त हो ही गई।

> सान कुम्हताया पढा है ज्योति का यह कृत ते सुरीन साया जगत इसकी गया है भूत। सकत इसकी सामना यह पा गया निर्वाण युभ गया पर लीच लाया जमत में सुविहान हो गया निरिचन्त रिव को सीए बुमसी ज्योति के कणमात्र।

—नेननारास्य स्वः क्योंकि वह अगत् में बुभने पर संवेरा के घाया । धौर धपनी बुभनी उपोति के कजमात्र उसने रवि को सौंप दिए, वह निर्दित्त हो गया । मर गया ।

इतनी-सी रही भासिर चद्रमा की महत्ता

मुख बांदनी सोरस-भरी जवानी में माती थी।
पुपने-मुफ्ते प्रथना कोई प्यार तिये माती थी।
नयनों ही नयनी में क्सी हुई म्रनीसो बात !
मतायास ही बिरकन करता रहा क्सिका गात !
तरों से स्विन्त पाया में यह दुनिया सीती शि किन्न किसीकी पायन किर भी कनक-मुन्न होती थी
भेरे गीती पर कोई समीया सारी रात।

--- चुनद्दी

तारों नी स्विन्ति हाया में दुनिया सी गई, और किसीकी स्नुक-भूनुक पायल यवती रही। भीर सारी राज उन्हें देख-देखकर पदा मुक्कराता रहा। युक्क जब नोई
काम करते हैं तो समभते हैं कि उनने पहले किमीने ऐसा काम किया ही नहीं। जबानी है ही
ऐसी, कि उने हर दुराना भी नवा ही सगाग है। विचारा पाँद और करता भी क्या !
दिस के तारों पर सारी राज जाने किसे सोगों को वह गारी पहले मो सुन पुन है। इसर
बाई गोने। पर मार्गाना रहा, उपर पाँद मुक्कराता रहा। वदाप किस्ता में मापूर्य है कि वि सान हम बात पर नहीं गया कि का प्रवित्त हो रहा है। वस भीत इसे तासक
थे कि उननर किसीकी पाँद माती और कोई हुर होने के कारण वृद्धवार मुक्कराता
रहना ! मात्मस्वोहनि की वैदी धनीबी बात है। तेकि से योवन में मनुष्य यह कही
सोचता है कि उनमें किनानों ऐसा है विस्तर तीन मुक्करात पहना। मात्मस्वोहनि की वैदी धनीबी बात है। तेकि सार करते हैं। इस दृष्टि से यह
किता हास्य भी क्याती है, किन्न की मुक्करात सोगों होगा, वह तो बरी
सवी मारे मरेगा। ! किन्न बब व्यक्ति भीर साने समानी है । ऐसा ही विन्न स्वत्त ने
दिया है

डूदती, पिछले पहर की चौदनी-सी सनमनी हैं

बात मेरे प्राप्त पर संती यहन प्रविराम दिस्ती हिन तिछार से प्रान्त रात-पन पर सुवा सो बार विराही दूर बड़नो सांगती-मो में उनवती सीत होती हिस विपन बंदान में दूधी, सिहरती शुवि पिरोसी साथ मेरे दूदने मेरे क्साडी चोर-तार जो बड़े ये मार्ग-दर्शक इस ध्रमगति के क्लिस्रे

## संवेदना और स्वानुभूति

मनुष्य प्रकृतिका स्रव है, स्रोर स्रव होकर भी उसे जीन लेना चाहना है। क्ति दूमरी बोर उमरा समाज स्वय वहून दु सी है। यह एक द्वन्त है। वह प्रकृति का आनन्द नेता है, तो मनुष्य काद प वह कहा मिटा पाता है ! यदि वह समाज की दिषमता मे ही जरहा हुआ रहता है तो प्रकृति के बारे में वह लिखना ही ज्यो है ? माबिर उसका प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण क्या हो ? यदि प्रकृति एक रहस्य है, तो वृदि उमे रहस्य के रूप में भी देख सबेगा। यदि प्रकृति एक निरुत्र चलता रहनेवाचा किया-व्यापार है. तो उसवा विश्वण मनुष्य के हृदय में क्या सबध रमेगा र प्रानन्द वह यदि उससे प्राप्त करता है तो उस ग्रामन्द में लोक को क्या लाभ ? यदि दलितवर्गों को भी प्रकृति के चित्रण में प्रानन्द मिलता है तो क्या वह मनुष्य को उसकी विषमताओं के यथार्थ से ग्रलग कर देना नहीं है ? ऐसा काम क्या ग्रततोगत्वा यही प्रमाणित नहीं करता कि कवि बास्तव में उच्चवर्ग के हाथ में खेल रहा है ? यदि समाज के ही चित्रण में कवि इव जाता है, प्रकृति के खेलो का सौंदर्ग इसलिए नहीं देखता कि उसके पास तत्काल अन्य ग्रीद श्रविक महत्त्वपूर्ण समस्या है, तो क्या वह मामशोवस्की की भाति ही केवल नागरिकता में हो फमा नहीं रह जायेगा ? ऐसे लीग जो तत्काल को ही सार्वकालिक मानते हैं. यह भी मानते हैं कि मनुष्य का मनुष्य से पहला सबध है। प्रकृति को रहस्य के रूप मे क्यो रक्षा जाए, जब विज्ञान निरतर उसके रहम्यों को खोलना जा रहा है। ऐसे सभय में प्रकृति की उपासना करना मन्त्य की प्रगति की अवहेलना करने के समान है। किंद अन्य कवियो को यह जीवन की एक यात्रिक-भी व्यात्या मालम देती है। वे मनुष्य की चैतना की ग्रीधर व्यापक बनाना चाहने हैं भीर मनव्य-ममाज के भीतर ही उसे बद नहीं कर देना चाहते। वै प्रतृति के विराट कार्य-व्यापार की देखना भी चाहते हैं। इन्हीं अनेक मम-स्यामों ने नये कवियों को प्रकृति के सबय में एक बेदना दी है, जो कवि-जीवन के विभिन्न कार्य-व्यापारों के साध्यम से प्रस्पृद्धित हुई है। इस नई चैतना का एक रूप यो š

> सचक-संवक कर चलने बाती हवा अनोसी सहर बन गई नई चैनना के सागर की

भारतीय परपरा में बैंगे तो पत्नी-मितन को परपराहै, परतु प्रेम-मितन भी कम नहीं है। इसीतिए स्वकीयां का महत्त्व ही कार्य रूप में प्रयोग करनेवालों ने राधा-कृष्ण के परकीयां प्रेम का रख खूब सियाहे और एतराज करनेवालों को आल्ता-परमात्या का नाम तैकर चूप कर दिया है। हमारा नया किंव किंडी दूसरे की पत्नी को नहीं चाहता, कुमारी-प्रेम में रत हैं। समाज जमें पुतने नहीं देना। मजाज के दाब्दों में

हदें यह बीप रखी हैं हरम के पासवानों ने

कि विन मुतरिम हुए वेगाम भी पहुँचा नहीं सकता।

बहा तक हिंदू समाज का साधारण मानसिक स्वर है वह बुलसीदाय के काव्य के लिए उपयुक्त है, जिसमें समाज के प्रकेष पक्षों का चामिक विवेचन है। इस्के-मिजाबी पहले मो थे, तिक्त उन्हें केवस मनोरवन के लिए विधा बाता चा। अब अपने पहुँ केवी मनोरवन के लिए विधा बाता चा। अब अपने पुजकों में व्यक्तियास को पक्षा का स्वरा सकरण पियमोग्रण गुन्त है। तो नया बनि अपने पाठकों में मध्यवगें से गीचे नहीं उत्तर पाता । कियम मध्यवगें में भी नहीं, अभी तक अपने पाठकों में मध्यवगें से भी नहीं, अभी तक अपने पाठकों में प्रकार हों हो अभी तक अपने पार्यक अपने का स्वरा हो से से उत्तर पाता ।

दास-जीवन मे कवि ने स्वतंत्रता को प्रमुखता दी।

यूल उदती है नगर में
सांक मटमंती उतरती,
श्रोर दिन की हाँदुयों की
राल है नभ में बिखरती !
कोपती है सभ्यता,
दीवार पर दीवार गिरती
श्रीर टूटी मज़ारो पर
शांदुयों की धार गिरती !
बज रहे पाँदुयाल मदिर
गूंजते हैं भारती से,

—नगर्दारा

दिन की हिट्टियों की राख नम में उड-उडकर विखर गई। सम्यता कापने सभी भौर पुरानी दीवार टहाने सभी। सेकिन दीवार पर टीवार का मिरता जिस गति को बताता है, वह काव्य-मत्य है, सोज-मत्य नहीं। मात्र भी स्वतन्त्रमा, साधुमितता पढ़े-

है स्वयं माँ भारती से !

मे ही मन सोमित रहो, जीवन का ग्रानद भी लो। पर वह यह भी जानता है कि वातना से तृष्णा का मत नहीं होता। सारी रात चुन्वनो से भीगा चौद सबेरे भी मधु की प्यास ही लोजना रह मया। कवि नहीं समक्ष पाता कि अब रण वाकी रह चया, वयोकि वह तो तृप्त हो चुका है । पर वह समम्रता है जो ग्रभी प्यासा ही है

दलता नीरव चाँद गयन में आयो रात गई, आयो रात गई, आयो रात रही !
सांम सो गई दोप जलाकर जागो नहीं प्रभावी जल-जल आयो रही गगन पर तारों की हर बालो झभी जगत के बेमुष नयागो में है स्वयन प्रपूरा
मूक संदेसों में प्रिय तुम तक आयो बात गई. आयो बात रही !

v

निशि के सपनो में प्रस्वर पर चली बाँद की डोसी पर उस पय तक पहुँच न पाई किसी प्रात की रोसी बोतों के सब दूत लज़ीले तुम तक पहुँच न पाते,

दूर पिया के देश हृदय की कुछ सीगात गई, कुछ सीगात रही।

—ज्ञानप्रकाश चतुर्वेदी

चांद की डोवो जा रही है। वहा तक कोई प्रभात भी भवनी लाजिया को नही पहुचा पाता। क्यो ? पहुचाएवा केंत्रे ? प्रभात को सपता कहा मिलता है जिसके प्रदर तक वह वह सके ! गीतो के दूत तो लगा जाते हैं, पहुच ही नहीं पाते ! चता वास्तव मे यहाँ पुरप के स्था में नहीं, स्थो के रूप में हैं। एक भीर पिया का देश है, दुसरी थीर टोली। डोसी स्थों के साथ ही प्रयुक्त होता है। यहां यह विरोध मस्य सकता है।

और यहा चाद और तारों के संघर्ष का एक चित्र है

"चदमा को राह पर निर्मम वांच के टुकड़े कीन विद्याता है ? कौन-सानाटककार द्विपन-र रात-दिन के काले-सकेट वर्दे विराजा है। वका में मुख्यु क कोवते मात्र मी सूर्य वहीं से मा रहे हैं ? सारे सितारे रान की मर्यी उठावेलिये जारहे हैं। किंतु किर से म्रारण उपा जेती सितिन की रूह विद्यों मा रही है।" (विववहादुर सिंह)

चादनी दर्धन का धाधार वन गई है। कीन करता है यह सव ? किसके कारण यह सब होता है? समस्त मृध्यि में कम सुख और दु ल व्याप्त है? सिनारे रात की प्रभी उठाए से जा रहे हैं। मानो रात गर गई है क्योंकि वह अपकार का रूप है। ज्योंकि के अतीक हैं सितारे। अत के जीवन के अतीक हैं। वे उठाकर इस सब की किनारे सगा हेंगे, जा रहे हैं, यह पढ़ा नहीं चलने पाता । सितारे भी रमा करने पर उजारू हैं। चाद सोने नहीं देता, क्योंकि जवानी तो हर हालत मे जवानी है। धीर देह धीर मन का हाल यह है कि प्रसमय में ही पत्त-घर खा गया है। जिसको जड़ो में पानी न पहुँचे, उसका घीरहोगा भी क्या । जो कुछ है एक गरीब की हसी उढ़ाई जा रही है। किसीमें भी सहानुभूतिनहीं।

तब एक विश्वास और दोलता है चौदो के साँभी सी बल खाई गदियों की कल-कल, छल-छल के उस पार—

कि, देखों।

पर्वत की उस स्पाह ऊँचाई पर से कोई भांक रहा है,

उठ सकती किस हद तक ऊँची इस घरती की कुचली मिट्री,

इस घरती की कुचली मिट्टी, लाल रग से बासमान पर ग्रांक रहा है।

—नदरत म्बर्गकार

माशा बहुत बड़ी है। दूर पर जहां परिथम का फल दिखाई दे रहा है, जहां अपने ब्ररमान पहच रहे हैं, जिसे हम एक ऐसी अचाई समक्षते हैं, जहां तक पहचना उलाध्य है, बहा तक कवि का विश्वास उठता है। इस घरती की कुचली मिट्टी कितनी ऊवाई तक उठ सकती है। देख रहा है प्रकाश का प्रतीक कि मनुष्य की गति कहा तक हो सकती है। वह मनुष्य जो कि कुचला पड़ा है, उसका उत्थान कहा तक सभव है। प्राय ही माटी ग्राज मानव भौर जीवन का प्रतीक है। कल तक इम माटी को भौतिक-भौतिक क्टकर इसे तिरस्ट्रत किया जाता था, क्योंकि मनूष्य को झात्मा के रूप मे देखा जाता या । ग्राज कवि के दिष्टकोण में यह बहत बड़ा परिवर्तन ग्रामा है कि माटी को वह ग्रत्य-धिक महत्त्व दे रहा है। घारमा क्या है ? माटी की ही चेतना है। उसे माटी ने ब्रलग करके कोई देखना नहीं चाहता । यदि शकराचार्य होते तो न जाने कितना शोक करते । तुलसीदास होते तो इस बात पर भिर धूनते कि जो सरस्वती राम का जप करने की मिली वह माटीस्तोत्र गाते हए नहीं यक रही है। प्राप्त के कवि को यह बहुत करके लग रहा है कि उसके मस्तित्व में महस्य हो या नहीं हो, परत् उसका अपनान अवस्य हो रहा है। साराश में मैं कह कि छात्र उसका ग्रहकार पूराने विषयों की ग्रपेक्षा कही ग्रधिक है नयोकि वह सब-मुख प्रपने लिए चाहता है, जबकि पुराना कवि मानता था कि यह सब भपना नहीं है, हम तो एक सराय में ग्राकर वसे हुए मुसाफिर हैं। दूसरा कवि कहता ħ

> सहर सागर का नहीं भ्रुगार उसको विकलताहै,

विषयवस्तु नही है। सजाव-मँवार से इनकी प्रतिमा में सर्वन भी कम ही है, परन्तु फिर भी कुछ रचनाए इनसे अच्छी भी निकल गई है, जिनमें वस्तु भी है। प्रयत्न करते रहने से मा ही जाती है। क्रार की एक कियता इसीका प्राकर्षक उदाहरण है। प्राय अवेय की किता उसके उपन्यास पीसर एक जीयती? के बग की ही होती है, आरमपरक ही, वयोंकि जोक्यर दिसहम होती है जो उत्तर की तरह फूटती है, जविक प्रातमरक में यहुत बेध्दा करके लिखा जाता है मोर सहरों के बमकार को प्रधिक प्रथम दिया जाता है। टी॰ एम॰ इन्तिमट का प्रथम के नेकांक के लोग इनियद के क्यांकर कहा की स्थानित विक्रयाद मं साकि है। प्रश्न के किता की प्रभाव के बेचि प्रमान विक्रयाद मांज है। परन्तु उपयोक्त किता इसके प्रयत्न की प्रात्नी। में केवल 'व्यक्ति वैचित्रयाद' मांज है। परन्तु उपयोक्त किता इसके प्रयत्न नहीं प्रांती। योंकि से प्राप्तित वैचित्रयाद मांज है। परन्तु उपयोक्त किता इसके प्रयत्न नहीं प्रांती। योंकि ही एक पीर स्थल पर हमें मिनती है पर हमरे ही इस सै

सांत-रारवं गुश्र थे तार - स्वश्न ! हिम्बवस कपोतो-से मजुल, स्रति मुद्दुत तुल के काहो-से या नम-उर रह-रह गंडराते वर्षा को शेव मधुर सुधि से; उनले - उनले विसरे - निलये दारि-रारद-गुश्र के तारद-पश्च ! मितवक हृदय पर हा जाए वह स्वतर श्वरता कव दनमें ? नयनों में सहन समा जाए वह सहन सुधरता वस दनमें,

नयनों में सहज समा जाए वह सहज सुघरता बस इनमें, सुधि से उमरे, निज सुधि बिसरे शक्ति-शरब - शांध्र थे शरब - अस्त्र !

—दोरि

दारत् के मेघो का वर्णन कर रहा है किंदि, परन्तु उसकी उपमा वह सीध-दारद-द्युम्न से देता है। वहाँ निर्माण कुनुननीय है असे शिव का अट्टास । सारा चित्र अपने-प्राप मे अपूर्ण है, ब्यूयें है, यदि 'यागि-धारद-पुम्न' किकाल दिया जाए। कविता में पितकती पूर्य प्राजाएंगो, नोकि सरत् की विशेषका है। सार्त् शीच को ही मूल तुलनीय व की ने दूस्य को एक सीतम रिनम्बता प्रदान की है, और वही इसका प्राण है। प्रय नादमी मते देशे बनती है

नव बसन्त की राका रजनी
पहन चाँदनी की चोली, सोडे सम्बर पट
गोरे साजारण गाती पर
कृतन केती की बिख राए
केत सर्वाय स्वयन्त्रीक को कोई दुस्हन
महैका करती धपने ऊँचे राजमहत के वातायन से -

धिसे हुए पीतल-सो पाडुर
पूस मास की पूप सुहायन
स्तनपायी नीरोग गीर-छावि
सित के गार्थो-जैसी मनहर
पस मास की यूप सुहायन
फटो दरी पर बेठा है चिर रोगी वेटा
राधन के जावल से ककड
बीन रही परनी वेचारी
गर्म-नार से ग्रसत-सिथिस
है ग्रम-प्रम,

है प्रान्त्रम,
मुँह पर उसके प्रदर्भती क्षामा,
द्वापर पर बंठी है विन्ती
द्वापर पर से जोने बया कुन का प्राई है
चला-चलाकर जीम स्वाद केती होठों का
सव कुछ है, कोयला नहीं है
की काम चलेगा बोलों ?
चावल नहीं सिम्म सकती है
रोटो नहीं सेक सकती है
भाओ नहीं पका सहता है
भाओ नहीं पका सहता है
पारम-का कियात-सी
पस मास की युप सहायन।

--नागार्जन

धिने पीतल के रण को नो पूप। बहुत मुन्दर वित्र है। एक स्वरंब बालक के पानो जैगी भूत की पूप। प्रोरंफिर वह प्राप्ता है घर की घोर। वहा कोचला नही है। बिना नोचले के रेख वा इजन नहीं चलता। नागाईन की विवता कैमें चले ? प्राप्ति ही नही है। पूस की पूप वा चिंव बया करे ? प्रचृति वी पहली माग है पेट की यूख मिटाना। दूसरी मागें बाह में प्राती है।

जीवन के देनित समर्प इतने नटोर हो गण है कि किन मुद्रा जा रहा है। मूले विन को पड़ोस में बुद्ध बाट बाई जिन्सी जिननी सुनी लग रही है कि वह बड़े ध्यान से उसरो निहार राउसवा पूरा वर्णन वरना है। जब यह समस्या नहीं रहेगी, तब प्रवस्य इन विज्ञान महत्व जम हो जाएगा, जिनु प्राव तो दसने तीनेपन में बीक्त है, यह जिलहुन व्यक्त बात है। सिन गी दुष्टि राग्न और नहीं, सब ही घोर होनी चाहिए। यहा ष्टा गई प्रांची विदे

बादल घने प्राकात में

पूल के लचु पूर्ठ घोठे

फूल के इतिहास में

प्रान की विकासियाँ

उडने तभी मचुमास में

सक्ति विद्युत असी तब

भारत यन विद्यस्त में

सायनानी जा उति।

—केदारानाथ निम्न 'मधात'
ऐसे समय में चिंदनी का अपना महत्त्व नहीं रहता। वह प्रहृति की एक विध्यामात्र रह जाती है और किन्मानस उससे प्रभावित नहीं रहता। उससी दृष्टि केवल
दार्तानिक वनकर रह जाती है। यह चित्र महत्त्र मी नहीं होते, यद्या है गिर्हे मभीर।
यादि भैं से उनपर चिंदन किया जाए तो हो वे भाव जगाते हैं और ऐसे जोकि काफो
महार्य है वक प्रभाव डानते हैं। किन्न इतभी किया हो जाने पर वह किवा नहीं रहती,
दर्गत प्रभाव डानते हैं। किन्न इतभी किया हो जाने पर वह किवा नहीं रहती,
दर्गत प्रभाव डानते हैं। किन्न इतभी किया हो जाने पर वह किवा नहीं रहती,
दर्गत प्रभाव जातो है, वहुत मनोहर दन से प्रस्तुन किया हुत्य राव से स्वत्य का भागे
काफी हद तक रचून है, ओ गहरार्द की एकदम से प्रनाम करके रख देवा है। हम का
पान प्रसाम केवर नमनी में चौदनी मीतियों की हैंसी-सी विशेर देवी है। तव दून्य गवन जाता
है मीर स्थावक रण में प्रवर्ध पहा प्रसिद्धांकि है, तो सुग्य उसका स्वस्य । इस प्रकार रोनो
एक ही उहरते हैं। सीर्य की प्यास रोनो में है। चादनी बनता है तब वह बहुत ही तीसा
चित्र सामने उपस्थित करना है विश्वमें समर्थ भी है।

मेरे बचपन का साथी यह बंदा मामा मेरे प्रोमू देख जिले माँ निकट बुलाली तुम कहते हो किसी सुदरी-सा सुदर है जिसका योवन चुदा निज्ञा नभ में मुक्ताती;

x मुक्ते पाद है जब मेरी तुतली-सी बोली रोज चौद से परती पर झाने को कहती तब मेरेनन्हें हायों मे देकर रोटी मुक्ते परा का चौद दिला मां यो बहलाती थास्या टोतो के साय-साय चलने के कारण दो प्रतिप्ठापनाए सवनाग चनती है, जिसका इस होता है दिवार और माय का साय-साय दिखाई पढना। कबी-कभी हम व्यापक पे भी मरोच की देखते हैं .

> प्रतोक्षाकी बहुत जोहा बाट जेठ बौता, हुई वर्षा महीं, नम यो ही रहा खल्वाड ।

> > ×

हान होगी, सनित, वर्षा, हो रहा विश्वास हो रही है प्रवति वृत्तिक्त से रही नि स्वास किन्तु प्रपत्ने देश में सो सुमुखि, वर्षा हुई होगी एक क्या के बार गा रहे होंगे मुदित हो लोग जूब मसार भर गई होगी प्रदे यह वाम्मती को पार चने होंगे वोक्टो में कुमद, यदम, मसान

—नागार्जुन

भ्राकार का पत्थाट रूप मन्त्री यभिष्यिति है। सत्याट मे री भाव है। एक तो यह कि यह। के एक अमृद्धि उनड पूर्णी है, भीर दूसरी यह है कि अब सहा कुछ जमेग्रा भी नही। सत्याट में कुर रात तो है। उत्तर पत्त है कि अब सहा कुछ जमेग्रा भी नही। सत्याट में कुर रात तो है। यह पत्त के मिन को साद करता है। यह यह महुनित हो बाता है, क्योंकि के भीर क्या क्या की मिन का ठीक तहा है। हो एक सुक्षण के मिन को मिन की स्वार प्रेस के भी भाव का जोती है कि दूसरा मूलक पुरा है। सौर कवि साकर यहा कर या है। उस कविता का रस वही से सकता है, जिसके बहु वर्षी कर्यों कर है। जाती हो। सौभाग्य से सभी किवारों में यह होड मही चनी है सप्ति दसका सूलवात कुछ सबीक पत्त के हैं। इस समस्यात से हमार व्याक प्रित्त हो। की स्वार प्रकार सुक्षात कुछ सबीक पत्त के हैं। इस सुक्षात कुछ सबीक स्वार पत्त है। उस हो उस सुक्षात कुछ सबीक पत्त है। इस सुक्षात कुछ सबीक स्वार के सिक्त से स्वर्थी के सकता बहुत्वता है, स्वर स्वर स्वार के स्वर्थी का स्वर्थी की समुभूति से कम्म सैनेवाला उसका सामर।

'एक क्या के बार' में तात-पोसर लवालव दीसते हैं और वर्षा ऋतु का सारा

भृगार सामने या जाता है।

पुराना कवि सुदरको ही भएनाता पाः। यद्यपि प्रव भी प्रधिक विवियता हमारे यहा नही पाई है, फिर भी ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं।

'बबूत' एक देसी ही कबिता है । बबूल पर बसत मावा सौर वह हरा हो उठता

भव-दव-तरु का दीपरु
फंता प्रशास प्रपलक ।
धालोकित धरा-गगन
विधिमत है विधिन सधन
मुक सरे है तर-गम
किरमो को पहले सक् !
कोठे परु गये नलतः
दुन्-योति सत-विस्तत
सरुल ज्योतियाँ धानत
किमात तम-चर धर-परु ।
विस्तव दोगरु नमम्म
धालोकित नवपुग-मम्म
दोष जले जुग-प्रगतक।

--अवन्तरुमार 'पाषाख '

विष्यव के दौषक के जल उठने पर ही नवसून का माथे झालोकित होगा, जल-जल-मल-दंग मे दोललता छाएगी भीर यह किय की कामना है कि यह दौषक पुग-पुग तक जले । किंतु इस गीत की सामिस्यीक्त केवल समाज के राजनीतिक रूप तक ही सीमित नहीं है। वह साइन्निक एस भी सेता है भीर प्रकृति उसका प्रतीक वन जाती है। वस्तुत मब-दव-तर का दौषक घडमा नहीं है। वह तो इस नई ज्योंनि के छागे सल-विस्तत हो गयाहै और एकस ज्योतिया विस्तुत्व गुन गई है। धफकार का हुस्य पक-फक कर रहा है। प्रमित्यास्ति छायावादी छन्दान गई है। धफकार का हुस्य पक-फक कर रहा है। प्रमित्यास्ति छायावादी छन्दान में प्रस्त है, परतु वस्तु उसके बाहर की है। मैं जब छायावादी कहता हू तब मेरा पर्य पहा उस रीती-विशेष से हैं जिसमे ऐसे छन्द रखे जाते हैं वो केवस ज्यापार्य में प्रपता पर्य प्रहा उस रीती-विशेष से हैं जिसमे ऐसे छन्द रखे जाते हैं वो केवस ज्यापार्य संपत्ता पर्य प्रहा उस रीती-विशेष से हैं जिसमे ऐसे छन्द रखे जाते हैं वो केवस ज्यापार्य संपत्ता पर्य प्रहा उस रीती-विशेष से हैं जिसमे ऐसे छन्द रही ले जा

निरासा में बदा का दर्वा मिरता है। "बसो बाद बंब बन गया, चौहनी झार बन गई। मीन मरण की बोहो में सहर बयो सो गई ? जिदगी की जीत क्षण-सर में हार बयो बन गई ? मो निदगी ! मागो मन। छाती में बब मी गुम्हाराध्यार जीवित है।"

(रावेन्टिक्सोर) पराजय में उस्टा ही सगता है सब । परतु सुधा थव चाद से गीत में धायिक मानी जानी है: "प्रणय को मधुर रागिनी मिल गई है, जिस तरह स्वातिकण सीप मे सग-सग बहररा मधर फल - इल - धारबादन वन-विहार पाँखें पसार लघ भार पवन-सन ग्रस्याहत. निश्चित शान्त ฆฯสโ क्रिया द्यागामिनी पासिनी या कि वधिक के फड़े से बचने का ग्रयवा सोच-विचार रहीं--ग्राने कीत कहे, मंह स्रोल रही, क्या बील रही है मानव-मन-सा होगा उनका भी चञ्चल चित ?

—जानकीवल्लभ शास्त्री

महज जीवन का कितना कोमल वर्णन है। ये दो पक्षी भारतीय दर्शन में पहली बार उपनिषदों में याते हैं। एक मन से वे श्रात्मा के ही दो रूप हैं, दूसरे मत से वे श्रादमा धौर परमात्मा है। किंदु जानकीवल्लभ के पक्षी कीट्स की एक बाडे की ऋतु में पत्ते गिरे वशों को बाद दिलाने हैं। कीट्म ने कहा है-नया इन वृक्षों को भी बाद आती हैं भपनी पीटाए ? बही भाव बोलना है कि क्या इनका मन भी मनुष्य जैसा चनल होगा? कृषि ग्रपने जीवन की चिताए देखकर पशियों के जीवन से तुलना करता है। उसे वे निहिचत लगते हैं। बहुत ही सूधम रूप में कवि जीवन के उद्देश के बारे में पूछ रहा है कि मिक्य बया है ? बया स्वामाधिक रूप मे जीवित रहना ही काफी है, या मनुष्य के रूप में जो यह प्राणी सपने को इतना स्रविक महत्त्व देता है, वही प्रमुख है ? क्या प्राणी-मात्र श्रपने को मरसित रसने की चेटरा में लगा हुआ नहीं है ? व्यापक है यह दृष्टि जो आगामी कल में भी यही समस्या रखेगी क्योंकि इन परनो की मनुष्य बहुत दिन से सोचता चला प्रा रहा है।

मानन्द और विता जीवन के दो रूप है। एक है सपने मस्तित्व का पूर्ण मानन्द ग्रनमन करना, इसरा है उसे बनाए रखने का प्रयत्न । बन्तन यह प्रयत्न भी ग्रानन्द की ही प्राप्ति का एक साधन है, एक प्रतिस्प है। प्रयत्न विना जीवन नहीं है। सब बहे जा रहे हैं, जिन् अपनी इकाइयों में भी वे उनने ही तल्लीन हैं, जितने अपनी सामहिकता मे । एक वृद्धि पृष्ट्या है

> बोल-बोत नम मोन. धनहगार है कीन ? जीनेवाला या जीने की चाह ! दोवाने मन ठीक नहीं है कभी किसीको छलना मृत्यु बहुत भारी है मेरे

ग्रहरार बोलना है—सुवा तो है, पर मेरे गीत मे हैं। माम्रो समर के लिए तलर हो जाम्रो। कित जिसे ईश्वर में विस्वास है, यह वहना है

> यह मधुर यागिनी, चंत चाँदनी टेर रही है द्वार - द्वार खोलो किवार, खोलो किवार।

Y

दो घडी तुम्हारे सिए धाज प्रभ ने खोले हे स्वर्गहार।

—नेमर्श

इम जीवन में परमात्मा ने सव तरह के दृश्य तुम्हें विए हैं। सीवर्यं तुम्हारी उदात भावनाए बजाने के लिए हैं। उससे उपेक्षा मत करो, तुम कुछ भी करना चाहते हो, उने भ्रवस्य करो, बिंदु कभी भी मह मन भूतों कि तुम नियामक तहे, सौदर्य का सिरजन बरनेवाला एक भीर हैं, जो तुमने भी ज्या है। तुम नियत्त हो, भते हो अपने महत्तार में 'उमें 'देसने से इकार कररी। उससी छाँव सम्मुच कहीं प्रस्कित अपन्य है.

तयो है सुधि की रेशम डोर कूल रहा ग्रांसों के पनने में मेरा चितवोर सियु-सी उसकी स्वप्न हिलोर—

**⊸**≩मरी

प्रभू मी बात इस ग्रुग के कवियों में नहीं के बराबर पाई जाती है। यह नहीं कि सब ही नास्त्रिक हो गए हैं, किन्तु अब नवे-नवे उपमान रसे जाते है। नवे-नवे प्रतीकों से प्रम नो याद दिया जाता है।

इनमें देश, जाति और प्रकृति सबका भी समन्वय हमें कही-कही मिल जाता है।

राजितवपुरी की एक विवता में ऐसा विषण बहुन आवर्ष हुआ है। नारी-ह्वय प्राय ही समर्थण में सौदयें देगना है और भारत में तो यह विशेषवा है। अर्चना के जनजान इसी दृष्टि ने सने जाते हैं।

चादनों सा गात सिए घरती हसती है। भारत मुनन हुया है। उसके बानद से हुदब सरावोर है। पृष्यी घीर घावास दोनों मे ही दीपक जल रहे है। घाकास के सोपक नक्षत्र हैं, जो सर्चना के जसवान में दिखाई देते हैं। घरती एक सीप की तरह अपने मे मोनी दिखाए हुए है। बीमुटी से पय सिप गया है। यह बितनो मनोहर प्रभिष्णतित है।

देशभिन-नमधी क्विता में चादनी का ऐमा वर्णन हमें अन्यत्र नहीं मिला है दमलिए भी इन कविता का अपना महत्त्व है। भारत, 'वीप बाला देश' है इतिहास के उन स्वर्णहम्यों पर विष्तुत । उच्च वह भासाद पौवन का गुलाबी तिए स्वप्नोन्माद, जिनकों नई सिचती मनुन-सिन्नु को बिपुत सीणित राशि से । बजता पियानो, प्रेम का फिर स्वाप होता, और मेरी लेखनों को सुखती मसि इबोकर अपने कलेंने के तह में में मनोहर पीत लिखता।

—श्रनतकुमार पापारा

प्रव सका का प्रश्न इतना नहीं रहता, जितना यह भाव जागता है कि जीनेवाले जो क्यों नहीं पाते हैं गीत के प्राकाश में मान-चटा हसता है। बस्तुत यहा प्रकृति नहीं है, किंदु यह ब्रह्मित का ही रच्य रूप सामने साता है। सागर, नवान, स्वर्षाम, सब ही हमें मिल जाते हैं। इसे सीती के रूप में नवा ही समस्ता चाहिए व्योकि यहा उपमान ही प्रमु-सता प्राप्त करता है, प्रम्यपा इसमें कोई विशेषता नहीं है। शहीदों की माद के चीप, सोजित सीर शोषण, प्रेम का स्वाप धीर लडू ये बूबों क्लम, यह सब बाद से तब ही। प्रप्ता प्रभाव दिसा पाते हैं जब वह पहला चित्र हम प्रास्तवाल कर मेते हैं।

कविता मे रगीनी इतनी प्रथिक है कि वह यात्रोध नहीं जगाती, विस्मय जगाती है प्रीर इससिए इसकी सैली के अनुरूप ही इसमें विषय का भी चमत्कार है।

समाजपस का यह रूप प्रत्येक कवि में प्राय मिल ही जाता है, क्योंकि यह तो थुप का प्रमान है। सीप-सीर्थ जो कह देने हैं, उनमें ऐसा सींदर्य नहीं माता, दूसरे प्रकार का मिलता है।

. सेंदर्य हो मूलत केन्द्र है। दर्शन, मनन घीर चितन, मूलत उसीको साकर प्रस्तुन करने की चेष्टा में सपे रहते हैं, कवि कहता है

> किसी अधिवाली ग्रांत की ज्योति पीकर परी डाल तेरा विला फुल होगा।

किसी बूंद की जिंदगी सोचता हैं नदी की लहर में कभी मीन सोई कभी हैंस पढ़ी, चाँदनी से गले मिल,

कभी बादलों का हृदय छेद रोई,

मगर श्रत में बूँद, शृगार तेरा मदी की निमति पर बैंघा कूल होगा।

जीवन का यह समयं बताता है, कि जीवन ही से जीवन को प्रश्रम प्राप्त होता है भीर यह गुणात्मक परिवर्तन अपनी मानारमक्ता के भेद से नए-नए रूप भारम करते झतभ - साउन्माद लेकर चूमने नल-ज्योति तेरी मिट चला वह प्यार तन्मय । चरण में उत्सर्गजीवन-दान तो है।

—राकुनाता रेख

व्यक्ति को इतना महरूव काव्य में पहले मुद्दी मिला। पहले कृषि को बाह्य माधार मिलता था। पब उसे स्वय ही घपना आधार बनाने की मबसूरी है। यह जिम्मेदारी बहुत बड़ो था पड़ो है। "मैने तो तेरी एकाकी भिक्त मागी थी। पर उस एकाकी पन ने जम की सारी सीमा नाप डाली। वह तो प्रपार सिन्धु बन गया भीर में उतराती फिरले समी।"

इसीलिए यह सकट भाषा है कि क्षण में कुछ भीर दूसरे ही क्षण कुछ और दिखाई देता है। इसीसे चमत्कार भी भपना सबल खोज पाया है।

नाव्य की मिठास केवल चमत्त्रार में नहीं रहती। ग्रह्म को विचित्र ग्रह्म के भाष्यम से विजित करने पर काव्य उज्ज्वन हो जाता है।

बहा चमत्कारमात्र ही प्रमुख रहते हैं, वहा भाव भक्तभीर नहीं करते। केवल प्रकृति के क्षेत्र में जब उनका मन सहज रूप से मिल जाता है, तब वे ऐसे नहीं रहते। स्पृपिनका की बनावटी लगान ढीसी वर देने पर उनकी भाषाका स्वस्व हिरत की तरह मही चलता। ऐसे कवियों को चुनोती दी है गिरिज्ञाहुमार ने घीर कहा है

उत्तता पाल क्योर का जूना कात-ता वित्ती चांदनी रात कि कसी मुहाबती, तरम नजूनी रग यूले प्राकारा में रची हुई है पुरनमा नी चांदनी, उड़ती भीनी गय हवा में हुव की बिखरा सोई कोरे कृतल कामिनी, चूली भीत में भार कित रस सोम का नग्यनी में भरा केत रस सोम का नग्यनी में भरा केत रस सोम का नग्यनी में मक्-भरी नातीई भूतती, हिस के मूग भर रहे बोक्टी जुतती, उमरे रोएँ यूवा गई है चांदनी, पत्री न्यूनी स्थान नग्यनी गीरी हिस्सी चांदनी ।

को भाति नही। वेदना का जो स्वरूप मनुष्य देखता है, आवश्यक नहीं है कि प्रकृति मेभी वैसा ही हो। 'रेषु' में कवि ने अपनी आकृतवा को इतिहासो में सरावोर करके भी देखा है। किंतु इसका मत उसका नया मार्ग नहीं, पीटा ही है। यूल भी तो अपना महत्त्व रखती है

> मतमानी किसी मयरर को में दारण एक कहाती हूँ साकेत वासिनी रही कभी ग्रंथ पण्डटी की रानी हूँ जब गौरव-गिरि के सिर-किरीट बन हीरा-सी में जड़ी रही ग्रंथ किरणों के पथ अपरो की हमशीरा-सी में खड़ी रही जब रत्तपीटिका शिव की त्रिमुबन की साधना - शिला थी में उस समय ग्रंरी भीती जगती! तु के बेसुय-सी पड़ी रही।

रेबृद्ध बिश्व !रेजरठ जीठ ! कुछ तो बचपन की बात बता मेरा कैसा या प्रात ! स्रोर यह कैसी भीषण रात हुई !

यह प्रतिम प्रहर निशा का फिर में उपादीप नूरानी हूँ क्षण प्रतिन - परीक्षा । फिर तो में साकेत - पूरी की रानी हूँ।

—वे.मरी

पृष्ति । पृष्ति हो । मनुष्य के इतिहास की साधी है । वह प्राचीन है । मनुष्य को देवन त्यना से भी प्राचीन । सिंतु वह भी प्रपत्ते विश्वय में कितना जानती है । उसका प्राप्ति कहा है ? कि ने बहुत हो सचन करिता विश्वते हैं । जेते बहुत कम सिंत्यों । इस एक किता में कितने उदार-कराब आकर समा गए हैं कि देखते ही वनता है। पृष्ठि के कितने में कितने हैं जो भगने साथ स्मृति के कितने-किनने प्राचार घरण नहीं किए हुए हैं ! कात, सता थीर मनुष्य को मनदा, उसकी रासना, सबका हो यहां तारास्य हो गया है, तथोंनि कि व यहां उसे धना विवयारों बनाया है, जिसका कि सारा बहां एट एक प्रसारमात्र है। पनुष्य के जीवन-मरगने उसे हसाया है, जिसका कि सारा बहां एट एक प्रसारमात्र है। पनुष्य के जीवन मरगने करताई है और धरने ही बनाए विस्तायों के प्रतितिश्व प्रति हो भी पनुष्य ने विभिन्न राशों के प्रमुत्ति पाई है। कित प्रश्वति प्रति हो सिन्त परि से सहाय प्रीर रोगात में पनुष्य ने विभिन्न राशों को पनुष्ति पाई है। कित उसके विश्व मुख्य पर सिन्ते पर साहत्य पीर रोगात में पनुष्य ने विभिन्न राशों को पनुष्ति पाई है। कित उसके विश्व मुख्य भी रहा हमा भी नीने वह उसके बिना मुख्य भी नहीं है। यह प्रश्वति ने भी धपनी वेदना की सहस्य रोगा साहता है।

नव्हे-नव्हें भीले-भीले भी भनवीले तारी, बोलो मेरे मुखे मुनेपन मे भ्रपना मधुमय कलरव घोलो फिर उसे बची हो न विश्रम गुञ्जरित बातावरण है! टूब से मानो, पुला ब्राह्मा का बत करण है, हवल में भी चीफ उठते प्राण शक्ति को देश स्तरवम!

—बारसीप्रमाद सिंह

इस गीत से न कोई विशेषना है, न कोई चमल्कार है, किंतु यह है वहत मुन्दर । ऐसे मोके पर बडी मुगीयत हो जाती है। कहा उपली रसी जाए ! किंतु वह भीदर्य इसकी भ्रमुभूति से है श्रीर कही नहीं। 'याज' से ही एक प्रावेश है, श्रीर वहीं से इससे पकड व्या जाती है। ऐसा कल नहीं था, 'याज' हो यह बात है।

एक युवक कवि को यह चद्रमा भी काला दिलाई देने लगता है

नीम के पीछे उगा है

पांच पूनम का सतीना। है बगीचो में जुड़ी रंगीन कलियो की सभाएँ, है विटप के एक इंगित पर लिपट जाती लताएँ, ठे रही ग्रॅगडाइयाँ किरणें सिहस्ते पल्लवो पर, चल रहा मूं पर गमनका

एक बादू, एक टोना। एक है यह रात, जो है हैंस रही पूंपट उठाए, एक तुम हो, रह गई जो भूमि पर ग्रांखें गडाए क्या सजावो हो भसा इस चांदनी, इस चटमा से । चटमा सो है तुम्हारे

रूप का केवल दिठौना।

— तम्झार ज्युँदी ध्रयत्ते स्वयत दहरी । प्रिया यर मुद्र इतना दश्यत है कि उसे नहर न सम जाए इमलिए माने पर लगाए नाने दाग-सा लग रहा है नदमा। प्रीमचो ने काले निन नो गोरे गाय पर देखकर बटी हाल-हाम नी थी। विहारीक्षल भारती ने राघा का तन ही नहीं देग पाया, नयोकि बहु भी गोरी प्रीप्त भाभी गोरी। मगर आजकत होते तो गोहा मान गए होते। कि प्रमान केवल दिटीना है। शोवन मी कैसी रस-भरी प्रवस्था है, जब प्रयोग नामने हुन्यू दीराशा हो नहीं। इस निवार नो पड़कर मुक्ते प्रमुख्ति की वह बाद याद हो प्रार्थ नहां उसके नहां है कि सरस्यती मेरे पीछे ऐने चलती है जैसे तिनका ? तेरे हार्यों में है असर एक रचनां का साधन— तिनका ? तेरे पने में हैं विस्ता के प्राणों का स्पटन!

तू मिट्टी या, हित् प्रात मिट्टी की तूने बीप तिया है तू या सृष्टि, हितु सप्टा का गुर तूने पहचान तिया है! तिनका पम की पूल, स्वय तू है धनत की पावन सूनी-हितु सान तूने नम-पय में क्षण में बढ़ समस्ता हती।

—ऋडेव

त्रिसीना मरोना नहीं। मदेले चलता है। सनित चपने पात होनी चाहिए, बस त्रिसी भी तरह इनता हो कि ओवन को गति न रव चाए। उत्तर, भीर उत्तर उठना है। तिनता क्या है? रचना का साथन है, वह विधना के प्राणी का स्थदन है। यह व्यक्ति मिट्टी है, क्षित्र वब सालार प्राण्न हो जाता है तब वह मिट्टी का स्वामी वन बाता है। स्थित का पतिव्य भीत वह सप्टा बन जाता है, क्योंकि बहु तथा निर्माण करता है। समत को पतिव्य भीत है, भीर नारा खेल धृत्ति का है, क्षित्र व्यक्ति का उठता है, तब समत्वा को प्रतिकृति हो में तो है।

रितु व्यक्ति के पीछे जो महारात लगा हुमा है, वह उसके माहम को चुनौती है। यमरता एर मूल ही चो बीयती है उमे, क्योंकि उद्यश् विद्यालना भी धनदोगत्वा एर दोटी-मी सीया है

> महा स्वप्त मे कल्पना जागती है निसासुण, दिसासुण, गगन चप राउा है।

निया जुन, स्टान जुन, राज जुन रहा है निया जा रही है, उपा चा रही है, बिसन, पत, बत्ता हो पड़ी खा रही है, तिमिर चल रहा है दक्त सीत मेरी यमन भी रहा है हृदय की ग्रॅमेरी

महाकाल के प्राण केवल सजग हैं नियम में बेंगे ज्योति के चित्र सगही बडी मनोहर सब्दाव नो है, जो बादनों के विभिन्न प्रभाव) की प्रकट करती है। किंतु इननी ही सीमा नहीं है। इस पुन में साकर विवास बाद बगदा भी हो पया है। वह बादी की किरनों की बैमाजी लेकर बला था रहा है

> देख रहा हूँ— रजत रिमियो की बैसाकी कर में लेकर बढ़ता झाता चाँद ज्योति के जगमग यथ में—

> > —कम्हैयालाल चन्न्दरीक

लगडा तो है, मगर है रर्जम। चलता है चावी की वैसाखिया लेकर। यह है चलने-चनते टिटका देना। 'मजाज' ने 'बिनए की किठाब, मुत्ता का प्रममा, बेबा का प्रावाद, मुस्तित्त की जबानो' हरवादि कहकर चट्टमा की वर्णना की है। ध्यान रहे जिल्हा की किठाब से तार्त्पर्य वहीं से है, लिपड़े हुई वहीं से, जिसके कोने नहीं दिखाई देते। बेते संतर्धायपर ने 'एमिट समर नाइटस होम' से चट्टमा के कोनो को पहले ही लातर्टन में प्रमुक्त प्रमुख सुमस्या हल कर रो भी। और कहा है कोब ने.

प्रश्त मीन ग्रधर

मुखरित हो जाएँ तो रस बरसे, साज-भरे चार नयन स्यात् उठें, गिर जाए गात्र कहीं अचल के छोर अगर उड जाएँ होले से शर्मए स्पन्ति भी मन ही मन कोर्जसत्वम् ?

उत्तर एक चितेर की कृति वर्तुल रेखाओं में सिमटी-सी।

—कःदैयाताल चञ्चरीक

यह उसकी दूसरी प्रकीसरी है। रस बरमता है चाद से। पर अधरों से भी बरस सकता है, ग्रगर वे बोल पढ़ें।

तो यो हम प्रपनी यात्रा में एक दूसरे छोर पर मा निकलते हैं। नये कवि को भोस नीली दिखाई देनी है। पाय भोस नहीं दोसती, पर जब उसपर किसी रण की छाया पडती है तो दोखती ही है। होरे-सी वह क्यो सगती है? किरन पडने से। पर नीली सगती है नीले यादमान की छाया पडने से।

चाद ग्रार्रना-मा भी सगता है।

चाद दही-सा भी दीखना है। यह मुक्ते ग्राम्यत्व दोप जैसी सटकनेवासी चीज

जैसे कती का जीवन कोमत होने के कारण शीघ ही समाप्त हो जाता है, परतु वह सहन नही मरता तो दु स उठाता है और स्वब ही अपने वल पर जीवित रहता है, उसी प्रकार यह मनुष्य भी है। यसिंप कवि ने यहा प्रकटन उन से वर्ग-सम्पं की मान्यता की वल दिया है कि उच्चवर्गीय कता सरक्षण में पतने के कारण अग्रवत है, और लोक की बिद्रोह-मरी आकाक्षा की जीवत रसनेवाली कता स्वराक है, किंतु वह इसे इतना प्रकट नहीं करता, जितना इस सत्य को कि मनुष्य की पारणा को जीवित रहने के लिए समर्प करना ही मानस्थल है। क्या कि बन्द करने कि सर देगा, यदि हम मान से कि यह पत्रनी सहुचित राजनीतिक भावता में ठीक है ? हमें यह नहीं देखता है कि किंव बाहता वया है, इस तो यह देखते हैं कि किंवता क्या हती है।

ब्यक्ति, समाज प्रोर सृष्टि के सबये को हम बहा इस रूप मे पाते हैं कि प्रपनी-प्रामी सत्ता में सौंदर्य है। जोवन के प्रतेक रूप हैं। भव यह कि कौल-सा अंच्छ है, यह किंव के प्रपने दृष्टिकोण पर निर्मेर है। प्रकृति प्रोर मृत्यु का इन्द्र है। उसे इस व्याह ने प्राचा है, जहा प्रपने को जीवित रखने के लिए यह पिट प्रकृत्य में मुन्दरता देखता है, तो उप-पीतिताबाद के प्राचार पर सौंदर्य की साम्यत पत्रामा के प्रति भी सदेशस्य हो उटता है। भीर सब चुछ होने पर भी वह पभी प्रपनी मजिन तक पहचा नहीं है.

कूत लिल-खिलकर सदा मुरमा पहुँ माज विस्मृति ने पड़े मधुनास है भूम मस्ती ने हवाएँ जो वहीं माज वे ही बन गयी निश्वास हैं साज यौजन की सभी भँगडाइयाँ हो रही मपनी स्थाम ने बूर हैं, सा गई मजिल स्थार वे दर हैं।

— जुलदीप

मनुष्य की यसनी भावना ही सबको प्रतिबिवित करती है। हास हैतो सब हस रहा है; दु त है, तो सब हो रो रहा है। भिया मा भिया के रूप के खाबार कर ही सही, परतु वो कुछ उत्तका प्राप्तव्य है, वह प्रभी उसे मिल नही पाया है। धपनी विवसता की कुरूपा गरि मनुष्य अहाँत पर लाइ देगा तो क्या पाएगा वह ? क्या इसके उत्तर में करा वा मकता है कि मनुष्य ही कुरू नहीं बनता, महित में भी कुरूपता होनों है, तो क्या गह भी एक पढ़ें साथ नहीं है? सौंदर्य प्रपने-भाग में नही, वो नतमों केशव के ही गरि-पाम में जप्त नेता है। बाब के मनुष्य को प्रकी विद्युत इंटि को दोटना ही पड़ेगा भीर यह याद रखना पड़ेगा कि उपनिचारों के वित्रों ने बच माम गान सनना प्रारम 'पूरा चार' से अन्दर्शय गुज ने इनना ही नहीं रखा है, अनवीबी किरत से उसके हाम सदेसा भी पहुंचाडा हा बकता है। मचमुज बटा मनोहारी चित्र है। आवेक पुण के कबि नमें रच फिरकते है। आव का नीज भी पोंधे नहीं है। जो उपचाए लोक से ब्याप्त हैं, वे भी एक दिन ऐसी ही नहें थी। एक ग्रामधिन है सकहीं दिल्ली

> पनम दिएची में चांदी के स्वर भर गता है निर्भर ग्रवेला विहास नम की ग्रदारी से चदन सदाकर घोता है राकेश सब दिन के दान सरसिज की पाँदों में दुवी किरण को रजनी की मीठी पहलाई मिली जम्हाई विली भरमद की छाया में सारस की जोड़ी सोयो है दबकी-सी चोचें भिला दयसो की पाने योखर के तट से उडती है घुले-पुले हैंने हिसा उजली लहर पर फिसलती लहाएँ पेडो को चय परछाई हिली जुन्हाई विलो कॅचल के पथ पर सूने पहर में वरहा सहमकर भरता छलाग हें फती हुई है ये जो भी भील गायें ज्वारों के खंतों से प्राई है भाग, ठण्डी बयारो से सिहरी हुई-सी डोली है भीगी मकाई-तिली. जन्हाई खिली

## प्रकृत धर्म और दर्शन

किंघर जाऊँ ?

पुछता है मनुष्य ।

प्रकृति से समये करता हू कि मैं छोटा ब्रह्मा हू, तो बया इसमे मभौतिकता देखें? या एक-एक करके इसके रूपो को जानता चला जाऊ?

भौर फिर पूछता है उसका विवेक

मनुष्य । तेरा रहस्य खोलना हो बचा प्रकृति की सार्यकता है ? जब तू इस पृथ्वी पर नहीं था, तब इसकी क्या सार्यकता थी ? श्रीर तु नहीं रहेगा तब क्या होगी ?

यहूदों, ईसाई भौर इस्सामी तथा ऐसे मतो ने सृष्टि का त्रम मानकर भी उसके प्रत तक की ही करूपना की है, इसीसिए ने कब बनाकर प्रत की प्रतीक्षा करने की भावना मानते हैं। बस्तु हिंदु मानता है निरत्तर्थ, एक चन्न। वहुत दिन की प्रतीक्षा वह नहीं मानता,

हाप के राम बन्दा कार्य-कारण देखता रहा है वह । मनुष्य को उसने सृष्टि के सन ग्रंत सम्पन्तों को पणेशा प्रधिक माना है। इस तिए यह दिवार भारतीय चितन में पत्ने नहीं मिलता । वहां तो दियट सृष्टि भीर चित्राट घ्वस मिलते हैं। प्रतय सर्तिम नाश है। परत उसके वाद भी एक सृष्टि है। त्रये कवि में यह परस्रा से उत्तर साई भावना तो स्रव

भी है, परन्तु उसका 'माज' इतना वडा है भीर वह उसे इतना ही महत्त्व देने को विवस है कि 'नई' मास्या सभी तक वह पूर्णरूपेण खोजकर निकाल नही सका है ।

समान, स्त्री-पुरुष-सबय, प्रव हमे प्रशति के व्यापक क्षेत्र मे मिलते हैं, क्योंकि भीन सबय भूतत प्रकृति के घन्तगंत ही घाना चाहिए। यहा हम इसकी विवेचन करते हैं। नया विवेचना है

> है ब्राज प्रतयका द्वावाहन बज-बज उठती है रणभेरी तुम मुख मलीनकर बार-बार इस स्वयं लगाधी मत देरी

> > दो दिदा, न वोँ ब्रहुलाग्रो ब्रिय, भर-नरकर ग्रौसों मे पानी

थे. लेकिन सत्य हो नही पाते। तब वे अपने को सबसे कुछ ग्रलग बना सेने की चेप्टा करते हुए भी दिखाई देते हैं कि मुभे साधारण मत समभो । कहते हैं साँदती मेरा करेगी बया।

> में निपट सीमेंट का है पन्य, मेरे लिए भी है वही राही परम हित सम्पर्ण जीवन का उसीको माध्यम धना में जान सकता हूँ कि छाया दे रहे हैं पेड खशब दे रहे है फूल, यपकी दे रही है चाँदनी

× मेरे हृदय हो तब ती ! चाँदनी सेरा करेगी क्या !

—भारतभूषद्यं श्रयवाल

सीमेंट के पय की यह हृदय के सभाव में लिखी गई कविता कितनी मजेदार है। छाया, सराव, यपकी, सब ऐने जाने जा रहे हैं, जैने धनुभव किसीका नहीं किया जा रहा है।

भव तो विचारा पाद बुछ जली-कटी मुनने लगा। यह तो मान लिया गया कि उसमे कुछ मार्क्यक मनस्य है। एक कवि ने उस ज्योति के फल को देखा। कुम्हलाया पड़ा था। जबत ने उसकी सर्भि ले ली भीर काम निकल गया तो उसे भल गया। ऐसा सदैव होता है। बेकिन विचारा चाद निर्वाण पा गया तो कोई बात नहीं, उसकी साधना तो सफल हो ही गई।

> भाज कुम्हलाया पडा है ज्योति का यह कुल ले सुर्ति श्रामा जगत इसको गया है भूल। सफल इसकी साधना यह पा गया निर्वाण बुम गया पर लींच लाया जगत में सर्विहान हो गया निश्चिन्त रवि को सौप बभती ज्योति के कणमात्र ।

—देजनारायण बरक

क्योंकि वह जगत् में दुभने पर सर्वेरा ले बाबा। ब्रौर अपनी दुभनी ज्योति के कजमात्र उसने रवि को सौंप दिए, वह निरिचत हो गया। भर गया।

इतनी-सी रही शासिर चद्रमा की महत्ता !

हसिया तिए निज हाय में किस म्रोर जाएगा पीयक, यह तो म्रभी मतात या <sup>1</sup> बाती तिए रोटो बडा भाई वहीं जब या खडा छोटा उठा मृंह टोकरी से दूध कहत रो पडा एक पीता पात पा <sup>1</sup>

—शिवमगत सिङ् 'सुमन'

कानिदास का मेथ भी सुर्वरियों से क्षेत्रता था। उन्हें दराता था, उनके कटाओं से बीवन सकत करता था। वह भी पसीने से भीगी मालिनी और किसानों की बयुधों को माराम देता था। सुमन का प्रमात भी किसान-क्याओं को छूनेवाले वाल के कारण सुम्दर हो गया है। किन्तु उसका ध्यान किसी प्रिया के पास मदेसा पहुचाने में नहीं है। उसे मनुष्य की मूख सता रही है भीर इसलिए प्रमात को वह नहीं देख पाना। यदांग बह बहुन मुद्दर या। उसकी दृष्टि किर भी प्रतीक रूप पीने पात को घोर जाती है, जो जराजी में सा। वह मुंग होकर पीने पात को घोर जाती है, जो जराजी मा। वह मृत होकर गिरा या करणा का अध्र वनकर, होने ही अवस्थाओं में वह प्रमना समान प्रमाद छोड गया।

स्त्री ग्रौर वह भी जो कृतिमना से दूर कविका ध्यान ग्रपनी ग्रोर ग्राकणित करती है, बयोकि वहा उसे सहज जीवन की भाको मिलती है

हुं। उस पहुंच जावन का माका प्रस्ता है। उस पहुंच जावन का माका प्रस्ता की रात्रों ।

इसकी बांहें नहीं कमल की नाल सरीखी को मत,
इसकी बांहें पूर्व जोम की शालाफों-सी इसामल !
कमक कटोरे नागरिकाफों को ही रहें मुबारक
विद्या के शिलरों-सा उन्नत है इसका बसस्यल !
इसकी मांखें गीत मृगी-सी नहीं विकल या चयल
इसकी मांखें गीत मृगी-सी नहीं विकल या चयल
इसकी मांखें गीत मृगी-सी नहीं विकल या चयल
इसकी मांखों में सम्या के थीर, मांबले बादल !
इसकी वितवन में हैं सीखे तोर न तेन के तार !
हससामित्री या गजामित्र देसे नहीं कह सकते,
इसकी पति जगल के महतेनी सहुद सम्सानी

—रामहुमार चनवेंदी

## संवेदना और स्वानुमूति

मनुष्य प्रकृतिका स्रग है, स्रोर स्रग हो कर भी उसे जीन लेना चाहना है। क्लि दूमरी बोर उमरा समाज स्वय वहुल दु सी है। यह एक द्वन्त है। वह महति का आनन्द लेता है, तो मनुष्य का दुष वह कहा मिटा पाता है ! यदि वह समाज की विषयता मे ही जरूडा हुआ रहता है तो प्रकृति के बारे में वह लिखता ही क्यों है <sup>?</sup> ब्राखिर उसका प्रकृति के प्रति दिटकोण क्या हो ? यदि प्रकृति एक रहस्य है, तो कवि उमे रहस्य के रूप में ही देख सबेगा। यदि प्रकृति एक निरतर चलता रहनेवाना किया-व्यापार है, तो उसका चित्रण मनुष्य के हृदय में क्या संदर्भ रमेगा र प्रानन्द वह यदि उससे प्राप्त करता है तो उम ग्रामन्द में जोक को क्या लाभ ? यदि दलितवर्गों को भी प्रकृति के चित्रण में प्रानन्द मिन्त्रता है तो क्या वह मनुष्य को उसकी विषमताओं के संघायें से ग्रलग कर देना नहीं है <sup>?</sup> ऐसा काम क्या ग्रततोगत्वा यही प्रमाणित नहीं करता कि कवि बास्तव में उच्चवर्ग के हाथ में खेल रहा है ? यदि समाज के ही चित्रण में कृदि इव जाता है, प्रकृति के सेलो का सौंदर्य इसलिए नहीं देखता कि उसके पास तत्नाल अन्य ग्रीर ग्रधिक महत्त्वपूर्ण समस्या है, हो नया वह मामशोवस्की की भाति ही केवल जागरिकता में हो फमा नहीं रह जायेगा ? ऐसे लोग जो तत्काल को ही सार्वकालिक मानते हैं, यह भी मानते हैं कि मनुष्य वा मनुष्य से पहना सवध है। प्रकृति की रहस्य के रूप में क्यों रक्षा जाए, जब विज्ञान निरतर उसके रहम्यों को सीलना जा रहा है। ऐसे समय में प्रकृति की उपासना करना मनुष्य की प्रगति की अवहेलना करने के समान है। किंदु अन्य विषयो को यह जीवन की एवा साधिक-मी ब्याल्या मालूम देती है। वे मनुष्य की चैतना को ग्रीधर व्यापक बनाना चाहने हैं भीर मनुष्य-ममाज के भीतर ही छमे वद नहीं कर देना पाहते। वै प्रकृति के विराट कार्य-व्यापार को देखना भी चाहते हैं। इन्ही अनेक मम-स्यामों ने नये कवियो को प्रवृत्ति के सबध में एक बेदना दी है, जो कति-जीवन के विभिन्न कार्य-व्यापारो के माध्यम ने प्रस्पृटित हुई है। इस नई चैतना का एक रूप यो 춁

> लवक-सरक कर चलने वाली हवा सनोरी सहर बन गई नई चेनना के सागर की

जमुना के उस पार सहसहाते हरे खेत उठता है एक स्वर

प्रावी देती-देती, निराती-निराती
 प्रतावी देती-देती, निराती-निराती
 निरादे देवारेवन से हारमाता-मुस्करता होगा
 योवन-पन, जाहो की नरम-गरम पूप
 सण-भर विस्ता होगा उसका मन
 करपता-निभृत निकृत मे
 एट वसे हैं ये श्वर के मधु-दूत सासता की उप्मा ले
 प्यार की मदिर सुपिस ले,
 प्रतीक्षा की मुकुलाहुट का सन्देश मुमे दे रहे
 जाओ ठण्डे पवन भलोरे दूर मुम्मे परवाह नहीं है मान तुम्हारी
 मत सहामों मेरा भाषा तथा
 नहीं वाहिए मुमे सहनते, तेरे ये सब फूल—
 दिखाबट: सुरिभरहित,

में खिचता जाता हूँ जमुना के पार, उस पार लहुतहाते खेतो के बीच जहां से स्वर उठते हैं

—रातुष्नदत्त दवे

हिनु पहला वित्र टूटते ही किन कुछ व्याकुल-सा हो जाता है। इंपक बाता -ग्राम युदती की घठाम, उत्तका योवन, पूप, जावें की नरम-सरम पूप, क्षण-मर वित्तमता उत्तका मन और फिर यह देखता है कि उत्तका माया उप्त हो उठा है। सहजने के फूलो में सुर्रीम क्यों नहीं है, यह सवाल सामने जा सदा होता है। ये सफेट फूलों के और प्रव उत्ते प्रच्ये नहीं सुरीते।

लोक-जीवन भी किव के मानस की सबस्या के प्रमुक्त ही सपना स्यान काव्य मे प्राप्त कर पाता है। वो वे नये जिम वस्तुत पय का सन्वेयन ही हैं। अपने-आप मे जो जिन पूर्व हैं, वे सपने साक्येंग के कारण ही। सिक्त सुपमा है उन किताओं से, स्नापुम्ति ने बाह्य जित्रण को हटा दिवा है। 'शामवपु की विदा' में कित एक स्पूर्ण चित्र सीचना है। यह सारे जिन स्वय्योंत जीवन के विपत्ति से और से बाहर जाने के प्रयत्नों को प्रस्तुत करते हैं। विदा की घटी पव सा गई है और वसूजा रही है।

बिदा की घडी है कि दप दप दपादप बहे जा रहे दोल के स्वर पवन मे भारतीय परपरा मे वैमे तो प्ली-भितन की परपरा है, परतु ब्रेम-भितन भी कम नहीं है। इसीतिए स्वकीया का महत्त्व ही कार्य रूप मे प्रयोग करतेवालों ने राया-कृष्ण के परकीया प्रेम का रख खूव स्थित होरी एक्टाब करतेवालों को प्रारता-परमाल्या का ताम तैकर चुप कर दिया है। हमारा नया किंव किसी दूसरे को पत्ली को नहीं चाहता, कृतारी-भैन ने रख है। समाज कमें मुखने नहीं देगा। मुजाब के दाव्यों के

> हदें वह बीप रखी हैं हरम के पासवानों ने कि दिन मुजरिम हुए पैगाम भी पहुँचा नहीं सकता।

जहां तक हिंदू समाज का साधारण मानियंक स्तर है वह नुस्तरीदास के काव्य के लिए उपयुक्त है, जिसमें समाज के प्रतेक पक्षों का धामिक विवेचन है। इस्के-मिजाबी पहलें भी थे, तेकिन उन्हें केवल मनीरजन के लिए विया बाता था। प्रत प्रशेषी पढ़े युवकों ने व्यक्तिपत्र के प्रस्ता प्रस्तर प्रवेची पढ़े युवकों ने व्यक्तिपत्र का स्वता प्रस्तर एवं मिष्मी एवं मुंग के प्रतिचार का स्वता प्रस्तर एवं मिष्मी एवं है। तो नया कि प्रांत पाठकों में मध्यवगें से नीचे नहीं उत्तर पाता। निम्म मध्यवगें भे भी नहीं, क्योंक दैंगिक जीवन ऐसा पिरा हुमा है, प्रभी तक प्रयंच प्रांतिक कार्य-वाल के प्रयक्ति प्रांतिक त्रांतिक कार्य-वाल के प्रयक्ति प्रांतिक तीव कार्य कार्य कार्य व्यक्ति धागुनिक मान्यनाप्रों ते पूरा मेल नहीं वपता।

दास-जीवन में कवि ने स्वतंत्रता को प्रमुखता दी।

म काव न स्ववना का प्रभुकता द्वा ।

पूल जडती है नगर में

सौक भटमंसी जतरती,

श्रीर दिन की हृद्धियों की

राख है नम में दिखरती !

कौरती है सभ्यता,

दौवार पर दोवार गिरती

श्रीर टूटी मज़ारों पर

श्रीत है सो धार गिरती !

बड रहे पहिंचाल मदिर

पूजते है मारती से,

श्राज मेरा भीत प्रेरित

है स्वयं भी सारती से।

—ৰন্যবাহা

दिन की हिट्टियों को राख नम में उड-उडकर विखर गई। सम्यता कापने सभी भीर युवानी दोबार डहाने सभी। मेकिन दोबार पर दोबार का मिरला जिस गठि को बताता है, वह बाब्य-मत्य है, लोक-मत्य नहीं। साम भी स्वतकता, साम्रोमकता एटे-

—बारेन्द्र भिन्न

तुम्हारो नाव क्या तर से बंधो रह जाएगी लहर को काटकर प्रपना निराला पथ बनाने को नो सपर्य में सजीदमी से दूब जाने को बड़े विस्वास से पतवार को हमने चलाया है तुम्हारों नाव क्या सम्बद्धार से घंबराएगी।

> नई काशा नई हिम्मत नये मलार वाले हम नहीं जिसको सुवा तुमने वही हुकार वाले हम हमारी दृष्टि में जिभीक साहस हो समाया है बुम्हारी ग्रांस क्या नीचे मुकी रह आएगी?

बहु नये समार का रहनेवाला है। उसमे नवीन साहस है। जैसे बालक को सब कुछ नया-नया-सा सगता है, नये कवि को भी वैभी ही अनुभूति होनी है। यह बाति के जागरम का चिल्ल है। पुरानी जाति से यह दृष्टि प्राय भीभन्न मी हो बाती है। तो यह है नया साहस। प्रवृति साह्यान की भी उतनी ही सहारा है, जिननी वह पत्तापन को। कबि-हृदय इतने में हो नोमित नहीं है। वह प्रपने चारों स्रोर की सुद्धि को भी

नवीन स्कूरण से भरा हुआ देखना चाहता है

नई यति दो पवन को क्रीर
सागर को नवा-ना ज्वार दो
बही सफ्ता परा को दो
बहा सफ्ता परा को दो
बसाने का नवा जो द्वार हो !
समय की बॉमुरो फोर्ड
नयेंस्वरकी नयों अनकार दो !

नयें स्वरकी नयीं क्ष्तकार हो ! नई पीड़ी ! न सीफी सीरियों में यह सबेरा है नवा हैंसा वह भीर का सूरन भेंभेरें का समन्वर यो गया । ग्रेथेरें में स्वा देते हमारी

नींद के भीके हमे सुमारो में न पी लेगा भना निर्माण को विष्यंत क्या है सुनहरी जगमगाती पूर्व की

रेंसा किरण के जात से

जा रहे हैं, यह पता नहीं चतने पाता । सितारे भी रमा करने पर उताक हैं । चाद सोने नहीं देता, क्योंकि जवानी तो हर हातत मे जवानी है । और देह और मन को हात यह है कि मसमय में ही पतम्मर छा गया है। जिसकी जड़ों में पानों न पहुंचे, उसका धौर होगा भी क्या <sup>1</sup> जो कुछ है एक गरीब की हसी उदाई जा रही है। किसीमें भी सहानुभूतिनहीं।

तद एक विद्वास और बोजता है

सौदी के सौपी-सौ बल खाई गदियों की
कल-कल, दल-धन के उस पार—

कि, देशी !

पर्वत की उस स्याह ऊँचाई पर से कोई भीक रहा है,
उठ सकती किस हद तक जंबी
इस परती की कुचली मिट्टी,
साल पर से झासमान पर प्रांक रहा है।

—नवरत्न म्वर्णकार

माशा बहुत बड़ी है। दूर पर जहां परिथम का फल दिलाई दे रहा है, जहां मपने ग्ररमान पहच रहे हैं, जिसे हम एक ऐसी अचाई समक्ते हैं, जहा तक पहचना श्लाध्य है, बहा तक कवि का विश्वास उठता है। इस घरती की कुचली मिट्टी कितनी ऊवाई तक उठ सकती है। देख रहा है प्रकाश का प्रनीक कि मनुख्य की गति कहा तक हो सकती है। वह मनुष्य जो कि कुचला पड़ा है, उसका उत्थान कहा तक सभव है। प्राय ही मादी ग्राज मानव ग्रीरजीवन का प्रतीक है। कल तक इस मादी को भौतिक-भौतिक न्हकर इसे तिरस्त्रत किया जाता या, क्योंकि मनूष्य को झात्मा के रूप में देखा जाता या । ब्राज निव के दिष्टिकोण में यह बहत बहा परिवर्तन श्रामा है कि माटी को वह ब्रह्म-धिक महत्त्व दे रहा है। भारमा क्या है ? माटी की ही चेतना है। उसे माटी से अलग करके कोई देखना नही चाहता । यदि शकराचार्य होते तो न जाने कितना शोक करते । तलसीदास होते तो इस बात पर मिर घनते कि जो सरस्वती राम का जप करने की मिली वह माटीस्तोत्र गाते हए नहीं यक रही है। आज के कवि को यह बहुत करके लग रहा है कि उसके बास्तित्व में महत्त्व हो या नहीं हो, परत् उसका अपनान अवस्य हो रहा है। सारारा में मैं कह कि माज उसका ग्रहकार प्राने विवयो की ग्रपेक्षा कही ग्रधिक है नयोकि वह सब-मुख प्रपने लिए चाहता है, जबकि पुराना कवि मानता था कि यह सब भपना नहीं है, हम तो एक सराय में ग्राकर बने हुए मुसाफिर हैं। इसरा कवि कहता ŧ

> लहर सागर का नहीं श्रृगार उसको विकलता है,

रन-मो हा बांघो है। गति इतनी है कि ब्यनि निकसने लगतो है बैसे नालिदास के मेपदूत मे रान्द, कही-कहो क्या, प्राय हो ब्यनि मुजाने सगते हैं। नीरज की विशेषजा है
उत्तरी भाषा की सरस्ता। समय के सावन की कल्पना भी नयी है। यहा विवि भेष भीर
काति को मिला देता है, कितु यहा यह विरोध भी उत्तन करता है। वापनेवाला भी
निरक्त माटी हो जाता है, भीर बादस भी। प्रतिनिचा भीर शान्ति का एक-साधत ठीक
नहीं अर्चता ! किंतु किंवनी में यह भावना उतनी खाद्य नहीं है, वितना है उर्चका सखीव
विवश, किंव के स्पने सर्थ में भीर काव्य के सर्थ भे भेद है। काव्य ना सर्थ दसीसिए
मुद्द वन पढ़ा है कि उसमें भीनन का वित सुद्द कर से उत्तर साया है। बहाति के दुर्दम कर की भी जीत सेना साम बानव की प्रकाश हो गई है

प्रलय में, तिमिर में, न तुफान में भी कदम ये रके हैं न रक्त पायेंगे हो। न में चाहता मुक्ति को प्राप्त करना, न मै चाहता स्पक्ति का रूप धरना. सभी विश्व मेरा. सभी प्राण मेरे चर्तगा सभी विश्व को साथ धेरे. सभी स्वप्त हैं देखते एक मजिल सभी जापरण में निहित एक ही दिल भटकते हुए भी उपर हो चलेंगे मदकते हुए भी उपर ही चलेंगे बहाँ फूत-सा विश्व शिलता रहेगा सहर पर जहां सीश मचलता रहेगा जहाँ एक हो जाति होगी धरा पर जहां एक नर पाति होगी घरा पर जहाँ सघ मे प्राण अनुरक्ति होगी वहाँ प्रेम होगा—वहीं शक्ति होगी, वहाँ स्वर्ग होगा मनुज के हदय से किसी दिन कभी सी पहुँच आएँगे ही।

> —उद्दयशहर भट्ट टी । प्राचीत सीर

प्रतम, तिमिर, तूफान, इनमें न मनुष्य के दम वपे हैं, न रहेंगे हो। प्राचीन ग्रीर मध्यकातीन कवियों ने भी इस एस को ग्रीर प्रकार के सन्दों में प्रभिष्यक्ति बोहे। किंदु इतना व्यापक रूप हमें कम मिसता है। एकत समार को धारित की कामरत तो बहुत प्राचीन कवियों ने भी की है। नया कवि सर्वत्र जामरण की प्यास देख रहा है। वह सेसा धिसे हए पीतल-सी पाडुर पस मास की धूप सुहावन इत्रतवादी भीरोग गौर-छवि तिस के गालों-जैसी मनहर यस मास की घप महावन कटी हरी पर बंठा है चिर रोगी वेटा राधन के चावल से ककड बीन रही पत्नी बेचारी गर्भ-भार से ग्रसस-शिवस है श्रम-श्रम, मंह पर उसके मटमेली ग्राभा, द्यापर पर बैठी है विस्ली किसके घर से जाने क्या कुछ ला ब्राई है चला-चलाकर जीभ स्वाद लेती होठी का सब कुछ है, कोयला नहीं है क्री काम चलेगा बोलो ? चादल नहीं सिम्हा सकती है रोटी नहीं सेंक सकती है भाजी नहीं पका सकती है नरम-नरम ऊनी लियास-सी

पस मास की घुप सुहावन ।

—न्यमार्जन

धिसे पीतत के रण को-मी पूप। बहुत सुन्दर िवन है। एक स्वरंब वातक के पानों जैमी पूत्र की पूप। धौर फिर वह झाना है घर की धौर। बहा कोपता नहीं है। बिना नोपते के रेस ना इजन नहीं चतता। नामांजुंन को नविता कैमे नले? धीन ही नहीं है। पूस की पूप ना नवि बचा करें? प्रकृति नो पहली मान है पेट की भूख मिटाना। दूसरी मार्ग वाद से प्राती है।

जीवन के देनिन समयं दर्तने नटोर हो गण है कि किन पुटा जा रहा है। मूने निन को पड़ोस में बुद्ध चाट साई किसी दिनती सुनी लग रही है कि वह बटे प्यान से उसरो निहार रार उसना पूरा नर्पन करता है। जब यह समस्या नहीं रहेगी, सब सबस्य इस बहिता वा महत्व नम हो जाएगा, दिनु साब वो दसने तीनेपन में दासि है, यह जिल्हुन ब्यनन वात है। मिन नी दुष्टि राम सोर नहीं, सब ही सोर होनी साहिए। यहा सामोश पय पर सम्पता, सस्कृति पुनीत---म्रादर्स का बोभ्श उठाए जा रही बुनिया ।

<

वही मुक्ता रहा है छुत कि 'हम ऐडवर्षसाली पूर्वजो के पूत्र जितकी कीति यो धन्तुम, हडारों दास-दासी सेपचुन्त्री भवत उन्तत, हायी, प्रस्त, सुन्दर रय, करहते छुत, युनहरी भासरों से धृक्ता ! ' वही सुपता रहा है छुत कि 'हम धौताद हैं' जन महामाहो की, नयावों की कि जिनके महल धालोसान, बरसता या विभव जिनमे हरम में बोगमातों, लीडियो से भो' गुलामों से चृहत रहती सुबह से साम, भनकते युंधरभी की छुम प्रश्न थराव, नवदि नात, नाजुक हाय साकी को केटीली तीर-सी नवदें, सलकते लव भीर ये मम के छलकते जोष ।

—देत्रेन्द्रनारावण वर्मा

तो यह बहुत स्पष्ट है कि घव प्रकृति विवण में मनुष्य और उसका समाज प्रमुख रखान के चुना है। प्रकृति के वर्णन से कब किव हमें कहा लाकर ठहरा देगा, हुण इसके बीज में नोई रेखा नमें खीज सकते। यह नमा अनुभव करता है, वही उसकी विशेषता है। तो महा हम गह चह सकते हैं, प्रकृति को गोण स्पान मिला है, प्रमु को खोज के कारण, वगोंकि मद प्रहृति अपने-माप में कुछ नहीं। यह तो मनुष्य के सुख-पुष्त की छात्रा से प्रस्त है। यह यह भी कहा जा सकता है, धान प्रवृत्ति को उद्दीवन के रूप में प्राय देखा जाता है, यह बात और है कि उद्दीपन के साधार बदल पुके हैं। वे व्यक्तिपरक से यह करने समाजपरक होने की धोर उम्मुख हैं।

'ऋतुमहार' में नयी दृष्टि ना भेद रेपट होता है। कालिदास के 'ऋतुमहार' रे मान का कीन नितानी दूर हो चुका है। भावना के क्षेत्र में उसमें भी नहीं 'रित' है, परत् पान करने ना हम ही वदस गया है

> भेरे हाय के प्रवीर से यह प्रभी तक लाल है प्रीर, बेली की कीडियों की मेरी माना से प्रभी तक सुपधित तकियों के बीच में पढ़ा यह तम्बा बाल प्रिये, तेरे वियोग में मुक्ते बेल रहा है।

वालिदास की सधन ने श-राशिया आवर एक बाल में सिमट गई हैं। और यह

यास्या दोनो के साथ-साय चतने के कारण दो प्रतिष्ठापनाए सग-सग चतनी है, जिसका फल होता है दिचार घोर भाव का साथ-साथ दिसाई पटना । कमी-कभी हम व्यापक में भी महोच को देतते हैं .

> त्रतोक्षाकी बहुत जोहा बाट जेठ बीता, हुई वर्षा महीं, नभ यो ही रहा खल्बाट ।

बाज होगों, सर्वात, वर्षां, हो रहा विश्वास हो रही है प्रवत्ति पुलक्ति से रही नि स्वस्त किन्तु अपने देश में तो मुमूबि, वर्षां हुई होगों एक वया के बार या रहे होंगे मुदित हो ले खूब मलार मर गई होगों सहे थह वाम्मती को बार उने होंगे पोखरों में कुमद, पदम, मखान

×

—नगार्जुन

धाकाय का प्रस्वाट रूप बच्छी यभिव्यक्ति है। पत्याट में दो भाव है। एक तो यह कि महा में एक समृद्धि उन्हें चुकी है, धीर दूमरी यह है कि घर नहा जुख जमेगा भी नहीं। यस्ताट में कुरपता तो है, परंतु नीरस्ता भी है। कि सब बचने देख को सार करता है। यह वह सकुरित हो जाता है, वयों के दीर घीर जन्मभूमि को मिनाना ठीक नहीं है, मीर फिर एक मूलफ की मयाबा निस्वय ही यह भी मान ज्याती है कि दूसरा भूतक जुरा है। भीर कवि बाकर बहुत कर गया है। दस बिजा का रख नहीं से सकता है, विक्रके पहा जर्या करी हो जाती हो। सोभाग्य से माने किया में यह होड महो बती है वर्षीय स्थाप नहीं के एक पार्ट एक स्थाप है, विक्र से अकल बहुत जह है, विक्र से अकल बहुत है। स्वार्ट के प्रस्ता के प्रकार के हमारे स्थाप कर से अकल बहुत है। स्वार्ट के प्रकार के प्रकार के से अकल बहुत है। यह स्तार माने हैं । स्वार्ट को पहा सुरराह है, यह से दिका नहीं है। स्वार्ट को पहा सुरराह है, यह से दिका वर्षों का वर्षों का स्वर्ट की स्वार्ट के कर से नेवाला इसका प्राप्त ।

'एक क्या के बार' में ताल-पोखर लवालव दीखते हैं और वर्षा ऋतु का सारा ग्रागार सामने घा जाता है।

शुराना कवि सुदर को ही अपनाता था। सम्मवि अस भी अधिक विविधता

हमारे वहा नही माई है, फिर भी ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं। 'बबूत' एक ऐसी ही कविता है। बबूत पर बसत मागा मीर वह हरा हो उठता धिन - यान प्रभु तोरे बदरा - बदरिया धिन-धिन हल-बेल धिन-धीन सेतवा। धिन सेतिहारिन प्री'धिन है किसनबी जाके बल लह-लह ऊत्तर फ रेतवा॥ प्रवक्ती हो ग्रीरीतना चलत बयरिया मचित-मचित जात सेतवा के धनवा॥

×

स्रव न पसीना वही विरंपा बेगार जहहाँ, स्रव न समनवी मा विकि हैं गहनवी। सर्व प्राप्ता पूरी करी हरा-भरा खेतवा प्रवता विदेशे जाड़ मीरा य किसनवी।

—चद्रभृषय त्रिरेदी

मध्यकालीन कविता में ऐसे सुन्दर चित्रण हुने सेनापित में प्रवस्य निवते हैं ! शब्द-नाित्य के प्रतिरिक्त को नाया का चमत्कार सेनापित ने साथ में रस्सी-सा बट दिया है, उसके कारण वह हाथ में भरसति है। यहा सहज कर्यन है। सरपारायण के पोए- पोए पात भौर नजीर के सेतों के-से थे खेत मुहावने हैं। हिंदी की बोलियों में कितनी सामर्य प्रमो दवी पड़ी है वह स्टट प्रकट होता है। किनु प्रत में कविता में कृषक- सवजन सा सा जाता है। धीर प्रकृति मानो मनुष्य को वय बोलने सपती है। किन यह नहीं मून पाता कि यह सब मनुष्य वा रचाया हुआ सीदयें है जिसके बत अपर भी तह- तहा रहा है। जैसे— 'यन चर्च पिरिवर गहन।' ममवान की दथा है, बैसे ही वह मनुष्य को प्रेट्न का नाती आहे। कि सिंदर के सिए विदेश जाना करिय वाना है भीर स्वयन है कि किन्द मनुष्य को प्रेट्न का नाती आहे। कि सिंदर सहन।' समवान को दश है से हार से सेटिंट से बार से प्रीटिंट से सार्विरास के 'दीटिं दे उसकी सत्या करिय

यह प्रवाद का यहला दिन गिर चुका दोंगरा गहरा युले हुए सब पेड, प्रकृति का आंचल किर से सहरा। उनड़ी सोंघी गय मटेली तपन मिटी घरती की, भाग लिल गई मुरुसाई कलियाँ किसान के जी की।

किसान के जो की कलियाँ मिली । पेट-पते साफ हो गए। घरती से सींघी गय उठते सभी भीर तपन मिट गई। भीर चिता के रूप में घर भीर प्रकृति दोनो साथ-साथ मितते हैं

> बहि-बहि में धलते जाते मेहिए के भी सपने जबकि कटेंगे धान सुनहुले दिन भी होंगे अपने

सग-गय यहु-रग मेघुर फल - दल - आस्वादन यन-विहार पॉलें यसार लयु भार परन-तन प्रत्याहत, निश्चित, तानल प्रपनी दिनवर्षा क्तिया धागामिनी पामिनी ही प्रिय चर्चा या कि विषक के फरे से बचने का कीशन प्रवा सोच-विचार रहीं—प्राने बाला कर कीन कहे, मुंद सोच रही, बचा बोल रही है मानव-मान-या होगा उनका भी चट्टल वित?

—वानक्षेत्रलय प्राप्ती

महत्र जीवन का कितना नीमल वर्णन है। ये दो पशी भारतीय दर्गन में पहली

बार उपनियदों में पाते हैं। एक मन से वे बारमा के ही दो रच हैं, दूसरे मत से वे बारमा

मोर परमारसा हैं। किन्नु जानकीवन्तम के पती किहत की एक वाई के खतु में पते

परि वृद्यों को याद दिलाने हैं। कीट्स ने कहा है—नवा इन नुशों को भी याद बाती हैं

पपनी पीटाए वही नाव बीधना है कि क्या इनका मन भी मनुष्य जैवा चचल होगा?

नवि अपने जीवन को विताए देखकर पशियों के जीवन से तुनना करता है। उसे वे

निर्देशन वगते हैं। बहुत ही सूरम रूप में कि वाजन के उद्देश के बारे में पूछ रहा है

कि भविष्य क्या है ? ज्या स्वामायिक रूप में जीवित रहना हो काफी है, या मनुष्य के हर

में वो यह प्राणी सपने की इतना प्रविक्त महत्त्व देना है, बड़ी प्रमुख है ? क्या प्राणी-माद

प्रपत्न को मुरिशर रसने की वैष्टा में क्या हुधा नहीं है ? व्यावक है यह दृष्टि को धानामी

सार का में भी यही समस्या रनेशी नयीकि इन प्रस्तों को मनुष्य बहुत दिन से सोधता चला

प्रार्त हो।

सत्तर सोर निता जीवन के दो रूप है। एक है सनने सस्तित्व का पूर्ण सानत्व सनुभव नरता, दूसरा है उसे बनाए ररामे का अवला। बन्तृत यह अवला भी सानन्व मी ही आजि वा एक साभत है, एक अतिहप है। प्रयत्न विना जीवन नहीं है। सब बहे जा रहे हैं, किनु सानी इकाइयों में भी वे उनने ही सन्तीन हैं, जितने अपनी सामृहिकता में। एक निव पुछता है

> बोल-योल गम मोन, गुनहगार है कीन ? जीनेवाला या जीने की चाह ! बोवाने मन ठीक नहीं है कमी किसीको दलना मृखु बहुत मधी है मेरे

हो गया है, इसी प्रकार कवि प्रकृति से प्रेरणा तेना चाहता है। सम्य पुग के उन्नयन मे घुणा का आयोश देखकर वह यह कहता है कि विलदान मुक्ति दे सकता है। स्याहियो में जिदगी की ग्राम के पल की-सी रेख बहुत मुदर कल्पना है, जो काली घटा में चमकती हुई दामिनी के लिए की गई है। दूरा स्वयं अपनी तस्वीर गढ रहा है। यह युग एक नया 'पात्र' है, जिसका नये स्वरो से गायन किया गया है। इसका रूप क्या है? एक भावना-मात्र । नयी कविता का यह नया 'नायक' है । जिम प्रकार पुराने घौर मध्यययो मे नायक के साथ प्रकृति वर्णन होता था, उसी प्रकार इस नये 'नायक' के साथ भी होता है। वह कितने ही प्रकारान्तरों से होता है।

वह ग्राम, लोकचित्रण से लेकर, उदबोधन और नवचेतना के गर्जनो के ग्रात-रिक्त हमें व्यक्तिपक्ष में भी मिलता है। वहीं कहीं हम प्रकृति में नीति परवता सदश

दर्शन की भएक भी पाते हैं

यदि फलो को सपमा चाहो सीखो पत्थर बनकर रहना यदि मानस की सीमा चाही सीलो बधन बनकर रहना मेने दो चिह्न बनाए हैं जिसमें चाहे उपती घर दो।

--शिववहादुरसिद्ध

फुलो की मुयमा के लिए पत्यर बनना और सीमा प्राप्त करने को बधन बनना, दोनों ही विरोधी तत्व हैं। दर्शन के क्षेत्र में दोनों उचित हैं। जो मुक्त है, वह असीम है अत अनत दाह है। जो केवल नोमल है, सुदर है, वह जीवन की स्थिरता और सवर्ष से दूर है। मत यद्यपि फून और पत्यर का कोई सबध नहीं है, फिर भी बात बैठ जाती है। यह प्रकृति का नये दग का चित्रण है। अलकारसास्त्रियों को भी नयी कविता से गतोय अवस्य हो सकता है

वर्ण-वर्ण भेरी कविता के माविक बन-वनकर आते हैं

मी कल्पना-तरिण में पग रख पथी पार उतर जाते हैं। इस गतिमय घारा के बढले श्रव मृत तट का गाम न सुंगा।

सतमेया के दोहरे - नाविश के तीर थे। प्रत्र वर्ण ही नाविक है और कल्पना की नाव में वे पाव रमकर पार उत्तर जाते हैं। कवि को यह धारा पसद है, क्योंकि उसमें उसकी नाव तो चलती है। मुर्दा किनारे को तो वह नाम भी नही लेना चाहता।

उपनिषद में यह भगडा आसा है कि आस, नाक, बान और प्राण में कीन सबसे बडा है। ऐसी बल्पनाए जिनमें व्यक्ति भीर परमात्म के इन्हें हैं, पुराने सुगो में देवता इतिहास के उन स्वर्णहम्यों पर विद्ता । उच्च वह भ्रासाद पौजन का गुलाबी तिए स्वप्नोम्माद, जिनको जर्दे शिवती मनून-शिशु की विद्युत सीणित राशि से ! बतता पियानो, प्रेम का फिर स्वाग होता, क्षोर मेरी रेखनो की सुलती सींत डबोकर अपने करिने के सह में में मनोहर पीत सिलता !

— चनतकुमार पापाण

म्रव सत्ता का प्रश्न इतना नहीं रहता, जितना यह भाव जागता है कि जीनेवाले जो बयो नहीं पाते हैं गीत के प्राकास में मान-चदा हसता है। बस्तुत यहा प्रकृति नहीं है, किंतु यह मुक्ति का ही रच्च क्य सामने जाता है। सागर, नश्चम, स्वर्णमा, सब ही हमें मिल जाते हैं। इसे बीती के रूप में नया हो समस्ता चाहिए क्योंकि यहा उपमान ही प्रमु-खता प्राप्त करता है, प्रत्यपा इसमें कोई विशेषता नहीं है। शहीदों में याद के दीए, सोजित मीर शोषण, मेंम का स्वर्ण पीर लड्ड में बूबों कलम, यह सब बाद में तब ही मुप्ता प्रभाव दिखा पाते हैं जब वह पहला बिंग हम स्वर्णसाल कर मेते हैं।

कविता मे रगीनी इतनी मधिक है कि वह मात्रोदा नहीं जगाती, विस्मय जगाती है मीर इसलिए इसकी शैनी के मनरूप ही इसमें विषय का भी चमत्कार है।

समाजपस का यह रूप प्रत्येक कवि में प्राय मिल ही जाता है, क्योंकि यह तो धुम का प्रभाव है। सीपे-सीपे जो कह देने हैं, उनमें ऐसा सीदर्य नहीं झाता, दूसरे प्रकार का मिलता है।

. सौंदर्य ही मूलत केन्द्र है। दर्शन, मनन बीर चितन, मूलत उसीको साकर प्रस्तुन करने की चेट्टा में लगे रहते हैं, कवि कहता है

किसी प्रपंतिसी प्रांत को ज्योति पोकर परी बात तेरा विता फूत होगा। किसी बूंद की जिंदगी सीचता हूँ नदी की लहर में कभी मौन सोई कभी हैंत पढ़ी, चौदनी से गठ सित, कभी बादली का हर्य ऐंद रोई, मगर प्रत में बंद, भूगार तेरा

जीवन का यह सपर्यं बताता है, कि जीवन ही से जीवन को प्रथम प्राप्त ्रात्स है घोर यह गुमास्यक परिवर्तन अपनी मात्रारमक्ता के भेद से नए-नए रूप भारण करते

नदीकी निमति पर बैंघाकुल होगा।

कर दिया वह धन्य बनवासी सभीर ।

हिर्तित ग्रु ति जीवन-शिला की एक मीठी ग्रांच

ग्रु ति जीवन-शिला की एक मीठी ग्रांच

ग्रु ते पें करता जा रहा जो सत्य उसकी

मिन—ग्रु तर वदना ।

किन्हीं भारी को शिलामों की ग्रंपेरी सिन्ध मे

जतते हुए उस सत्य की जिससे प्रकर उर-रिम के आधात से,

जितने हुट्य-रुकन जीवन की सक्त प्रनुमृति की

ग्रु त्रु स्तान स्तान से ग्रेभीर-महिमापूर्ण श्री-मय वृक्ष में

ग्रां सहन परिणत कर दिया

जत सक्त-रिम बिहानवाले सान-गृह के सूर्ण की

उस विकल जल-विस्तार-जल-विस्तार वाली

गृहन मन वरमात की मेरे हुरय की किन्हों नेरव

--गवानन माध्य मुक्तिदोध

माटी के निमृत में दूबकर बनवाती समीर ने साकर बीज पर दिया। हुए रण जीवन को दोर्पामस्य की मीठी माग है। उस जीवन को कवि बदन करता है। इसी प्रकार किय के मन में भी दो सिताए हैं, किंदु भीतर ही बरसान है भीर वह जीवन-शिखा भी है। यह कवि का पूर्ण तन्मय रूप है। नये उपमान, नयी विवासकता, नयी दायद-योजना, सब ही बहुत माक्यंक हैं। यो पीछे की पिनन्यों में महत्तता मिषक है विवान किवानों को बोक्ति बना दिया है, किंदु मह विवास मारी शिवामों के स्वर से ही आरम होती है, इसितए रनक्षा मारी होते जाना प्रिक सीठव ही लिए है। वरसात है जीवन को सबस मनुमूति। में सममना हू कि 'धनल मनुमूति' मौर 'सबत बरसात' के स्थान पर मिर्क विवास मारी होते की स्थान पर महिस्त का स्वर्ण मुमूति। में सममना हू कि 'धनल वरसात' सिसता सो विवासों में प्रकास मनुमूति। में सममना हू कि 'धनल वरसात' सिसता सो विवासों में प्रकास मनुमूति। में सममना हू कि 'धनल वरसात' सिसता सो परने मारार सर्वेत्र दूहता हुई। दिसार देती है

चद्दती जमुना की घारा में तो कूद गया तराक बोर कामर ही प्राक्ष करते हैं उसने कब सोवा कहाँ तीर ! नापित सो प्रतयकर तहरूँ उठती है उसने प्राप्तमान सब क्यम् निपतने को बदतों करतों भीषण रच धमासान ! दिक्षकडत सर-पर भयागतर तहरों पर फेनों के पहा को भाति नही। वेदना का जो स्वरूप मनुष्य देखता है, आवश्यक नहीं है कि प्रकृति मेभी वैसा हो हो। 'रेमु' मे कवि ने अपनो आकृतवा को इतिहासो में सरावोर करके भी देखा है, किंतु इसका मत उसका नया मार्ग नहीं, पीटा ही है। यूल भी तो यपना महस्व रखती है

> मनमानी किसी मथरा को में दारण एक कहानी हूँ साकेत वार्तिनी रही कभी प्रथ पणवडी की रानी हूँ जब गौरव-गिरि के सिर-किरीट बन हीरा-सी में जड़ी रही प्रथ किरणों के पथ प्रथरों की हमशीरा-सी में खड़ी रही जब रत्तपीटिका शिव की त्रिमुबन की साधना-शिला थी में उस समय बरी भीती जयती! तु से बेसुप-सी पड़ी रही 1

रं बृद्ध विश्व ! रंजरङ जीड ! कुछ तो बचपन की बात बता मेरा कैसा या प्रात ! स्रोर यह कैसी भोषण रात हुई !

यह मितन महर निया का फिर में उपादीप नूरानी हूँ क्षण मन्त्रिन - परीक्षा । फिर तो में साकैत - पुरी की रानी हूँ।

—रे.मरो

षृषि । षृष्ति हो । मनुष्य के इतिहास की साशी है । वह प्राचीन है । मनुष्य को देवन स्पत्त से प्राचीन । दिन्न वह भी भपने विभव मे कितना जानती है । उसका भादि कहा है ? कि ने बहुत हो सवनन करिता सिखी है, जेते बहुत कम मिन्सेंगे। इस एक किता में कितने उड़ार-चड़ाव आकर समा गए हैं कि देखते हो बनता है। धृष्ति के दिन्ने गावतेन हैं जो भपने साथ स्पृति के कितने-किनने प्राचीन पारत नहीं किए हुए हैं ! वात, सदा धौर मनुष्य को ममता, उसकी वासना, सबका हो यहा तादास्य हो गया है, वसीकि विच ने यहा उसे प्रपत्त विचयारी बनाया है, जिसका कि सारा बह्याण्ड एक प्रशासक है। मनुष्य के जोवन मरण ने उसे हासाय है, ज्यापत है। उसीने भपने लोक करना करवाई है थीर प्रपत्त ही बनाए विद्यादी के रहत्य और रोगात में मनुष्य ने विभिन्न रही की भुनुमृत पार्ट है। कितु प्रवृत्ति से उसने एक साहत्य पारा है। यहा विभन्न रही हो सुन्य में उसने एक साहत्य पारा है। यह कुछ के योच मे रहताहुसा भी जैने वह उसकी विना बुछ सी मही है। वह प्रवृत्ति ने भी सपनी बेरना की सहस्री बना मेमा चाहता है

नन्हे-नन्हें भौले-भौले की धनबोले तारी, बोतो मेरे मुखे मुनेपन में धपना मधमय क्लरच घोतो करकाम खेत में स्वस्य हुई

होगी तलाब में उतर, नहा

देन्यार बंल को, फेर हाय,

कर प्यार, बनी माता धरती <sup>1</sup>

पक रही फसल, लद रहे चना

से बंट, पड़ो है हरी मटर

तीमन को साग और पीही

को हरा भरी-पूरी भरती

हो रही साँभ, था रहें दोर,

हैं रंभा रहीं गायें - भैसें

जगल से घर को लौट रही

गोपूली बेला म घरती।

—नरेद्र एक भी पक्ति व्यर्ष नहीं है। पूरी धरती है, पूरा ग्राम-वित्र है, ग्राम-जीवन है।

एक 'सकलब्ब' हमे यहा नितनी गहराई से मिलता है। प्रान का कवि हुठ को भी बाये रखता है। प्रकृति के ही रूप में उसे सौंदर्य नहीं मिलता। प्रपती मनवाही हो बाए तत है। उसे प्रानद प्राए, तब ही उसे मुन्दरता भी दीख पड़े। यो मनुष्प दो शैन-होन हो, परतु प्रकृति मुन्दरन्सी हो, दो भी वह हृदय कहा से मिलेगा उस रूप से, जो रूप का प्रमाव डॉले। तभी बह कहता है

> जब सजी असती बाने में बहनें जौहर गाती होगी कार्तिल की तोपें उधर इधर नवयुवको की छाती होगी

स्वर प्रवासका का क्षाता होता तब समर्भूगा ग्राया बसत् ।

युग - युग से पीडित मानवता सृद्ध की साँमें भरती होगी जब भपने होगे बन - उपवन जब भपनी यह घरती होगी

तस समर्भूगा आया बततः।

जब विश्व - प्रेम मतवालों के खूँ से पय पर लालो होगी

१. तरकारी २ इस चारा।

तिनका ? तेरे हार्यों मे है ग्रमर एक रचना का साधन— तिनका ? तेरे पजे मे है विषता के प्राणी का स्टटन!

तू निट्टी या, कितु प्रात् मू निट्टी या, कितु प्रात् पिट्टी को तुने बीप तिया है हू या सृद्धि, क्टिंड रुट्टा का पुर तुने पहचान तिया है! तितका पय को पूल, स्वय तू है प्रत्त को पात पूली— क्टिंड प्रात्त तुने नम-पय मे क्षण में बढ़ प्रमरता हुनी।

—प्रदेव

त्तिश्वीरा मरोना नहीं। धवेले सतना है। शवित सक्ते नात होनी चाहिए, वस ति सी भी तरह इनना हो कि जीवन को गति न रव खाए। उत्तर, भीर उत्तर उठना है। तिनदर बचा है? रचना ना साधन है, वह विधना के प्राची का स्वदन है। यह व्यक्ति मिट्टी है, क्ति जब आहार आज हो जाता है तब वह मिट्टी का स्वामी वन बाता है। वृध्वित ना भर कोर भी, वह सप्टा बन जाता है, क्वोबित बहु नमा निर्माच करता है। स्वत्वी विषय पूलि है, भीर मारा सेल धूलि का है, क्ति अब व्यक्ति उठता है, तब भरता को छ नेता है।

हितु व्यक्ति के पीछे वो महातान लगा हुमा है, वह उसके माहम को चुनौती है। ममस्ता एवं मून ही चो बीसवी हैं उने, क्योंकि उसवी विद्यालना भी धनतीयत्वा एक दोटी-मी सोमा है

महा स्वयन में कल्यना जागती है

निया मुण, दिया मुण, गणन वृत्य सहाहै।
निया जा रही है, उपा मा रही है
विषय, पल, क्लाको पको प्यारही है,
तिमिर बल रहा है के सीत मेरो
यमन भी रहा है हृदय की मेरेरी

×

महाकाल के प्राण देवल सबग हैं नियम में बेंधे ज्योति के चित्र छण है प्रकृत थमं ग्रीर द**ां**न

१≂७

नहीं उमनो पकड़ नहीं हो सनी है। और वह भी तब अबिक नये कवि ने अपने विषय को बहुत सहज बनानर प्रस्तुत करने की भी चेप्टा की है।

जो चिताए बोलियो में लिखी जाती हैं, उनहीं प्रेपपोग्रता हुछ सीमा तक प्रियक होती है, परतु उपयुक्त सोमा उत्तपद भी लागू होती है। कवि इस धरती का नया मालिक किनान को मानता है

> बहुमन गलगल सेतवा के रिनयाँ ग्रवभाहे परतीक मालिक स्थिनवाँ।

कारे - कारे हाय रहे भीर के बदरवा, सेन - संग भूमि रही संबरी बदरिया। यानन के सेतवा निरायता दिसानवी, भीठे - मोठे गीत गांचे घरदामूस तिरिया। बदरित महहाँ जीते गोंद सागि सोने के तंती खेतिहारिल कू ब्रोडे है चदरिया। होते - होते स्माह रही है पुरवद्या, भूकि - भूकि भूमि रहो रस नी बदरिया। मम - सम म्हमत से चवत हरिया। गोर्फ्स हरेट देखि मगत निरानवी सेहर - सहर नरें पना के चदरिया।

—चद्रमुष्य त्रिवेदी

काले वादलों के साथ सावरी बदारिया पूम रही है, यानों के सेव में नराव हो रहा है। सेव के पान ममसम ऐने भमक रहे हैं जैसे यमुना में चचल लहरें उठनी हैं।

हिमान बाब्य में धाया या बरना के जागने पर हिन्नु 'युन' उसका सायी वन गया। दमा वा स्थान 'प्रधिकार' ने ते तिया। धौर फिर भानदीय सिन्त्यों के विकास ने सिर उदाया। मनुष्य वा बेभव, उसरा नुरस्य सामने आया। उसमें जो भी सुबन-कृती है उसकी महिमा गाई गई। उसीमें विद्यान को भी स्थान मिला।

हत मनुष्य का मायुध बना, और इस नाते उसने सता पाई ब्रह्मा के सर्वनरस हाय की।

बाधाए पर्वत सहैवाई, प्रतित्रिया को अधकार कहा गया, धौर नवयुत का पर्याय बना उनना सूर्व । दलता सूर्य गत युग का प्रतीक बना । इस प्रकार प्रकृति के बहुन ने रूप प्रयोग मुम्नसम्ब के कारण एक वियोग चित्र देने लगे, अंते नाम सन-अन् में उन्होंने जैसे कती का जीवन कोमत होने के कारण सीध ही समाप्त हो जाता है, परतु वह सहज नही मरता तो दु स उठाता है और स्वर ही अपने वत पर जीवित रहता है, उसी प्रकार यह मनुष्य भी है। यदाप किंवन ने यहा प्रकट्त उन से बर्ग-सध्यं की मान्यता को जत दिया है कि उच्चवर्गोय क्ला सरक्षण मे पतने के कारण अग्रवत है, भीर लोक की विद्रोह-सरी आकाक्षा को जीवत रखनेवाती क्ला स्वरक्त है, किन्तु वह इसे दलना प्रकट नहीं करता, जितना इस सब्य को कि मनुष्य की धारणा को जीवित रहने के लिए सध्यं करना ही आवस्यक है। क्या किंव कली का हलकापन दिखाकर उसकी अवहेलना करके सौरवं के एक मुतं आधार को ही कम नहीं कर देगा, यदि हम मान से कि यह सपनी सङ्गित राजनीवित भावता में ठीक है ? हमें यह नहीं देखता है कि कवि वाहता वया है, हम तो यह देखते हैं कि कविता क्या कहती है।

व्यक्ति, समाज प्रोर सुष्टि के सबये को हम बहा इस रूप मे पाते हैं कि प्रपनी-भारती सत्ता से छौड़र्य है। जोवन के सनेक रूप हैं। मन यह कि कौल-सा खेट्ट है, यह किंव के मार्ग दृष्टिकोण पर निर्मर है। प्रकृति प्रारं मतुष्य का इन्द्र ही उसे इस वयह ने प्राथा है, जहा मार्ग को जीविज रसने के लिए यह बाद धमुन्दर में मुन्दरता देखता है, तो उप-योगिताबाद के माचार पर सौड़र्य की दाास्ता नावना के प्रति भी सदेहास्पद हो उठता है। भीर सब बुख होने पर भी वह पभी पाणी मजिल तक पहचा नहीं है.

> फूल लिल-खिलकर सदा मुरभा रहे भाज विस्मृति ने पड़े मयुमास है भूम मस्ती से हुआएं जो वहीं भाज से ही बन गयी निश्चास हैं भाज सेवन की सभी मेंगडाइयाँ हो रही प्रपत्नी स्थाय से यूर हैं, मा गई मजिल भगर से दूर हैं।

> > —्दुलद्रीप

मनुष्य की सपनी भावना ही सवकी प्रतिविधित करती है। हास है तो सब हस रहा है; दुल है, तो सब ही रो रहा है। प्रिय मा प्रिया के रूप के साधार पर ही सदी, पर तु जो बुध उसका प्राच्यण है, यह प्रभी उसे मिल नही पाया है। प्रपत्ती विवसता की हुरूएनो यदि मनुष्य प्रदेश पर लोड देगा तो क्या पाएगा नह? क्या दमके उत्तर में करा का भक्त है कि मनुष्य ही कुरू नहीं बनता, प्रष्ट ति मी कुरूपता होनी है, तो क्या यह भी एक पर्द साथ नहीं है? बींदर्य प्रपत्ती-प्राप्त में नहीं, शो पता मौं केशय के ही परि-णाम में जन्म तेता है। साब के मनुष्य को प्रपत्ती विवृत्त कृष्टि को दोटना ही पड़ेवा भीर पर याद रखना पड़ेगा कि उपनिष्यों के विविधों ने वह माझ गाज सुनना प्रारक्ष सोना - सोना धन्या - चन्या मे धनक उठा पूर्लो मे फलो का बसन्त छा यया हुनत चिद्दटी को सोधी - सोधी सहक लगी उदने सरिता की पारा मे जीवन छा गया सरस। जी-मेहें की स्वर्णिम बाली

लहलहा उठी उत्तरे बिहुग के दल के दल गामन करते.

द्यामो के पत्तव, दूव, किरण की शृचि पाती

हल की पूजा में जुटे एक पल में ग्रप्ते।

मानव की झारमा का अकाश युग-युग से हल जिसकी भोको मे सामवेद मुदारित ललाम; जिसको मुक्कामो मे पत्तती सभ्यता बरम, उस हल को करता है पहाद कुक-सुक प्रणाम!

--देवनाथ पाडेय 'रसाल'

यह जो धन्त है, जिनको उपनिषदों में महिमा गाई गई है कि हे सन्त । तू बहा है । वह तवे मुग में दूसरे पादों में प्रपत्ती प्रतिस्थित पा सकर है। पद फत्त नो बहा ना रूप हो नहीं साना जाना, परनु उसके महत्व को पहले में कही आधिक ऊचा उठाने का प्रयत्त किया गया है। सारी सृष्टि के घरर एक सांत्र है। वह प्रतिन मनुष्य में भी है। मनुष्य को सारिक हो स्वीत प्रतिन मनुष्य में भी है। मनुष्य हो सी को सारिक हो सिक असमें है। हम उठी प्रम का एक प्रतीक है। हो जे वब दहत में हु उपाता है तब दूब, पत्ते, किरन, हत नी पूर्वा में बुटते हैं। पत्ते आम के हैं। एक्स में है। मुग्य में अहे हैं मारिक मानिक है। एक्स में मानिक हो दूब भी मणत-विक्ष है, मीर घटकर भी न मरवेवाको हिरिमाती है। किरन खबार को हरती है। हो हम की पूजा करते हैं—मणत-पर्या, यहाय जीवन भीर मालोक। इम हल में ही सम्यता पत्ती है। इस हत को पहाड भी प्रणाम बरता है क्योंकि इसकी गरिमा उनकी निराट काया से नही प्रपिक वडी है। इस प्रकार हत्त के एप में मानव की साला को ही उसकी मूर्ण महता याद दिताकर सबके उत्तर विठाने ना प्रयत्त हो नहीं है।

एक ही प्राकृतिक ब्यापार के हमे सिन्त-मिन्त रूपेण वर्णन प्राप्त होते हैं -दूर गगन से टूट रहा है एक सितारा ! अपकार को छाती पर

## प्रकृत धर्म और दर्शन

किथर जाऊँ ? पृद्धता है मनुष्य ।

प्रकृति से समये करता हू कि मैं छोटा ब्रह्मा हू, तो बवा इसमे समौतिकता देखें? या एक-एक करके इसके रूपो को जानता बता जाऊ?

भीर फिर पूछता है उसका विवेक

मनुष्य । तेरा रहस्य खोलना ही क्या प्रकृति की सार्यकता है ? जब तू इस पृथ्वो पर नहीं था, तब इसकी क्या सार्यकता थी ? और तू नहीं रहेवा तब क्या होगी ?

यहूरी, हंसाई भीर इस्तामी तथा ऐसे मतो ने सृष्टि का त्रम मानकर भी उसके प्रत तक की ही कल्पना की है, इसीलिए वे कब बनाकर प्रत को प्रतीक्षा करने की भावना मानते हैं। परतु हिंदू मानता है निरत्यं, एक कक। बहुत दिन की प्रतीक्षा वह नहीं मानता, हाप के हाय सबका कार्य-कारण देखता रहा है वह। मनुष्य को उसने सृष्टि के प्रत-गंत मन्पत्रतों को प्रपेक्षा प्रियक माना है। इललिए यह विवार भारतीय चितन में पहले नहीं मिनता। वहा तो विराट सृष्टि भीर विराट घनस मिनते हैं। प्रतय सित्त मता है, परतु उसके बाद भी एक सृष्टि है। नये किंत में यह परयरा से उतर घाई भावना तो प्रव-भी है, परनु उसका 'धाव' इतना बडा है भीर वह उसे इतना हो महत्व देते को विवस है कि 'पर्टु 'धारण प्रभी तक वह पूर्णकर्षण को करने नहीं सका है।

समान, स्त्री-पुरप-सवय, प्रव हमे प्रपृति के व्यापक क्षेत्र मे मिलते हैं, क्योकि योग सबय भूतत प्रकृति के धन्तर्गत ही माना चाहिए। यहा हम इसकी विवेचन करते हैं। नया विव वहना है

> है प्रात्न प्रशय का प्रायाहन बज-बज उठती है रणभेरी बुम मुल मलोनकर बार-बार बब क्यांचे मत देरी बो किया, न में प्रमुलायों प्रिय, भर-नरकर प्रात्ती में पानी

जब चन्द्रमा,
पश्चिम को भील के किनारे
इस में हिरण लोल देता है,
कभी दक्षिणा भीर कभी उत्तरा
बनकर मुबह को हवाएँ
नील गायो नी भांति खेतो मे
मृंह मारते तमतो हैं,
धौर जब घडे सेकती हुई कूली-कूसी
साल बडे यूनो-सी मुगियाँ, बाँग सुनाने समती हैं,
सीने का एक धारत्य बीज

ग्राकाश बपने ठिठरे हाथों से गाउने बाता है।

—नरेशङ्गमार मेहना

सुबह की हुवाए नीत गायों की तरह खेतों में मुह भारती हैं। मूर्गिया लाल बडे फूलों की दिखाई देती हैं। मानाय के हाय ठिठुर गए हैं। वह एक बीज गाउने माता है। बीज है मरवत्य बीज। बानों पीयल का। अस्वत्य गाउ ही धपने साथ बहुत बडी परपरा लिए हुए है। वेर में यक सिडके मध्य में रहता है, और यातुपान उसको देखता है, वह मस्तरत बीज है। उतिपद में भी मस्तरय का उत्तेख हो जो ऊर्वपूत है। गीता का मस्तरय की असिंद हो है। यह स्वत्य निरतर आरतीय जितन में असना स्थान रखना माता है। बीचि दुम होने के नारण इसने घारर बीडों में भी पायों है। परत वरेख मुत्रामार ने उसे पायों हों है। वेद से माता की बीज माता है। माता है। बीचि इस होने के नारण इसने घारर बीडों में भी पायों है। परत वरेख माता की बाता के मिलते के स्वत्य कर हो हैं। यह स्वत्य कर की नहीं निया। उसकी धातों के मस्तरा सका हो एक पर्याय है। कि की ने इस पक्ष को नहीं निया। उसकी धातों के मस्तरा का ही एक पर्याय है। कि की ने इस पक्ष को नहीं निया। उसकी धाती करनी वल्ला है धीर जैसा कि मैंने ऊपर वहां है, यह नये चित्रों में पुराने चित्रों का नवीनीकरण है।

नरेस के सब्द बहुत चुने हुए होते हैं और वे जो प्रनाव चाहते हैं, वह स्पष्ट सामने भा जाता है

जुगाली करने समते हैं

बोबहर सक सोने की शतियाँ फूलो प्रीर फलो से लदा सोने का बोपेबान प्रायस्य बन जाता है उसकी छाया में हमारी पास गरम होनी है हमारे पगु उसके नोजे बेठकर होंसया तिए निज हाय में किस स्रोर जाएगा पविक, बहुतो सभी सत्रात था ! बानी तिए रोटो बडा भाई वहीं जब या खडा छोडा डडा मूंह टोकरी से दूध कहुकर रो पडा में केंप उठा था स्रोरटफा एक पीता पात था !

—शिवमगल सिङ् 'सुमन'

कानिदास का मेच भी तुर्भिष्मों से सेनता था। उन्हें कराता था, उनके कटाओं से जीवन सकल करता था। वह भी पसीने से भीगों मालिनो और किसानो की बनुष्मों को प्राप्त देता था। सुमन का प्रमात भी किसान-क्लाओं को छुनेवाले बात के कारण सुम्दर हो गया है। किन्तु उसका ध्यान किसी पिया के पात सदेता यहचाने ने नहीं है। उसे मनुष्य की पूल सदा रही है भीर इसलिए प्रमात को वह नहीं देल पाता। सर्वान वह बहुत मुन्दर था। उसकी दृष्टि किस भी प्रतिक रूप पीने पात की ग्रीट जाती है, जो जरावी था। वह मृत्त होतर गिरा या करणा का अभू वनकर, दोनो ही अवस्थाओं में वह मप्ता समान अभाव छोड़ गया।

स्त्री ग्रीर वह भी जो कृत्रिमना से दूर किंव का ध्यान ग्रपनी ग्रोर ग्राकणिन करती है, ब्योंकि वहा उसे सहज जीवन की भाकी मिलती है

लडो लेंद मे मुतकाती है किसी भीत की राती ।
इसकी बाँहें गर्दों कमल की माल सरीजी कोमल,
इसकी बाँहें पुट लीम की माल सरीजी कोमल,
इसकी बाँहें पुट लीम की मालस्थें-सी दामान 1
कनक कटोरे मागरिकाओं को ही रहें मुबारक
विष्पा के शिवरों-सी उननेत है इसका बसस्यत ।
इसकी आंखें भीत मुगी-सी नहीं विकल या चयत
इसकी आंखें भीत मुगी-सी नहीं विकल या चयत
इसकी पींडों में सध्या के भीर, सांवलें बादल !
इसकी चितवन में हैं तीखें तीर न तेन कटार
एक प्योत्त है, पुनेती हैं ओधार्गों किता ।
हसलामिली या गजगामिन देते नहीं कह सकते,
इसकी पींत जगल के मरी-सी महुट सस्तानी

—रामनुमार चनुर्वेदी

युममे जागृति की विद्युत है, उठ ए नव युग के अप्रदूत । उठ ए स्वदेश - श्री के सुद्दात ! नव युग स्राधा, नव युवक जाग !!

—रतनलान साध

म हा कालिदास की कहारती मेलला पहने नितिबनी युनिवियो का मादक बतत, कहा मादक बसत मे बुनक थीर बहं भी नवयुग का प्रतीक । प्राचीन किंव पुरूप प्रिषक पा, स्त्री के सेत्र में, नवा है पौरव का प्रतीक युग के क्षेत्र में। यह एक बहुत बड़ा भेद है। प्रस्त बाता है मुगुप्प के स्त्र में। यह एक बहुत बड़ा भेद है। प्रस्त बाता है मुगुप्प के स्त्र माता है। प्रस्त बाता है मुगुप्प के स्त्रा भी वा पा पुनती के प्रति 'रिति 'प्रव भी विद्याना है। व्या युग के प्रति भी वगी पहेंगी ? फिर प्रस्त है कि पुरुप दृष्टिकोण से स्त्री में वा अनुस्तिक ही बचा स्त्री को भी वह उतनी ही बाकर्पक वार्ती के ने बार स्त्री को भी वह उतनी ही बाकर्पक वार्ती का बही प्रमात पत्रती हैं ने विक्र भाव पत्रती हैं ने वा स्त्री को पत्रती हैं ने विक्र भाव पत्रती हैं ने विक्र भी पत्रती हैं में समस्त्रा है नहीं। आज उस स्थुनना से किंव-हृदय तुन्तासक रूप में पूमसता को प्रविक्त सेता है। युग कौन-या युग है। प्रत्येक गुग नया है चौर प्रत्येक गुग के प्रति मानव को प्रयत्त को मसता होनी रहेगी। जैसे उपनिद्यों के वितन से समस्त्राक्षों के यने रहने से हम प्रभी तक प्रभावत होता है, मैं समस्त्रा हिन पुग के प्रति होनेवाओ सास्त्र में ये किंवताय प्रपत्त को स्त्री तह से हम प्रभी के प्रति स्त्री से प्रवेश ही इनका प्रसित्व पानव के सर्वी सीय विक्राय को प्रति तह है वह मही सक्त्रा।

युग के प्रति नरेन्द्र ने दूसरा चित्र दिया है। स्थायी भावी मे इन चित्री की किस

रम के प्रतगंत माना जा सकता है, यह ग्रमी तक प्रश्न ही है। कहता है ' भांज रही है ग्राज ग्रमायस्या नयनो से काजल

भाग पहार है आज अनावाद्या नवना में कांडल निक्चय नया चरित कर उत्तार देखांगा कराती - तत ! ग्रिय के महत्तक का प्रामृत्य नये चींड का मेंकूर यह जितना शीभासाली है, है उतना हो निष्दुर। एकदत के एकदत-सा राष्ट्र-याह से निर्मय जनति का रथ-यक बनेता यक चन्न निस्ताय! मेर्ड क्योंति के शिर्त बन, शांत्यन प्राप्ता नवयय करां!

--नरेन्द्र

ग्रमाबस्या का कावल पारना क्या ग्रयं रखता है ? काले में काला क्या दीखेगा ! परनु दसमें हम यही तात्रवं निकाल सकते हैं कि ग्रमाबस्या उतनी काली नहीं, जितना उसना ग्रयेरा है, यह भी धीच-शन करके ही। तथा चाद प्रयथ्य हो नवयुग बन जाएगा । हन विवाधों वो रस की दृष्टि में हमें बीर रम के धनगैठ रकता होगा, क्यों कि मानिस जमुना के उस पार लहसहाते हरे खेत उठता है एक स्वर

प्रानी देती-देती, निराती-निराती
 प्रक गई होगी वह कृषक बाता : प्राम पृथ्वी
 जिसके क्यारेपन से सरसाता-मुस्काता होगा
 योजन-पन, जाडो की नरम-परम पृष
 सण-पर विसमा होगा उसका मन
 क्रपना-निभृत निकृत मे
 एट चते हैं ये स्वर के मध्-यूत सातसा की उपमा ले
 प्यार की भविर सुरीम ले
 जाता की महत्वाहर का सानेदाता मुक्ते थे रहे

जारात का अनुसाहत का साथा कुण व रहा जाम्रो ठण्डे पत्रत भावोरे तूरमुक्ते परवाह नहीं है माज तुम्हारी मत सहतामी मेरा भावा तप्त नहीं चाहिए युक्ते सहजते, तेरे मे सब फूल—

दिलावट : सुरभिरहित,

में खिचता जाता हूँ जमुना के पार, उस पार सहलहाते खेतों के बीच जहाँ से स्वर उठते हैं

—रात्रुनदत्त दवे

िन पहला चित्र ट्रव्ये ही किये कुछ व्याकुल-सा हो जाता है। इसके बाता -ग्राम मुदती की यकान, उत्तका यीवन, पूप, जाड़े की नरम-गरम धूप, क्षण-भरं वित्तमता उसका मन धौर फिर वह देखता है कि उत्तका माथा तप्त हो उठा है। सहजने के कूलो म सुर्रीम क्यों नहीं है, यह यवाल सामने ब्रा सदा होता है। ये सफेट फूलो के भौर प्रव उत्ते मच्छे नहीं तगते ।

लोक-जीवन भी किय के मानस की झवस्या के प्रमुक्त ही प्रपना स्थान काव्य में प्राप्त कर पाता है। तो ये नये चित्र वस्तुत प्रयं का प्रत्येषण ही हैं। अपने-प्राप्त में जो जिल पूर्ण हैं, ये प्रपने प्राप्त के कारण ही। यपिक सुपना है उन कविवायों से, स्त्रानुमूति ने वाह्य चित्रण को ह्टा दिया है। 'शावष्य की बिदा' में कित एक सपूर्ण चित्र रोधिना है। यह सारे चित्र मध्यवाया जोकत के चित्रचित्र होग से साहर जाने के प्रयत्नों को प्रस्तुत करते हैं। चित्र नो घडी घढ या गई है और वसु जा रही है।

> बिदा की घड़ी है कि दप दप दपादप बहे जा रहे दोल के स्वर पवन मे

अमी हिम्बा—हर जाति की—उन्हों पूज्य नहीं दिलाई दी। मृत जाति जयम का सण्डन, मानव की सामान्य स्वीकृति इस युम की एक मौर देन है। मृतुष्य के कार्य-व्यापार में भृति को बायकर जब विजय किया जाता है, तब एक सपूर्ण विज-खण्ड माकर उप-स्थित होता है।

प्रकृति को रूपक के तौर पर लेने मे प्राय कवि एक है। बात को दुक्रा-दुहराकर तिसते हैं, क्योंकि समय का चरण तो प्रभी बहुत तेजी से बदता हुमा लगकर भी बास्तव मे उतना बढा नहीं है जितने की माता थी और कवि को बार-बार उसीका सामना करना पडता है

> प्रयकार प्रपार भू पर व्यापमान प्रयकार प्रपार द्वाया ग्राप्तमान प्रपकार सज्ञश्त केवल प्रथकार कहाँ जीवन का विषुल बिस्तार हास-विलास

छा गए बादल, छिपे तारे, डॅका धाकाश कहाँ शेव प्रकाश

व्ययं दृष्टि श्रदृष्ट जिससे सृष्टि साज हो रही है घन - तिमिर मे दृष्टि श्राज नवल श्रकुर, नवल जीवन, नव समाज हो रहा निर्माण, नाश, विकास, ह्यास-

स—हास ! साज का यह तिमित्र करता द्वारतदान समभने मानज लगा है शक्ति - सान स्वत्व, जीवन, प्रगति, सामञ्जरंग, मान, हो चता संघर्ष इससे जगत—

सस जगत— काम्रधिवास:[

—तिनोचन शास्त्री

केवन अपकार सानन है। अपकार, धकुर, प्रकार, सब अब अपना महत्त्व उतना नहीं रखते, वितना परने रखते थे। मानव ना स्वन्व आगे आया है। इसका नारण है सुन। शुग यविष एक अर्थाक है, परतु समस्या बनी हुई है। एक और इसकी अधिपया हुई कि बार-बार सन्तु के दुहराने से काव्य नहीं वनता। दूसरी और हठ चला कि इसकी चित्रिन करना हो प्रावशक है। इस इन्द्र ने निक्सीन मो सोच-गीवन की गहराइयों में प्रभी तक चरण गहीं रखा। व्यापन जीवन प्रनीकों के रसाय में नहीं कृता- तुम्हारी नाव क्या तट से बंधी रह आएगी
लहर की काटकर प्रपना निराला पय बनाने को
नये सवर्ष में सक्तीयमी से दूब जाने को
बड़े विश्वास से पतवार को हमने चलाया है
तुम्हारी नाव क्या सक्त्यार से चकराएगी।
नई क्षाच्या नई हिम्मत नमें सतार बाले हम
नहीं जिसको सुना तुमने यही हुकार बाले हम
हमारी दृष्टि में निभीक साहस हो समाया है
तुम्हारी प्रति क्या नीचे मुक्ती रह आएगी?

—बंरिन्द्र भिद्य

बह नये सम्रार का रहनेवाला है। उससे नकीन साहस है। जैसे बालक की सद कुछ नया-भया-या जगता है, नये किंव को भी वेत्ता ही प्रदुक्ति होनी है। यह बाति के जागरण का चिह्न है। दुस्ती वाति से यह दृष्टि प्राय 'भेष्मन-मो हो जाते है। तो यह है नया साहस। प्रवृति स्नाह्मन की भी उतनी ही सहारा है, जिननी वह पतायन की। कबि-हृदय इतने में हो मोमिस नहीं है। यह प्रपत्ने चारों स्रोर की सृष्टि को मी

नवीन स्फुरण से भरा हुआ देखना चाहना है नई गति दो पवन को ग्रीर

सागर को नवा-सा ज्यार दो

वहीं सपना धरा की दो

अमाने का नवाओ द्वार हो <sup>।</sup>

समय की बांसूरी सोई

नये स्वरकी नयी ऋनकार दो !

नई पीड़ी ! न सोग्रो लोरियों मे

यह सबेरा है नवा हैंसा वह भोर का सूरन

श्रेंथेरे का समन्दर यी गया ।

ग्रंथेरे मे दुवा देते हमारी

नींद के भोंके हमे

खुमारो में न पी लेगा

भता निर्माण को विष्वंत बया है

मुनहरो जगमगाती पूर्व की

रेला किरण के जात मे

हैं बागम उमड़ चली सहस हजार दल सँवार जा रही हैं झाज

जारहाह झाज क्हों दर, दर, दर!

यहा दूर, दूर, दूर : एक मीत की घटट काजरी

सकीर

एक लक्ष्य जा रही ग्रदम्य

राह चीर---४

राजा है कोई न कोई है रक चौंटी को दनिया से चोंटी निस्सक !

×

रोकेया कीन भला इनका दल ? एक-एक चोंटी मे एक-एक गज का बल।

—बीरेश्वर्भिङ्

इन चीटियो में ऊच-नीच नहीं। प्रपनी दुनिया में चीटियों को शका भी नहीं है, चीटों में गज का वल होना जायसी की नामनती की माहो से कीमों के काले पड जाने के समान होंने हुए भी, सच्दा प्रभाव धोडता है, क्योंकि दल राज्य में ही शक्ति निहित मानी जाती है।

यह मामूहिक रूप थे जो प्रकास और ध्यकार को निरामर साथ पे वह रहा है, बहु मामिर क्यों ? यह समये है या मुद्राय इसकी करना करने लाता है ! नहीं । संव् भीर धवल के रूप में यह धराना तो पहने ते हो नियमान है । निक्षे आधुनिक काव्य का 'गिडरोय' करने हैं, बह बस्तुत एक विशेष रोती के बाहर निक्का पाने की प्रसामयांता ही है । दुप ऐसा विचार हो गया है कि इस रोती-विशेष के बाहर निक्कार जो दुख निस्सा आएमा वह नाव्य नहीं हो सकेगा । रहस्यात्मत्र भावना तथा नए उपमानों का सोष इसी संत्रों के मदर्गन हो सकेगा । रहस्यात्मत्र भावना तथा नए उपमानों का सोष इसी संत्रों के मदर्गन हो सकता । यह सत्त्र है कि युग-विशेष के प्रभाव से निक्कात सहज नहीं है । किनु युग के भी व्यक्ति नी अपनी विशेषता होती है । यह हमें भवस्य मिनवती है । कि व नावित्रत मुखर हो उठना है

मिट्टी के तिमिर गर्भ मे तुम सोए बनकर जब ज्योति-बीज तब हृदय विधाना का जाने क्यों करणासे उट्टा पसीज? रत-सी हा बाती है। मित इतनी है कि घ्वनि निकसने समती है बैसे बासिदास के मेपदूत में सब्द, बही-कहो बचा, प्राय हो घ्वनि मुजाने समते हैं। नीरज की विशेषना है
उत्तरी भाषा की सरसता। समय के सावन की कल्पना भी नधी है। यहा विवि भेष भीर
वाति को मिला देता है, वितु यहा वह विरोध भी उत्तन करता है। वापनेवाला भी
निरक्त मारी हो जाता है, भीर वादल भी। प्रतिविचा भीर वालि का एक-साभत ठीक
नहीं जलता। किंकु कविता में पह भावना उतनी ग्राह्म नहीं है, विजना है उतका सजीव
चित्रण, किंव के भरने सरस में भीर काच्य के सरस भे भेद है। काव्य का सरस दसीसिए
सुन्दर वन पड़ा है कि उतसे वीदन का जिब सुदर क्य से उत्तर प्राया है। प्रकृति के दुदेंग

प्रतय में, तिमिर में, न तुफान में भी कदम ये रके हैं न रक पायेंगे हो। न में चाहता मुक्ति को प्राप्त करना, न में चाहता व्यक्ति का रूप धरना, सभी विश्व भेरा. सभी प्राण मेरे चर्तगा सभी विश्व की साथ धेरे. सभी स्वप्त हैं देखते एक मिताल सभी जापरण में निहित एक ही दिल भटकते हुए भी उधर हो चलेंगे भटकते हुए भी उघर ही चलेंगे बहाँ फुल-सा विश्व शिलता रहेगा सहर पर जहां शशि मचलता रहेगा जहाँ एक हो जाति होगी धरा पर जहाँ एक नर पाति होगी घरा पर जहाँ सध में प्राण भनुरश्चि होगी वहाँ प्रेम होगा-वहीं शक्ति होगी, वहाँ स्वर्ग होगा मनज के हदय मे किसी दिन कभी सो पहुँच जाएँगे हो।

प्रसब, तिमिर, तूफान, दनमें न मनुष्य के दम बचे हैं, न रहेंगे हो। प्रश्नीन मोर प्रधान मोर्चन मोर्चन मोर्चन प्रधान मोर्चन मध्यनानीन कवियों ने भी दस सत्य को मौर प्रकार के राव्यों न मार्भिव्यनिन दोहे। किंतु हतना व्यायक रूप हमें कम मिसता है। सकत सकार की धारित की कामता ने बहुत प्राचीन कवियों ने भी की है। तथा किर सर्वेत्र जागरण की प्यास देख रहा है। वह ऐसा बडी बेबसी, यो गई राह है।

गुका कालिमा की निगलती चराघर।

गरम सींस पह कीपती-सी बराघर!

गगन पर किरण मालिका तिलिम्लाकी—

पुटल बढ रही, मृत्यु का दाह है।

तगी श्रांख, सक्ने बहुत रेंग दिखाते।

पुती कल्पना जब हुई दृष्टि धूमिल

बहे रग, शाका हुमा स्याह है।

प्रीची बहुत. ज्योति की चाह है।

—*बुमारी स्मा*पिंड

प्रकृति का सब भी सनुष्य को बहुत सताता रहा है और श्रव भी उसका आतक मौजूद है। ज्योति की चाहता आज बहुत बढी तृष्णा है। मध्यपुण का व्यक्ति यह नहीं मानता वा कि वह प्रकृति के सबथ में भयकार में दूबा हुमा है। मुक्ति को वह परमात्मा की महिमा के रूप में मान चुका था। उसनी अद्भुत घरिन भी उसीके चमत्कार के रूप में मानी बातों थी। आज का मनुष्य धपने को मधेरे में मानता है। उसके दीप इतने सधक्त नहीं हैं कि ये भयेरे को भी जाए। यह मनुष्य की विच्छता है। वह केवल करपना में मुख पाना है, सवार्थ बहुत कठोर है।

मनुष्य का स्थल बहुत सरावत है। यह स्वप्न में रहता हैतो उसे ''सपने चलने के साम रिंग, शिंस किरणों के एस सवाए चलते नगर आति है। पृथ्ती, अदरी, सरिसाए, तर-तिकाए, कानन भीर नमा जीवन, सब उसे पपने माच चलते हुए दिखाई देते हैं। '' (उदयावर मह) इस स्वप्न को हम मनुष्य भी वलवती मात्रा कहना हो प्रविक्त उपित समभने हैं, व्योकि उसीसे उसे सामे बाने भी प्रेरणा मिसती है।

हो सकता है कि मामे बदने वा ग्रयं कल बदल जाए, किंतु भाव उसका महदूद-विस्तास-सा हो गया है कि वह विकास कर रहा है। कवि इदम इसे देखता है और व्यक्ति-गत जीवन में उसके मन में सदाय भी हो उठता है

> मुनहले सपन की रजत घाटियो से चितुष्य सन, विसुष मन चला घारहाहूँ, ग्रमुत दान करने चला पण को में मगर पथ ही से छला जा रहाहूँ।

क्या मनुष्य चल रहा है, या राह ही उने छनती चली जा रही है ? दार्शनिक इस प्रस्त को मुनकर पूर्व चितन में डूब जाता हैं। वैद्यानिक प्रपने सीमिन जीवन को ही स्तामोश प्रय पर सम्पता, संस्कृति पुनीत--स्नादमं का बोभा उठाएं जा रही दुनिया !

—देनेन्द्रनारावयः वर्मा

तो यह बहुत स्पष्ट है कि पब प्रकृति चित्रण में मनुष्य भीर उसका समाज प्रमुख रमाज ले चुना है। प्रकृति के वर्णन से कब किय हमें कहा लाकर ठहरा देगा, हम इसके बीच में नोई रेखा नहीं सीच सकते । वह नया यनुभव करता है, नहीं उसकी विशेषता है। तो महा हम यह चह सकते हैं, प्रकृति को गोण स्पान मिला है, प्रय की खोज के कारण, नयोकि पद प्रहात करने-माप में कुछ नहीं। वह तो मनुष्य के सुख-युख की छाया से प्रस्त है। यत यह भी कहा जा सकता है, याज प्रशृति को उद्दोपन के स्पर्य में प्राय देखा जाता है, यह बात भीर है कि उद्दोपन के माधार बदल चुके हैं। वे व्यक्तिपरक से बढ़कर समाजगरक होने की भीर उच्चल हैं।

'ऋतुमहार' मे नयी दृष्टि ना भेद स्पट होता है। कालिदास के 'ऋतुमहार' से सात्र का कवि नितानो दूर हो चुका है। भावना के संत्र मे उसमें भी नहीं 'रित' है,परतु जान करने ना दण हो बदस गया है

मेरे हाय के प्रवार से यह सभी तक लाल है प्रीर, बेतो को कोडियों की मेरी माला से प्रभी तक सुगियत तकियों के बीच में पड़ा यह सम्बा बाल प्रिये, तेरे वियोग में मुझे डेंस रहा है। वालिदास को सबन वेस-राशिया प्रावर एक बाल में सिमट गई हैं। थो र यह उटना है घोर उसकी सास-सात कविता वन जाती है। जब वसना तितली के पल लगा-कर उडता है घोर तर-तर पर कुटुम पराग विस्तराता है, उब उसे घूनि की टुलहिन का मुहाग 'प्रचार' से भी प्रपिक यसर जान पटता है। कल-कत स्विन करती नदियों के पास जान र उसके प्राचों की पायत स्वय छनक उटती है।" (नीरज)

कैंसा प्यार है। यो वस्ती। तेरा पुत्र है यह मनुष्य। कुमें कितना प्यार करता है। बोर भोष्ये बसुपरे। यह दुर्धम पौरव तुम्भर नितना ग्योद्धावर है। किंतु जीवन की मार्थकृत क्या है। क्यों है यह जीवन? कवि करण स्वर से पूछता है

मिंग श्राच्या पर बालाओं का प्यार या सहरों का विध-मन्यत कर स्वीकार क्या पाएँगे प्रमु, हम क्या पाएँगे ?

जिस दिन यह सारा झानुल प्रमयोग्माद, रह जाएगा केवल विद्यता क्रम्यात, जिस दिन सीती में सीतें होंगी लोन, पर मुर्वो होगी मन की सारी प्यास, उस दिन होगा फिर यह सिड वैयदितक सोमा में बड़— जितना फूठा है यह दु ख जतना हो मूठा है यह सु ख सुल-चुल इन दोनों के पार

—धर्मवीर भारती

क्या होगा प्रमु । जीवन का सारक्या है। बैयक्तिक सीमा में अब्द मुख और इ.स. दोनों फुटे हैं। इनके पारक्या है?

समस्त प्रकृति विविको कोई प्रेरणा नहीं देती। ग्रव तक का प्रणयोग्साद एक

पिछला प्रस्थान बनकर रह जाएगा ! जीवन ना रहस्य प्रकृति के भ्रतगंत ही स्राता है यहा, उसे हम दर्सन के भ्रतगंत

नहीं से सकते। बयोवि यहां मनुष्य के जीवन वा प्रश्त नहीं, उसका सृष्टि से तादातम्य प्रमुख है। वह देखता है "महिरा-सो मादक रात, गणन में बादनी वी मीनी उज्ज्वल सारी पहले मुस्करा

गानपाणा नायक रात, वनने में चारता वर्ष माना उज्ज्वन सादी पहने मुक्तरा रही है। उनके प्राचन से सहराती-इठनाती धानो मद पबन तन को छूतर मन में सिह-रत-सर रही है। अमरों के सिद्यु उपवन में घटधेनी कर रहे हैं। तितनी की राजकुमारी

मिलते हैं

वित - यति प्रभू तोरे बदरा - बदिया धर्ति-धर्ति हल-बेल धर्ति-धर्ति खेतवा। धर्ति खेतिहारिति ध्री'यनि है किसनबी जाके बल लह-लह उत्तर क रेतवा। प्रकृति सो द्रोरीतना चलत बयरिया प्रचृति-मुचल जात खेतवा के धनवी।।

×

ग्रब न पत्तीना बही विराया बेगार जहहाँ,
ग्रब न सगनवाँ मा बिकि हैं गहनवाँ।
सब ग्राप्ता पूरी करी हरा-भरा खेतवा
ग्रबना बिदेसे जाड़ मोरा मू किसनवाँ।

—चद्रभृषण त्रिरेदी

मध्यकालीन कविता में ऐसे मुन्दर चित्रण हुमे सेनापित में अवस्य निवते हैं। शब्द-तालिख के अविरिक्त को भाषा का अगस्कार सेनापित ने साथ में रस्सी-ता बट दिया है, उसके कारण वह हाथ में अरसती है। यहा सहल वर्णने है। सर्वनारायण के पीए-धीए पात और नजीर के सेतों के-से थे सेत मुहाबने हैं। हिंदी की बोलियों में निवती मामयं अभी दवी पड़ी है वह स्पष्ट अकट होता है। किनु भत में कविवा में कुषक-स्ववन्ता मा जाता है। और प्रकृति मानो मृत्यू को वय बीलने समती है। कवि यह नहीं मून पाता कि यह सब मृत्य्य का रचाया हुआ सीदमें है जिसके बल उसर भी लहु-तहा रहा है। असे-पन् पन् पदी मिरिवर गहन। 'अगला को दया है, वैसे ही यह मृत्यू की महतत का निवी को किन्यू की मृत्य का नागी के स्वार्थ के लिए विदेश जाना करणा जगाना है भीर लगता है कि किन की की बेदना बहुन सार्थक है। जाससी के 'दीठि देवनर' सीर कानिसास के 'दीठि देवनर' सीर कानिसास के 'दीठि' देवनर' सीर कानिसास के 'दीठि' देवनर' सीर कानिसास के 'दीने' रेस सकते तुत्तना करिए

यह प्रवाद का वहला दिन गिर चुका दोंगरा गहरा पुते हुए सब पेड, श्रक्षति का भ्रोचल किर से सहरा। जनड़ों सोंगी गय मटेली तपन मिटी परती की, भ्राम लिस गई मुस्भाई कतियाँ हिमान के जी की। किसान के जी की किसान गिया। में प्रभाव साफ हो गए। घरती से सोंगी गय जठने सागी भीर तपन गिट गई। भीर चिता के रूप में पर भीर प्रकृति दोनों साक्रमाध

> बाह-बाह में चलते जाते महिंगू के भी सपने जबकि कटेंगे घान सुनहते दिन भी होंगे अपने

जली नहीं प्रदोप - ज्योति युंज - पुज सा गए निकृज कृत से निकल शलभ सदीय छा गए । टहर न एक पल सके प्रकाश में समा गए,

×

ये चाहते कि पोछ नें सुपत्न से प्रकाश को। कि चाट नें प्रकाश के समस्त चन्द्रहास को इसोनिए जले स्वय प्रदीप भी जना गए।

—धारसोप्रमादनिइ

जिनमे ज्योति को चाह है, वे ज्योति में तीन हो जाते हैं।
"पुद्धी धोर धाकारा मिले हुए दीलते हैं, यर खितिज का घल नहीं मिलता।
उत्तर मत देखों। विस्मत की धाड लेकर धतकततामों से मत बरों। मैं प्रकृति-दूत हूं,
तुम प्रक्लि-दूत हो।" (विधिनचर चनुबँदी)

" भभावात था रहा है।

"परा के बस पर उमरे हुए पहाड उरोज है। वह फक्षावात घाकर उन्हें महत्तता है, कडरडाता है। यूझ रोमहं ४ इन्हें वह फक्षमोरकर चीर जाता है। करने, निर्देश निरा-उपितपए है। उनमें वह तह की तज सपटो-सा प्रसर उद्ग्ड ज्वाला को विशिध-सा सनसनाता है। "(भारतभूषण पणवाल)

पूर्ध्वों के वस बीर तूकान का यह वर्णन कितनी व्याकुल वासना से भरा हुमा है। बालिवास ने भी पृथ्वी के उरोज देते थे। किसी भी रूप में हो, प्रत में मानव अपने जीवन-सक्त्रों से हो उपमाए देता है, ब्योंकि जिसे वह बानता है, वही उसकी राजवृत्ति में बसे रहने हैं।

मनुष्य इस त्रकान से डरता नहीं। बहता है—"धामी ! इन बरणों से हे अवय के समीर 'टकरा बामों ! हे माकास ! तुम शत-सत भानु हायों में लेकर गरकों, लास-सास किरणों के तीयम तीर छोडों। परतु मैं सभय हूं। मुभने प्रतिन तस्व बदी हैं। मैं एक माकार व्यक्टि हूं जिससे समीट प्रतिनादित हो रही हैं।" (केदारनाथ निथ 'प्रमात')

"गिरि-शिसर मनुष्य का घ्येय है।" (बच्दन)

इस समर्प में प्यार ही जसके जीवन का सबल बनकर निकलता है। यह कहता है

घायल उर को देश तडपता किसने तोर संघाना किसने पनघट के पद्मी पर चाहा जाल विद्याना स्नामो मेरी बौहों मे तन-मन की झाल बुमा लें मन के देरों को समस्राने विगडी बात बना लें, हो गया है, इसी प्रकार करित प्रकृति से प्रेरणा लेगा चाहता है। सम्य युग के उल्लयन में पूणा का प्राप्तोदा देखकर वह यह कहता है कि विविद्या मुक्ति दे सकता है। स्वाहिसों में जिदमी की प्राप्त के पत्त की मों रेल बहुत मुदर कल्पना है, जो काली घटा में चमकतीं हुई शामिनों के लिए की गई है। युग स्वष्त अपनी तस्वीर गढ रहा है। यह पुग एक नया 'पाज' है, जिसका नये स्वरोधे मामन किया गया है। इतका रूप क्या है? एक भावना-मात्र। नयी कविता का यह नया 'नायक' है। जिम प्रकार पुराने घीर मध्ययुगों में नायक के साथ प्रकृति वर्णन होता था, उत्ती प्रकार इसनये 'नायक' के साथ भी होता है। वह कितने हो प्रकारान्तये थे होता है।

वह धाम, लोकचित्रण से लेकर, उद्बोधन और नवचेतना के गर्वनो के अति-रिक्त हमे व्यक्तिपदा में भी मिनता है। कही-कही हम प्रकृति में गीति परकता सद्ध दर्शन की मनक भी पाते हैं

यदि फूनो को सुपमा चाहो सीखो पत्थर बनकर रहना यदि मानस को सीमा चाहो सीखो बधन बनकर रहना मैने दी विह्न बनाए हैं जिसमें चाहे उंगसी पर दो।

**−-शि**ववहादुरसिंह

कूलों को मुतमा के लिए पत्यर बनता थीर सीमा प्राप्त करने को बयन बनता, दोनों ही विरोधी तत्व हैं। दर्शन के क्षेत्र में बोनों उपित हैं। जो मुख्त हैं, वह सतीम है सत प्रनत दाह हैं। जो केवल कोमल हैं, मुदर हैं, वह जीवन की स्थिरता और सपर से सूर हैं। एक यदापि कूम भीर परयर का कोई सबय नहीं हैं, फिर भी बात बैठ जाती हैं। यह प्रकृति का नये दंग का चित्रण हैं। अह सकृति का नये दंग का चित्रण हैं। अहं सकृति का चित्रण हैं। अहं सकृति का नये दंग का चित्रण हैं। अहं सकृति का नये दंग का चित्रण हैं। अहं सकृति हैं। अहं सकृति का चित्रण ह

वर्ण-वर्ण मेरी कविता के माविक बन-बनकर प्राते हैं। औं करूपना-तराण में पण एक प्रधी पार उत्तर जाते हैं। इस गतिमय चारा के बदले प्रवेम्त तट का गाम न सुंगा।

सतमंगा के दोहरे—नाविन के तीर थे । मन वर्ण ही नाविक हैं और करन्यन की नाव में वे पाद रयकर पार उतर जाते हैं। निव को यह पारा एसद है, नयोकि उसमे उसकी नाव तो चतती है। मुर्दा किनारे को तो वह नाम भी नही लेना चाहता।

उपनिषद् में यह भगडा झाता है कि साल, नाक, नान झौर प्राण में कीन सबसे बडा है। ऐसी बल्पनाए जिनमें स्पन्ति भीर परमारम के डब्स हैं, पुराने सुगो से देवता स्वागत प्राहिषन मास ! भरो जन-जन में जीवन । बाइ-शीटिता वर्मुंबरा का सीटे पीवन । भिटें मनुक - साकृति विकास पब के ये दसदल

करे फान्ति - रदि-किरण जगत का पय ग्रालोक्ति ।

शोषण की बारा न बहे फिर । मरनेवालो पूँजीवादी सस्कृति का कोक्ट समाज का

श्राद्ध करें हम वितृ पक्ष में । विके द्वितीया इंडुक्सा - सी बड़े नई सस्कृति दिन - प्रतिदिन ! बीर विजयददामी फिर ग्राए विजयदिवस जनता का पावन ।

विज्ञपदिवसं जनता का पावन नगर-नगर में ग्राम-ग्राम में हो विज्ञपोत्सव

निर्पनता रूपी रावण की फुँके, प्राग जला समता की।

--मर्वदत्त दवे

पय स्तप्ट होता था रहा है। तीत बातें हैं—सपने-आप मे प्रवृति, प्रवृति धौर मनुष्य की बेदना, प्रवृति धौर मनुष्य का तादात्म्य। तीनों का विवेचन करने पर हुमें नए स्प मिमते हैं। क्षित्र व एकमव नहीं है, क होंगे, फिर भी हमें सेतता स्पप्ट ही है कि जीवन की धाम्या बात्र प्रवृति के उपरेश नेत्री है, उससे सकती है, येत प्यार करती है, सब बुद्ध स्तिब्द कि तो है सो धमना बनकर रहे, यह प्रवृति किरतर सुक्र बनकर रहे धौर मानव को मुख देती हो। बस, इतना ही उसना वृद्ध है।

इयोलिए कवि मुन्दरता को तभी मुन्दर मान तेने को तत्वर है जब वह उसके मन की मुन्दरता की कन्पना से मेल सा जाए, धन्यषा नहीं। तभी वह कहता है कि जीवन का समर्थ पान प्रमुख है .

> जीवन के मुसुमित उपवन में गुञ्जित मधुमय क्लान्कण होगा

कर दिया वह यन्य बनवासी समीर ।
हिरत ग्रुति जीवन-शिला की एक मीठी मांच
स्वतर में सेवी निज नवत प्रवयव प्रति दियस
है दीर्घ करता जा रहा जो सत्य उससी
मित्र मन्तर बदना ।
हिन्हीं भारी दो शिलायों की ग्रुपेरी समिम मे
उनते हुए उस सत्य को जिसने प्रवर उर-रिश्म के मायात ले,
जिसने हुदय-एकप्र जीवन की सक्त प्रनुभृति की
स्वानुस-सजल बरसात से गंभीर-महिषापूर्ण थी-मय वृक्ष में
मों सहन परिचत कर दिया
उस रस्त-रिश्म विहानवाले सान-गृष् के सूर्य को
उस विकल जस-विस्तार काने-गृष् के सूर्य को
उस विकल जस-विस्तार जस-विस्तार वाली
गृहन मन वरसात को मेरे हुदय की किन्हों नीरव
दो शिलायों का हुतव प्रणाप है।

माटो के निमृत मे डूकर बनवाती समीर ने लाकर बीज घर दिया। हरा रण जीवन को शेपिशरा वो मीठी मान है। उस जीवन को किव बदन करता है। इसीमकार किव के मन मे भी शे पिताए हैं, किनु भीवर ही वरसान है भीर वह जोवन-शिक्षा भी है। यह किव मन में भी शे पिताए हैं, किनु भीवर ही वरसान है भीर वह जोवन-शिक्षा भी है। यह किव वा मुर्च तम्म रूप है। निये उपमान, नियो विज्ञारमत्वा, नियो तर-योजना, मह ही वह प्राक्ष्य के हैं। यो पीछे वो पितायों में महनता मिक है जितने की वीन को शोक्त वना दिया है, किनु यह विवार मारी शिक्षाओं के स्वर से ही मारभ होती है, स्वतिए इनका मारी होते जाना भिक्क सीट्य ही लिए है। बरसात है जीवन की सत्त प्रमूति। में सम्भना हू कि 'उनस मतुमूति' मीर 'सजल बरसात' के स्थान पर यदि विवा का मनुमूति' और 'सकल बरसात' कि स्थान पर महि पात की स्वता से मित्र स्थान ही अंगोयता के ही पित प्रमुत सम्भन्न हो जाते। बीचन के प्रति यह ममता भी यपने साथार सर्वेत्र दूटता हुई दिसाई देती है

चड़ती जमुना को धारा में तो कूद गया तराक बोर कायर हो दोका करते हैं उसने कब सीचा कहाँ तीर ! नागिन - सी प्रतासकर राहरें उठती हैं उसने धाकसान सब क्यम नियतने को बढ़तीं करतीं भीषण रूप धासाना ! दिह्मकड़त थर- भर भयकात सहतें पर कृती के पहाड

## समाज ऋौर युग-सीमा

जिस समाज में हम रहते हैं उनने मनेन प्रकार के बन्धन हैं। वे घरोर मौर मन के विज्ञान में बाघा शानते हैं। इसलिए उनना जिरोध करना भावस्पक है, न्योंकि स्वि तो क्वेता चाहता है। उस पूर्णना का विरोध करने से ही विपदाए सामने माती हैं।

"तुषान साहब को चुनीती दे रहा है। मेरा स्वप्न है कि मैं उस पर जऊगा, मौर सियु कह रहा है कि मैं ठरणी को ड्वाङंगा, भौर विस्वात वह रहा है कि मैं नहरों को हराऊगा, क्वा चवारी मौत से सबमीत होती है ?"

(हरिकृष्ण प्रेमी)

इस विद्रोह ना सहारा पोवन है, नवेकि यौतन में रक्षति होती है। बौरन में व्यक्तिसुन्दर होता है। सुन्दरता पासि है सौर प्राव्त वसस्प्रपाविवहुन ही स्वामाविक है। ब्राव्यतन परवी के विस् है। वह स्तृता है, 'पहने मित्री कोदेहन्दान देग पत । स्

पूर धमर बागरण है, अपनेवाजों को स्तेह-सान देता पता " (देवेन्द्रमाराज्य वर्षा)

माटी को बान देता महत्वमं है, क्योंकि माटी हो धपने प्रकारात्वर से जाबित है
भीर चेतना का हुए भी वृद्धीसे विकसित होता है। इसके निए नये विव्यस्त को आवस्य-

मार प्रज क्ला है।

"विस्तास सपने में वडा है। सपर्य तुसों में बडकर है। विस्तास मनुष्य के वायत पौरप को प्रविस्तिता का क्वर है। वह भदियों से जागो मानवता को धनत्वासी का कर है।" (प्रवत)

पोस्य को जिस अकार नया निव जगाता है, वह पुराने निविधों से जिना है। पहले पीरव इस अकार भारतमरक रूप में नहीं जगाया जाता था। उस समय उसे निसी एक स्वाहन विसेष में निहित कर दिया जाता था। यह मारत्यरकता वस्तु को व्यापक बनाने के जिस काम में साई गई है। बीद कहता है

> "मैंने नदोन विवारों के बीज बोए हैं । परनी पर नदा इसान उसा माता है ।" (ओहरि)

उसे किसी मी प्रकार का वैपान पछत नहीं है। समाज में किसने ही प्रकार के स्थवपान हैं। सुनसात, दरिष्ठ, पनी, बहु सहको सोड देना बाहता है: कर काम खेत में स्वस्य हुई
होगी ततात्र में उतर, महा
दे न्यार बीस को, फेर हाय.
कर प्यार, बनी माला धरती ।
पक रही फसत, लद रहें चना
से बूँट, पड़ी हैं हरी घटर
तोमन 'को साग ग्रीर पीहो
को हररा भरी - पूरी धरती
हो रहो सांक, ग्रा रहीं गायें - भैसे
जनत से ग्रा रहीं गायें - भैसे
जनत से ग्रा रहीं गायें - भैसे

--सोद

एक भी पिनन व्यर्ष नहीं है। पूरी धरती है, पूरा ग्राम-वित्र है, ग्राम-जीवन है। एक 'सकलत्व' हमे यहा निजनी गहराई से मिलता है।

गोधली बेला म धरती।

पात्र का किन हुठ को सागे रखता है। त्रकृति के ही रूप में उसे सौंदर्य मही मितता। प्रपत्नी मनवाही हो बाए तब ही उसे प्रान्द शाए, तब हो उसे मुन्दरता भो दीख पढ़े। यो मनुष्प तो दीन-हीन हो, परंतु प्रकृति मुन्दरनी हो, तो भी वह हृदय कहा से मितेगा उस रूप से, जो रूप का प्रमाय डाले। तभी वह कहता है

> जब सजी धतती बाने में बहनें जीहर गाती होगी कातिल की तोर्वे उधर इपर नवयुवको की छाती होगी

तब समभौगा प्राचा बसत ।

पुण - पुण से पीडित मानवता सूख को सांस्य भरती होगी जब प्रपने होगे वन - उपवन जब प्रपनी यह परती होगी तब समर्मुगा प्रादा बसत !

जब विश्व - प्रेम मतवालों के सुंसे पय पर सालो होगी समाज भौर युग-सीमा

भीतर घोर बाहर की घाग एकाकार हो गई है, तभी तो विद्रोह का पूर्ण स्फुरण दिसाई देता है।

"श्रीवन वो हार—सहते की सोमा भी ठोकर सार्वे-सार्वे मान मगर मगर है, वह मगर किसी हत भूमण्डल में मान तगा देगा। सही-मही में मर्यादाए सूमान ठाएगी, विनके मावती में सही ही वी वीचना किसी ये वाहगी। मान-सम तत-वारं का-मण में उन माएगी। मणमानों की पोर घटाए भीचम वस गिराएगी, तब भू से नम तक वीध-वाह की हरी ट्रानिया नहराएगी। 'शिवक्ष किसी वारें हो।

सहन करने की भी एक सीमा होती है। कब तक मालिर अपमान सहा जाए। लेकिन सीमण से कभी तो समुख्य ऊनेगा ही और वह प्रनिजीय सबस्य तेया। कायर मबस्य भागने लिए टरते हैं

जिनको भुजाधो की शिराएँ फटकी ही नहीं जिनके लहु से नहीं बेग है धनल का। शिव का परोदक ही पैय जिनका है रहा चक्ला हो जिन्होने नहीं स्वाद हलाहल का। जिनके हृदय में कभी द्याग मुलगी ही नहीं ठेस सगते ही घहकार नहीं द्वलका, जिनको सहारा नहीं भूज के प्रताप का है बंडते भरोसा किए वे ही ग्रात्म बल का। उसकी सहिष्णुता, समा का है महत्त्व ही क्या करना ही माता नहीं जिसकी प्रहार है? करणा क्षमा को छोड़ भीर बया उपाय उसे लेन सकता जो वैरियो से प्रतिकार है? सहता प्रहार कोई विवस, कदमें जीव जिसकी नशों में नहीं पौरय की धार है, करणा क्षमा है पतीब जाति के कसक घोर समता क्षमा की शुरवीरों का सिगार है।

मुनता पत्नेन्द्र की चिधाड जो बनो मे कहीं भरता गृहा में ही मृगेन्द्र हटुकार है सूल चुनते हैं, छूते झाग है जलातो, सूको— सीतने को देखों गर्जमान पराचार है

सरता कहों भी एक तृण जो तरीर से तो उठता करात हो फणीश फुककार है .बहां उमरी पकड नहीं हो सकी है। और वह भीतब बबकि नये कवि ने अपने विषय को बढ़न सड़ब बनाकर प्रस्तुत करने की भी चेप्टा की है।

वो सविताए बोलियो में लिखी बाती हैं, उनहीं प्रेयपोमदा मुख सीमा तक प्रांपक होती है, परतु उपर्युक्त सीमा उसपर भी लागू होती है। कवि इस घरती का नया माजिक किमान को मानदा है

> बहु मन गलगल स्तेतवा के रिनयां प्रव भा है धरती क मालिक रिसनवां!

> ×
> हारे - कारे छाय रहे भीर के बदरवा,
> सेंग - संग भूमि रहो भीर के बदरवा,
> सेंग - संग भूमि रहो संवरी बदरिया।
> यातन के सेंतवा निरावत रिस्तवर्ग,
> धोंठे - मोठे गीत मार्च चन्दामूस तिथा।
> बदरित महदों जैसे गोंठ सागि सोते के
> तंसी खेंतिहारित कू झोंठे है चदरिया।
> होते - होते स्मक्ति रही है पुरवह्मा,
> भूकि - भूकि भूमि रही रस वी बदरिया।
> सम - भ्रम भ्रमक्त संतवा के पनवां
> वीसे उठ जमुना माँ चचन लहरिया।
> गीरवा हरेट देंति मणन नितनवां
> तहर - सहर वर घना के चदरिया।

—बहमपय त्रिवेदी

काले बादलों के साथ सावरी बदारिया प्म रही है, यानों के खेल में नराब हो रहा है। खेल के पान नमस्मा ऐने भमक रहे हैं जैसे जमूना में चचल लहरें उठनी हैं।

हिसान बाव्य में श्वास या बरणा के बागने पर बिन्नु 'यून' उसका सायी यन गया। दमा का स्थान 'प्रविक्तार' ने ते तिया। यौर फिर मानदीय प्रक्तियों के विकास ने सिर उदाया। मनुष्य का बेभन, उपरा गुरुख सामने आया। उसमे जो भी सुबन-कती है उसकी महिमा गाँदै गई। उसीने विसान को भी स्थान मिला।

हत मनुष्य का सायुध बना, श्रीर इस नाते जसने सता पाई ब्रह्मा के सर्थनरस हाय की।

बाधाए पर्नेत क्टलाई, प्रतिक्षिया को अधकार क्टा गया, और क्षयुण का पर्मोय बता उपना सूर्व । दसता सूर्व गत गुप का प्रतीक बता । इस प्रकार प्रकृति के बहुत में रूप प्राने गुण-साम्य के कारण एक विरोध वित्र देने तमे, अँसे नाथ सल-गुण में उन्होंने उन निर्माय सुन्य स्वासों से साल पूँच हूं तो नव जीवन भर हूं उनसे तुकानी का प्रयाणित भूचातों का कम्पन ! जल - क्वासा भूकम्य तुम्हारे ही ध्रतुतित बल के यरिवायक सांधी भी तुकान तुम्हारे शिक्तमान स्वासों के बाहक उठो - उठो ऐ सीते सागर नई मृष्टि को छे तब कम्पन सीर तियु भी, बन्यू, तुम्होंसे जिससे स्थित सग-नग का कारण जागो स्हचानों प्रपने को मानव है, समस्त्रो निज गौरव सम्मताल की सांखि सोलो देखो निज स्तुतित बस यंभय

सहंकार धी' स्वाधिकार--दो पुषक्-पुषक् पथ हैं बदी।

--नरेन्द्र

मानव को घपना गीरव पहचानना है। वह तो एक बागर है, किंतु ऐसी नोर में दूबा है कि घपने को मूल गया है। बानित ही उसे जना सकती है। कान्ति अब झा गई है। पिपपणा की वामन सकतारों को मकार में भक्तर रही है। चह मगदाई सेती है तो भूजात चाते हैं। जायस को पहली मक्तक से स्थित की कालह छा जाता है। विघर उसके पात बढ़ते हैं जगर मूंगीस दब जाता है। जब दिशाओं में सपट सहराती है तब सकस कर बयोज मुजा उदता है।" (रामपारीसिड दिनकर)

दिनकर की क्रान्ति में उत्पात बहुत है। जैसे क्रान्ति न हुई दिव का ताण्डब हो गया। किंतु के क्षतिप्रधोनितया प्रभाव उत्पन्न करने के लिए प्रमुक्त हुई हैं। सुन्ध प्रमिन् व्यान्नवा के कारण कवि बामोलनों में यह कविता घन्या प्रवार जानती रही है। यदि प्रहा को होडकर देखा जाए, तब भी दसमें जात है, गर्शोकि दसमें एक स्कृत्य की मानक घवस्य पिमजी है। इस जाति के रूप में निर्माण कम है, विष्वत प्रधिक है

मुक्ष विषयाामिती को न ज्ञात किस रोख कियर से प्रांकेशी पिट्टी से किस दिन जान कुछ प्रदर से प्रांग समाऊँगी प्रांत प्रपत्न कर बन्द देश में जब भूकाण मचाउँगी दिसका हरेगा भूगा, न जाने, किसका महत्व गिराउँगी निवंध कुर, निवाँह सदा, करास नतंत, गर्जन, करा - भूग

प्रव की प्रगत्सप की बारी है, पापो के पाराबार ! सजग बैठे विसुविषत के मुख पर, भीले, सबीप मसार ! सजग रेसों का रक्त इसानु हुया थी जुल्मी की ततवार ! सजग सोना-सोना चम्पा-चम्पा मे चमक उठा पूर्लो मे फलो का बसन्त छा गया हुस्तर निद्दी को सोधी-सोधी महक तगी उडने सरिता की घारा मे जीवन छा गया सरस। जीनोहें की स्विणम बाली

लहलहा उठी

उतरे विहम के दल के दल गायन करते,

द्यामो के पल्लव, दूव,

किरण की शुचि पाती

हल की पूजा में जुटे

एक पल में खपने। मानव को झारमा का मजारा युग-युग से हल निसको नोकों में सामवेद पुतिस्त लताम; जिसको मुक्कामों में पत्तरी सम्पता वरम, उस हल को करता है पहाद कुक-मुक्क मणाम!

—देनाथ पाटेथ 'साल'

यह को घन्न है, जिनको उपिनपरों में महिमा गाई गई है कि है मन्त ! तू बहा
है ! वह नये गुन में दूसरे रादों में माने मिल्यानित पा सका है। मन कान नो बहा
का रूप को नहीं माना जाना, परनु उसके महत्व को पहने के कही अधिक उक्षा उठाने
का प्रयस्त किया गया है। हारी मृष्टि के घरर एक सन्ति है। वह सिन मनुष्य में भी
है। मनुष्य को सिक्त उनके मम में है। हल उठी मन का एक प्रगीन है। हो जब वह हल
में दू उपाता है तब दूब, पते, किरन, हल नो पूजा में जुटते हैं। पते आम के हैं। प्रयस्त ने उन्हें मनतम्य माना है। दूब भी मगत-चिह्न है, घीर स्वकर भी न मरवेवाको हिर्मित्सालों है। किरने सम्ति को हरती है। वो हल की पूजा करते हैं—मगत-परापर, ब्रह्म ओवन मोर भागों का इस हल में ही सम्यता पनती है। इस हल को पहाड भी प्रयास बरता है वसीनि इसकी गरिमा उनकी निराद काया से नहीं प्रधिक वडी है। इस प्रकार हल के रुप में मानव की माला को ही उसकी मधूर्ण महता याद दिलाकर सबके उत्तर विकार में प्रयस्त हो नहीं है।

> एक ही प्राइतिक ब्यापार के हमे सिन्त-मिन्त रूपेण वर्णन प्राप्त होते हैं -दूर गयन से दूट रहा है एक सितारा ! भवत्रार की धाती पर

को भ्रकेला सुलभा तो नहीं सकता। 'मानव' ने सहय रूप से भ्रन्छ। चित्र खडा किया है.

"मैंने कहा, तू पडती बया नहीं ? मोरा चौककर बोती, बातू । हमे कीन पडा-एगा? मैं यह उत्तर मुनकर इस पुष्प देश की ग्रीत वर्ण-व्यवस्था पर सोचने लगा। विश्विष्यो ने बात पर प्रथिकार कर निया है। दया सण को उसवी किंतु कगारे पाकर सीनित हो गई, बहु नहीं सकी। यह बोनी मैं बहुत देर को प्यासी हूं। मैंने कहा सुराही सामने रखी है, गिलास से पानी भें ले। उत्तर कहा मैं तो जात की चमारों हूं। मैंने कहा मैं भी पमार हूं, बल पो ले पानी। वह पीती जाती थी थौर रोती हुई मुझे देखती जाती थी।" (विश्वम्मर 'मानव')

इस लड़की को कवि इनाम देना है, परतु बाद में प्रफसोस करता है। इसी बीच लड़की प्रपनी मेहनत के पैस्रों के अलावा पैसे लेकर वापस करने सौट माती है।

कान्ति का सूत्रपात ऐसी ही तीक्षी मारों में हुमा करता है। हिंदी में ऋक्ति का रम भावांचेस स्थिक रहा। उसके पीछे तीसे पिन कम उमरे। सब बुख को जैसे सामान्य करके रामा गया

> में आती हूँ बन नयी सृद्धि व्यक्तों के प्रतय प्रहारों में में आती हूँ पर फोटि चरए। युग के अनत हकारों से! में आती हूँ है नय भाषा

में ग्रातों ले नद ग्राभिताया नव शब्द छद लय ताल मीड

नवं शब्द छ्द लयं ताल मोड नव गमकों को गुञ्जारों में । चोरतों रूडियों की छाती

विजती बन तमताको डातो, मंग्रातो हूँ कथे पर चढ मृत्युञ्जय ग्रभय पुमारो मे।

जड यतानुगितिका हिला-हिला प्रधानुकरण पर बनी दिला ग्राती हूँ कसक कराह लिए में मरती हूँ बैटारो मे।

कवि को देती घरदान नये रवि को देती मैदान नये जब चन्द्रमा,
पश्चिम की भील के किनारे
प्रमने हरिण लोज देता है,
कभी दक्षिण भीर कभी उत्तरा
बनकर मुख्द की हवाएँ
नील नामो की भीति खेती मे
मूंह मारने तपती हैं,
धौर जब घडे सेक्ती हुई फूली-कुसी
लाल बडे पूली-सी भुगियाँ, बांच सुनाने लगती हैं,
सोने का एक धारवस्थ बीत
प्रशब्दा मनने दिस्टर होयो से पाउने भावा हैं।

—नरेशङ्गमार मेहना

पुत्रह में हवाए नीत गायों की तरह खेतों में मुह मारती हैं। मुर्गिया लाल बड़े फूली-सी दिलाई देती हैं। धानाय के हाथ छितुर तप हैं। वह एक बीज पातने भाता है। बीज है अरतरण बीज भागी पीपल को सरवरण तार ही अपने ताथ बहुत बड़ी रपरांत है। बीज से यद बिड़ाके मार्ग में रहना है, बीर यातुमान उसकी देखता है, बहु सरवरण बीज है। बदनियद में भी प्रस्तवर बीज के अर्चभूत है। गीता का धरवरण वी प्रसिद्ध ही है। यह परवरण निरतर भारतीय चितन में अपना स्थान रखना मारा है। बीजि हुन होने के नारण इसने भारत दीजों में भी पाया है। परंतु नरेयडुमार ने उसे धरानी हुन होने के नारण इसने भारत होजों में भी पाया है। परंतु नरेयडुमार ने उसे धरानी हुन होने के नारण इसने भारत होजों में भी पाया है। परंतु नरेयडुमार स्वत्य का हो एक पर्याव है। चालि के इस पक्ष को नहीं नित्या। उसकी भारती चल्पना है भीर जैसा हि कि ने उसर दश हो हो कि मार्ग है। प्रस्तावर के आपनी चल्पना है भीर जैसा हि मेंने उसर दश है। विवाश के नरीनी विवाश नरीनी मार्ग है। मुर्ग मार्ग की मार्ग नल्पना है भीर जैसा हि मेंने उसर दश है, वह नथे चित्रों में पूराने चित्रों वा नवीनीन रण है।

नरेत के सब्द बहुत चुने हुए होते हैं और वे जो प्रमान चाहते हैं, वह स्पट्ट सामने भा जाता है

बोस्टर तक सोने की पतियाँ फूली फ्रीर फली से तदा सोने का वीर्यवान धारतस्य बन जाता है उसकी प्राया में हमारी प्राया प्रसार होनी है हमारे पगु उसके तीचे बंठकर जुगाती करने समते हैं उसके माने पर मनत है, मारिहोन है। उसरर इतनी ही जगह है कि एक ही पाव रखा जा सके। वह पाव उसी वित्रीही का है, यानी 'हम' का है। वह कठोर चरण है जो माततायी को रॉट देगा। अतीत के काले पायों के मयकार में यहा लाल माग का एक मात्री गोरव का विद्वा बनकर मागता हुमा दिखाई देता है।

परतु दार्सनिक का कहना है कि यह यात्रा तो योही बलती रहेगी। यह रुकेगी नहीं। सफर बराबर बना ही रहेगा। न जाने कितना समय बीत पुका है। इसकी गणना करना भी एक अम ही है। यह तो अनादि मनत पय है। इसका भेद असल में कोई पह-

चानता नही है

सींपियों को चीरता इस्तान चतता ही रहेगा हो न पाएगा सकर लेकिन कमो कम । एक युग क्या करुप बीते, करुप भी भ्रम एक मन का, है न कोई मादि, कोई मत है इसके सुजन का। जग इसे निमित किसी को करुपना से जानता है। पर न कोई ठीक इसके भेद को पहचानता है। रूप न कोई ठीक इसके भेद को पहचानता है। रूप न सोई ठीक इसके भेद को पहचानता है। रूप से सी - सी मुक्त पता, मिदाता, मुस्कराता, बादलों पर तीरता, नम जगमगाता, मू हिनाता— मांवियों को चोरकर इन्हान चलता ही रहेगा, हो न पाएगा सकर छेकिन कभी कम।

x

कूल-सा इसका हृदयतो गूल-सो इक्षकी जवानी, ब्रांकुर्घो को भार प्रविरत, है कहीं मीठी कहानी। दोप-साजलना इसे भाता, शलभ-सा भूमना भी, है मुखा प्रिय तो इसे प्रियहै गरल को जूमनाभी।

X

ले ब्रटल विश्वस्य, सरथों को जगस्ता, अगम्याता, रौंदता कटि कुमुम, दाव यातनाचों के उठाता। है उगसता ब्राग, झाहों से उगसता ही रहेगा हो न पाएगां सकर लेकिन कभी कम 1

—शान्तिखरूष 'बुसुम'

परतु मनुष्य की यात्रा नहीं रकेगो। उत्तका हृदय कोमत है और यौदन चुमने-वाता तथा साहसिक है। इसका वाम है प्रपता स्तेह असाकर अवते रहना, प्रालोक फैलाते रहना। यह पमृत वा प्रेमी तो है ही, परतु विष भी पीता रहता है। तुममे जागृति की विद्युत है, उठ ए नव युग के अप्रदूत । उठ ए स्वदेश - श्री के सुहाग ! नव युग आया, नव यवक जाग !!

—रतनतान साध

नहां कालिदास की करारती मेखला पहने नित्तिको बुनिवियो का मादक वसत, कहा मादक वसत मे युनक योर वह भी नवसुग का प्रतीक । प्राचीन किन पुरप घषिक पा, स्वी के क्षेत्र मे, नचा है पीरप का प्रतीक पुग के क्षेत्र में । यह एक बहुत वहा भेद हैं । प्रत्य वादा है मनुष्य के स्वामी साव का। पुनती के प्रति में 1 यह एक बहुत वहा भेद हैं । प्रत्य वादा है मनुष्य के स्वामी साव का। पुनती के प्रति 'वित अब भी विद्यास है। स्वा युनक शीर मुग के प्रति भी वनी रहेगी '' निप्त प्रत्य है कि पुण दृष्टिकोण है स्वी में जो अनुरक्ति है क्या स्वी को भी यह उतनी ही आकर्षक सगती है ' वया साज की बदली हुँ नितक भावनाओं में भी दाश्विदास की ऐसी उत्तिव्यों का वही प्रमाव पढ़ता है ' मैं तमफला हुँ नहीं। आव उत्त स्थुतना से किन सुन्य गुलनारासक रूप में पूर्वका प्रति है में समकला हुँ नहीं। आव उत्त स्थुतना से किन सुन्य गुलनारासक रूप में पूर्वक पुण के प्रति सावन को ध्यनत्व की मनता होनी रहेगी। भेरी उपनिषदी के वितन से समस्यायों के सने पहने से हम सभी तक प्रमावित होनी होने सि समस्या होने पुण के प्रति होने सावी आसमा में से कितवाए सपना स्थान रखेंगी। प्रवरस ही दनका श्रीसत्व सावत के सर्वी मीच वितास को प्रति तह है वह कही सके। प्रवर्ध ही दनका श्रीसत्व सावत के सर्वी भीच वितास को प्रति तह है वह कही सके। प्रवर्ध ही दनका श्रीसत्व सावत के सर्वी भीच वितास को प्रति तह है वह कही सके।

युग के प्रति नरेन्द्र ने दूसरा चित्र दिया है। स्थायी भावों मे इन चित्रों की किस

रम के अतर्गत माना जा सकता है, यह अभी तक प्रश्न ही है। कहता है .

मांज रही है प्राज ग्रमावस्या नयनो मे काजल निश्चम नया चाँद कल उगता देखेगा जगती - तस

तिय के मत्तक का मान्यण नये जांद का संकूर यह जितना सोभारताची है, है उतना हो निष्टुर। एकदत के एकरत न्या राष्ट्र-याह से निर्मय उननित का रथ-चक चनेना यह चाट निस्ताय ! महै, ज्योतिकोध्योग स्वान्यकाल्याम्याकल्या

--नरेन्द्र

समाबस्या का कात्रल पारता क्या प्रयं रखता है ? काले में काला क्या दीखेगा ! परतु दसमें हम यही तालचे निकाल सकते हैं कि समाबस्या उतनो काली नहीं, जितना उसका सबेरा है, यह भी चीच-अन करके ही। नया चाद सबस्य हो नवसून बन वार्गा। इन कविनायों नो रस की दृष्टि ने हमें बीर रम के धनगैत रकता होगा, क्योंकि सानिद जल गए सालो-करोडो मर गए मानव बीराते चहुँ क्रीर हत-बाट्न, क्रसरयोशव । किंतु मरकर दे गए वे मुक्त जीवन-वर । मृक्तिको परियो उत्तरतीं श्राम सपटो पर।

—तेवनारायस काक

मृत्यु ना विरोध प्रारम हो गया। लक्ष्य प्रच यता से उत्तर उठ प्रांचा। मृत्यु जीवन को उठाने वा माध्यम वन गर्द। विध वहता है "गाधा। प्राव तुम वय राग गाप्रो। समस्त विहास को भैरवी से तिहाने होने दो। तुम्हारी हृदय वीणा वयो निस्तर यहाँ है। प्राव प्रात्मा वा उक्तव सुहास सुद्र न बाए। जासरस के सात सुनकर प्राव मृत भी हिर जास उठी।" (प्रापाद)

यो विद्रोह चलना रहता है। हृदय की बीजा से फिर फकार सरी जाती है। सारे-सारे राज मिलाकर उद्शोधन के स्वर थे लाकर ड्वाए जाते हैं। भारमा का सौदर्व प्रशुक्त रखना उसका ध्येव हो गया है।

तो नया समयुन सब कुछ सोया हुमा या ! नहीं ! बागरण मोर मुसूब्ति मन के विस्तास हैं। प्रतोक हैं। पुराने कवि को भी अपने ही सुस-टुल में प्रकृति को देसने की भारत थी भीर वह कवि में भाज तक वैसी हो खली था रही हैं। यहा व्यक्ति मूलत नहीं बदता है। उनको एक भावेस है

> मुक्ति की मज्ञाल जल, साल-साल ज्वाल जल!

धोर प्रथमतर है
स्त रही बयार है
शृद्धि दुनिवार है
देश तिपिर प्रस्त है
देश कोग्रा भस्त है
ज्योति यह मिटे नहीं
ग्राम यह युक्ते महीं
पृष्ति की मगान बत!

प्राप्त द्वार - द्वार पर नगर प्राप्त बाट पर प्राप्त पाट-घाट पर विस्थ ज्योति यह जले , बानी हित्रया—हर जाति की—उनको पूज्य नही दिसाई दी। मृत जाति-यमा का सम्बन्ध, मानव की सामान्य स्वीकृति इस युग की एक और देन है। मृतुष्य के कार्य-व्यापार में प्रकृति को वाषकर जब चित्रण किया जाता है, तब एक सपूर्ण चित्र-खण्ड झाकर उप-स्थित होता है।

प्रकृति को रूपक के तौर पर लेने में प्राय कवि एक ही बात को दूनरा-दुहराकर तिसाते हैं, नयोंकि समय का चरण तो प्रभी बहुत ठेजी से बढता हुआ लगकर भी बारतव में उतना बढ़ा नहीं है जितने की प्राशा थी श्रीर वित्र को बार-बार उसीका सामना करना पड़ता है

ग्रधकार ग्रपार भे पर व्यापमान ग्रधकार श्चपार द्याया ग्रासमान केवल ग्रधकार ग्रधकार सग्रदत कहाँ जीवन का विपल विस्तार हास-विलास छा गए बादल, छिपे तारे, ढँका भाकाश कहाँ शेष प्रकाश व्ययं दृष्टि ग्रदृष्ट जिससे सृष्टि साज हो रही है घन - तिमिर में वृद्धि द्याज नवल प्रकृर, नवल जीवन, नव समाज हो रहा निर्माण, नाश, विकास, हास-स-हास ! भाज का यह तिमिर करता शक्तियान समभने मानव लगा है शक्ति-ज्ञान स्वत्य, जीवन, प्रगति, सामञ्जस्य, मान. हो चला संघर्ष इससे

---विशोचन शास्त्री

केवन सपकार समझ है। सपनार, पकुर, प्रकास, सब धव अपना महत्व उतता नहीं रखते, वितता पहले रखते थे। मानव का स्वस्य सागे सामा है। इसका नारण है सुना युग यदाय एक प्रतीक है, परतु समस्या नगी हुई है। एक घोर इसकी प्रतिविध्या हुई कि बार-बार बस्तु के बुहराने से काय्य नहीं वनता। दूसरी धोर हुठ वता कि इसकी निश्चित करना ही पायस्यक है। इस ब्रन्ट में निसीने भी सोव-बीवन की गहराइयों में सभी तक नरण नहीं रखा। ध्यापक जीवन प्रतीकों के रसण में मही करता।

कास्त्रशिवासः [

स्पन्ति तक सीमित रहे यह हुएँ वया है
स्पेय जिसका स्थार्य, यह समर्प क्या है
दिख के अगणित प्रतादित सानवी को
देन जो सतीय, यह उस्कर्य क्या है,
सृष्टि का कस्याण गति की चेतना है
भूस प्रपना सुद जात् का हु ख बदा तु व सर्वणाती होय बन मृदु प्यार जाये
अस्ता का बार बन गदु प्यार जाये
अस्ता का बार बन गत् - हार जाने
नात जाये सृजन का नव देवता बन
और सण्डित दिख बन परिवार जाने
माँग अरने हुन्य बनि की बेदिका की
बह अस्तिता नीय निर्मय ही करा तु ।

- पद्मसिङ् श्रामां 'कमनेश'

ग्रपना दु स क्यो सोचा जाए । लोक मे क्या कम दुस है । सायद बुद्ध ने भी ऐता ही सोचा होगा, परन्तु तब वह विजयी हुआ या। उसने बिलदान दिया था ग्रपने मुखो का। तये मुग को समस्या नया बनिदान चाहती है । तभी कवि ग्रब बनिदान की आख्या करता है

"धपरो को मुस्कान विजय का पुरस्कार नहीं है, वय की बीमामी का नान कर्म की पूर्ति नहीं है। स्वननती दासता से तन की उन्मुक्ति नहीं, मास्यस्याय की शक्ति है। प्रव इतिहास की देन को बरबाय बनागा है। रात बीत गई। बिहान हो गया। जहां कस्पना चरक संस्थ का तस्व पा सेती हैं, यहा मानवता देवत्व पाने को उत्सुक होती है।"

(विद्यावती मिथ)

केवल कह जाना काफी नहीं है। हमारी हवारों मीमाए हैं, परतु उनका जात लेना ही बचा काफी हल है। वन दासता से छूट गया तो बया हुया, मन भी तो साथ हो वदलता वाहिए, बचेकि उन्नके विकाद में ही यारों मोर हा जाएगा। जो प्रियकार प्राप्त करने को बड रहे हैं, उनका मानसिक स्तर प्रत्याचारियों से कहीं प्रीयक उन्चा होता पाहिए। इनिलए प्राप्तत्याय नी पानित होनी चाहिए। मारतीय चितन इस सत्य को सदा से ही स्वीकार करता प्राया है। यहले यह वैयनित रूप में या, प्रव यह सुमिट रूप में है

> जत रहा रस्त की ज्याला में कहाल विषयता का विवाद

—बीरेश्वर्रमङ्

हैं ब्रागम उमड़ चली सहस हजार दल सँवार जा रही हैं झाज कहीं हूर, दूर ! एक मील की झटूर काजरी लकीर एक लक्ष्य जा रहीं घरम्य राह बीर—

×

राजा है कोई न कोई है रक चौंटी को दुनिया मे चोंटी निस्सक ! ×

रोकेमा कीन भला इनका दल ? एक-एक चोंटी में एक-एक गज का बल।

इत चीटियों में जब-नीच नहीं। प्रपती दुनिया में चीटियों को शका भी नहीं है, चीटों में गज का वल होना जायसी दी नागमती की झाहों से कीमों के काले पड जाने के समान होते हुए भी, सच्दा प्रभाव धोडता है, नयोंकि दल राज्य में ही शक्ति निहित मानी जाती है!

यह तामुहिक रूप ये जो प्रकार और ध्यकार का निरन्तर समये जल रहा है, वह मासिर क्यों ? यह वममें है या मुद्रेण इसकी करने लगा है ! नहीं। सन् और धतन के रूप में यह धराना तो पहने तो हो विवासन है। जिसे माहिन काल्य का 'गिडरोम' नहने हैं, वह वस्तुत एक विशेष सीती के बाहर निकल पाने की मदामयंता ही है। चुर ऐसा विवार हो गया है कि इस गीती-विशेष के बाहर निकल कर जो जुछ निस्सा आएगा वह राज्य नहीं हो सकेगा। रहस्यात्मन भावना तथा नए उपमानो का सीय इसी सेनी के मत्रगंत हो सहना है, ऐसी मान्यता-सी वन मई है। दिनु सैनी-विशेष ही काल्य मी अंग्रना वा पर्याय नहीं हो सहती। यह सल्य है कि पुन-विशेष के प्रमान से निकलता सहज नहीं है। कितु युग में भी व्यक्ति की भावनी विशेषता होती है। यह हमें मदस्य मिनती है। कि वा निवतन मुखर हो उठना है

> निट्टी के तिमिर गर्भ मे तुम सोए बनकर जब ज्योति-बीज तब हुदम विधाना का जाने क्यों करणा से पट्टा पसीज?

ककातो को भाहति पडतो यह ऐसी भीषण विकराता ! भ्रव तो रहा नहीं जाता है भ्रव तो सहा नहीं जाता है बर्षों न क्षार कर दें उसको

जिसने जगक्षार-कारकर डाता<sup>।</sup> ग्राग घघकती ही जाती है पर इसपर सज्जा ग्राती है

कैसे बचा धभी सक जिसने

इन मासूमों का घर जाता <sup>(</sup>

—शिवमगलसिंह 'सुमन'

म्रव बह सबसे उत्तर 'जन' को रमता है। वह सत्ता त्यों बनी रहे जोकि सुख में कार्ट डाल रही है, भ्राग लगा रही है। उसकी सत्ता वची हुई है यह कितनी लज्जा की बात है। उसे तो कभी का नष्ट कर देना पाहिए या। यह कितनी बड़ी कमोट है ? तभी कवि कहता है

'हे हवि । सब कुछ नवीन देकर भी विधाता ने तुन्हें चिर ब्वितित ब्यया का रोग दिया है। कुसो से गात रचकर, भाग्य में शुलो का भीग सिख दिया। जीवन का रस-पीयून तुन्हें नित्य जग को दान करना है। तुम नीवकठ हो। तुन्हें तो गरलपान ही लिखा था। तुम सतोष करो। शायद लारी तहरी पर विरता आसा का तुन्हें कोक पिस जाए। है कवि, रोधों। शायद आसू के बीव घरणी को नया आसोक मिस जाए।' (दिनकर)

तो क्या कवि का हरम मनेदनशील होने के नारण ही उसे सब कुछ भौरो की तुलना मे अधिक व्याकुल करता है। परन्तु मह सत्य है कि किन सत्य को वह तक जाता है, क्योंकि वह उमे सीचता-मान नहीं, उसका धनुभव भी करता है। बात मिलक से हरव पर उतर आसी है। उसे इमीजिए यह लगता है कि ममनत उसकी वेदना से ही मनुष्य के बल्याज को सहीरा मिलेगा, वह कहना है

मं प्रपत्नी चंदराधों को चील की भगट नहीं बनाऊँगा कि जहाँ सडा-गला दोखा चोंच मार दो, विचारों को भूले भींडये की जीभ नहीं बनाऊँगा कि जहाँ दुधमूँह गोरत दोखा दोत मार दिए। मत जो काई के गड़दें में धेत गया है बुद्धि जो प्रमार्थ की तरह रहें के तत्त्रों में मुलय रही है सोना जो एटरपटाहट हाहाकार से चील रहा है कडो केवती, तो गई राह है।
गुका कांसिमा को निगमती बरायर।
गरम सांस यह कांपती-सो बरायर।
गरम सांस यह कांपती-सो स्वारायर।
गुरुत वह रही, मृंसु का दाह है।
सगी ग्रांस, सपने बहुत रंग दिसाते।
गुती ग्रांस, सपने बहुत रंग दिसाते।
गुती ग्रांस सुपने स्वय हट कांते।
गुती करणना जब हुई दृष्टि धूमित
बहे रग, साका हुमा स्याह है।
ग्रंथेरा बहुत, ज्योति की बहु है।

— दुमारी रमाभिह

प्रकृति का मच भी मनुष्य को बहुत सताता रहा है और अब भी उसका आनक गौजूद है। ज्योति की चाहता आज बहुत बढ़ी तृष्णा है। मध्यपुग का व्यक्ति यह नहीं गानता था कि बहु प्रकृति के सबथ में भयकार भे दूबा हुआ है। प्रकृति को बहु परमात्मा को महिला के रूप में मान चुना था। उसकी अब्सुत शिक्त भी उसीने चमत्कार के रूप में मानी जाती थी। आज का मनुष्य अपने को अधेरे में मानता है। उसके दीप इतने सक्त नहीं हैं कि वे अधेर को भी जाए। यह मनुष्य की विवचता है। यह केवल करना में मुख पाना है, यवार्ष यहन कठोर है।

मनुष्य का स्वध्य बहुन सरावत है। यह स्वध्य में रहता है वो उसे "ब्युने वजने के साथ रीत, शिंव किरयों के पक्ष सवाय जनते नजर चाते हैं। पूष्णी, करने, सरिताए, तर-वितकाए, कानन घोर नमा जीवन, सब उसे समने साथ बनते हुए दिखाई देते हैं।" (जरस्यत्वर मट्ट) इस स्वध्य को हम मनुष्य की बनवती माया बहुना हो प्रथिक जिंवत समग्र है, क्योंकि उसीसे उसे माने प्रश्न को प्ररणा मिनदी है।

हो सकता है कि भागे बढने का प्रयं कल बदल जाए, क्यि आब उसका यह दूद-विस्तास-सा हो गया है कि बह विकास कर रहा है। कवि हृदय इसे देखता है प्रोर ब्यक्ति-गत जीवन में उसके मन में सदाय मो हो उदता है

> सुनहरू सपन की रजत घाटियों से विसुध सन, विसुध मन चलाझा रहाहूँ, धमृत दान करने चला पद्य को में मगर पद्य हो से छला जा रहाहूँ।

क्या मनुष्य चल पहा है,या राह ही उने छनती चली जा रही है ? दार्शनिक इस प्रस्त को मुनकर पूर्व जितन में डूब जाता है ! वैज्ञानिक प्रपने सीमिन जीवन को ही यह कड़ो पड रही है कि क्षितिस के रवत सने वे कड़े बाँत यककर दीले पडते जाते घरतो का लोहू भी विष बनता जाता है तन सभी दिशाओं के नीले पडते जाते।

४ बह रो-रोकर बक गई कि ब्रांस तुल गए भ्रव बह निज बच्चों में माकाश भुकाएगी बह सप्पर भरकर शकर के बसस्यल पर किर मुमेगी, बच्च कृत बिडब बसाएगी।

वह आज मृतित के गाएगी फिर गीत नमें परवहाता का अन्दन इसकी स्थीकार नहीं।

--श्रीहरि

ईश्वर को योएको ने प्रपत्त सायन बता रखा है, इसतिए कवि पृष्टी और आकास का भगदा दिखाता है। कालिदास ने भी राजा की तुनना भूष से की थी। नया कि उसी करनता को मागे बढाता है भीर नये तस्य सामने रखता है। परतु केवल गोतों से होता भी क्या है?

"गीत दृख कम नहीं कर पाते। लिसे भला कोई क्या-क्या किस-किस पर !

रुडिग्रस्त जढ हुए विश्व में ग्रपनों के ग्रपनों से नाते !" (गाहि)

यों वर्ष सत्तप हो उठता है, उदबोधन सत्तप । यह इसलिए कि सनुभूति केवल कहने-मूनने से तो भपनी तृष्ति नहीं कर पाती ।

केवल रोने से काम नहीं चलता।

मुक्ति का गीत गाने को प्रीभेतापा इसीतिए है कि परवसता का अन्दन कवि स्वीकार नहीं करना चाहता।

प्रकारातर से, भिन्न-भिन्न कोणो से समस्या पर कवि विवते हैं भौर उसे प्रधिक से प्रधिक जनता के पास ते वाने की चैप्टा करते हैं।

जागरण एक ज्वाला है। ज्वाला उस शक्ति का पूर्णय है, जिसमे विष्वस की शक्ति भी है सीर प्रकाश भी है

> श्वाता है यह ज्वाता ! नाहें-नन्हें दीन श्रोपडों मे जो सुतगी घीरे-घीरे सात-साल गटसट सपटों की माता है यह माला !

तळता है घोर उसकी सास-सास कविता वन जाती है । जब वसन्त तितली के पख लगा-कर उडता है घोर तर-तक्ष्यर कुटुम पराग विश्तराता है, तब उसे धूमि को दुसहिन का मुहाग 'प्रसर' से भी घषिक अक्षर जान पडता है । कल-कत घ्वनि करती नदियों के पास जान र उसके प्राणों की पायत स्थय धनक उठती है ।" (नीरज)

कंडा त्यार है। यो वस्ती ! तेरा पुत्र है यह मनुष्य ! तुम्में कितना त्यार कस्ता है! बोर भोग्ये बसुपरे! यह दुर्दम पौरत तुम्भर नितना न्योद्धावर है! किंतु जीवन की मार्थकना क्या है! क्यो है यह जीवन ? कवि करण स्वर से पुष्टता है

-मिन द्राय्या पर बालाम्रो का प्यार या सहरो का विय-मन्यन कर स्वीकार क्या पाएँगे प्रमु, हम क्या पाएँगे ?

निस दिन यह सारा झाडुल अगयोन्माद,
रह जाएगा केवल दिसला झम्यास,
निस दिन साँची मे साँसे होंगी लोन,
पर मुर्दा होगी मन की सारी प्यास,
उस दिन होगा फिर यह सिढ
वैविदित सोमा मे बढ़—
जितना भूठा है यह दु ख
उतना हो मूठा है यह
बुद-दु क दन दोनों के पार
क्या पाएँगे प्रमु, हम क्या पाएँगे?

—धर्मकीर भारती

क्याहोगा प्रमु<sup>।</sup> जीवन वा सार क्याहै। वैयक्तिक सीमामे बद्ध सुक्त फ्रीर इ. स. दोनो फर्टेहें। इनके पार क्याहै?

समस्त प्रकृति विवि को कोई प्रेरणा नही देती। ग्रव तक का प्रणयोग्माद एक पिछला ग्रम्यान बनकर रह जाएगा।

जीवन वा रहरन प्रइति के मतर्गत ही खाता है यहा, उसे हम दर्गन के मतर्गत नहीं से सकते। बयोदि यहा मनुष्य के जीवन वा प्रस्त नहीं, उसका सृष्टि से तादारम्य प्रमुख है। वह देखना है

"मदिरा-सी मादक रात, गगन में चादनी वी मीनी उज्ज्वल सादी पहने मुस्करा रही है। उनके म्राचल से सहराती-इठलाती मानी मद पबन तन को छूकर मन में सिह्-रन-मर रही है। भ्रमरो के सिद्ध उपवन में सटधेनी कर रहे हैं। नितनी की राबकुमारी के प्रजेतर घोर उपसेत्र सभी पर बार करता जा रहा है शाबितवादी सभ्यता की व्यस वितक्त कर रहा है। में हिमालय को रगडकर रास्ते की घलि का कण कर रहा है स्वर्ध में बैठें हुए छवि देवता की साजनो के साथ जीने भीर मरने के लिए ललकारता है सामने जाकर उसे धिक्कारला हैं भ्रोर कहता है कि भ्रा, इन हड़ियों से सोल ग्रपना काव्य कायर ! है कियों के रूप के शाराधकों को---जो बेंधे हैं प्रेम के स्वर-सार से ही---

लौह को कटु श्रुखला से बांधकर में खींचता है श्रीर जम-संघर्ष में लाकर उन्हे.

फौजो बनाकर छोडता है।

—केटारसाथ भगवाल

यह 'मैं' एक प्रतिशयोक्ति वन गया । यह 'मैं' 'हम' नहीं बना, क्योंकि इसमे समय से पहले ही एक 'ग्रह' का उदय हो गया। वास्तव में यह कवि में एक हीनत्व की भावना हुई, क्योंकि उसे दिन-प्रतिदिन राजनीतिक कार्यकर्ताओं से सामन पहता था। वे कमंठ बनते थे और कदि जो कि उन्हें राह दिखाता था, अब वे कवि की राह दिखाने लगे और तब कवि को धपनी ईमानदारी और वीरता की व्याख्या देनी पडी कि-मैं भी लड रहा ह. तम सिफं मेरे मीचें की देखी। नतीजा यह हमा कि यथार्थ उहा बन गया थीर तिनक ही कोण के बदल जाने से बात भी बदल गई। परत फिर भी राजनीतिज्ञी पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पडा । हिंदी कवियों में यह बोडा-मां दोष अवस्य रहा कि. राजनीति की बजाय वे राजनीतिज्ञों से दव गए, यद्यपि राजनीतिज्ञों का चेतन स्तर कवि की तलना में निम्न स्तर का होता है। परत सर्वत्र ऐसा नहीं हथा

> धान न जिसने कलभ गराई बश्वत गत्वाचारी मे उस कायर कवि की गिनतों है नवयुग के इत्यारों में ।

जती नहीं प्रदोप - ज्योति युंज - युज झा शए निकुज कुज से निकल शलभ प्रदोप दा गए। टहर न एक पत सके प्रकाश में समा गए,

 $\sim$ 

चे चाहते कि पोछ ने सुपय से प्रकाश की। कि चाट ने प्रकाश के समस्त चन्द्रहास को इसीनिए जले स्वय प्रदीप भी जना गए।

-भारसंप्रमादिम इ

जिनमें ज्योति की चाह है, वे ज्योति में सीन हो जाते हैं।

"पृथ्वी और बाकारा मिले हुए दीसले हैं, पर खिलिब का यत नहीं मिलता। उत्तर मत देखों। क्रिस्मत की आड लेकर असफलतामों से मत हरों। मैं प्रकृति-दूत हूं, तुम प्रक्ति-दूत हो।" (विधिनचर चनुबँदी)

"सभावात मा रहा है।

"परा के वध पर उमरे हुए पहाड उरीन है। वह क्षमावात बाकर उन्हे मसलता है, कडरडाता है। बूल रोमहे। इन्हें वह क्षक्रकोरकर चीर जाता है। करने, निर्दा चिरा-उपिचाए है। उनमें वह तह की तज लपटो-सा बलर उड्ड ज्वाला को विशिवन सा वनतनाता है। "(भारतभूषण ममबाल)

पूर्वी के वस घोर तुमान का यह वर्णन कितनी ध्याकुल वातना से भरा हुया है। बालिवास ने भी पृथ्वी के उरोज देते थे। किसी भी रूप में हो, मत से मानव अपने जीवन-तपकों से हो उपमाए देता है, ब्योंकि जिसे वह बानता है, बहो उसकी राजवृत्ति में बसे रहने हैं।

मनुष्य इस तूकान से डरता नहीं। बहता है—"आप्रों! इन बरणों से हे प्रतय के समीर 'टकरा बाघों! हे प्राकाश! तुस गत-शत भानु हाथों में लेकर गरकों, लास-सास किरणों के तीदण तीर छोडों। वस्तु मैं सभय हूं। मुभमे प्रसिल बस्च बदी हैं। में एक माकार व्यष्टि हूं जिसमें समिटि प्रनिनादित हो रही है।" (केदारनाप मित्र 'प्रभात')

"गिरि-शिखर मनुष्य का ध्येय है।" (बच्चन)

इस समय में प्यार ही जसके जीवन का सबल बनकर निकलता है। वह बहुता है

> पायल उर को देश तडपता किसने तोर सँघाना किसने पनधर के पक्षी पर चाहा जात विद्याना धामो मेरी बौहीं में तन-मन की माथ बुक्ता सँ मन के देरी को समभाने विगडी बात बना लें,

भावा है तो भाने दो घन के भाजपर को फन फैलाए, देखें रकत-भरे प्याले को उन प्रयरो से कौन लगाए। अहरीली उत्त्वांस गरल की जो ब्रागे बडकर योता है, नई जिंदगी की ताजी घंटें पी-पौकर जो जीता है। लाड़ों कदमों से चरमी है उसका फन घर सड़ा पड़ा है, द्याज तह से भीया भण्डा सब की शान बनेगा सायी।

इसका कारण है जनता मे भाषा का श्रलगाय। हिंदी प्रात में अनेक बीलिया है। यही नविता यदि किसी बोती में होती तो लोक में उतर गई होती। हिंदी के कवि को इसकी वही भारी लानि रही है कि जिस साहित्यिक माया में वह लिखता है. वह व्यापक तो बहत है, परत बड़ी भी प्रादेशिक नहीं है । शिक्षा ही इस व्यवधान को दूरकर सकती है।साहित्य की भाषा शिक्षित वर्ग की भाषा है।

विश्वितो पर उस काव्य ने प्रमाव डाला है, यद्यपि इसकी एकाधिता तब ही तक मोह सबी जब तक कि समस्या अपने बाह्य रूप मे प्रवर भीर ज्वलत रह सकी। उसका प्रभाव ग्राज भी है भवरय

> क्षय अर्थे जय जनधारा क्या जन-जीवन-धारा ।

प्रयम कल्प के सरणध्यज-शृंगों से जो गति कूटी, उस सरिता की घारा इस करवों मे कभी न टरी। महाकाल के जटा-जट मे खोई यह जन गगा, क्षोई कभी पूर्वों के गिरि गहर में चपल तरगा। भीत मरण में बार-बार जीवन की यति को धेरा. प्राण तर्रापत ज्योति शिक्षा को हमने लगा चौनेता. नव विकास के खती, प्रयति की थया के झिम्मानी. जन जीवन के ग्रमर साथकों ने पर हार म मानी ! सता पन धत सतिला का उत्स गिरि-शिखर तल से. ज्योतिमंग स्वर जल तरण के उठे घरा शकत से जिसे भगीरण ने विवेक के घरती बीच उताश. स्वप्तों के दीपों से जिसदा गतिया हव सेवाता!

जय जन शंगा धारा--

— राग्भ्रनाथ मुंह

परतु उतना नहीं जितना तब था। इसका कारण यही है कि वहा सैद्धातिक

प्रकृत धर्म और दर्शन

स्वरात्रधादिवन सास ! भरो जन-जन मे जीवन। बाइ-थोडिता वर्षवरा का सीटे ग्रीदन । बिट भनुज - सस्ट्रित विशास पय के ये दलदल करे फारित - रवि-किरण जगत का पथ ग्रालोहित। शोदण की घारा न बहे फिर। मरनेवाली पंजीवादी सस्कृति का होयक समाज हा श्राद्ध करें हम वितृपक्ष में। सिके द्वितीया इंद्रक्ता - सी बड़े नई सस्कृति दिन - प्रतिदिन । बीर विजयदरामी फिर ग्राए विजयदिवस जनता का पावन । नतर-नतर से प्राम-प्राम मे हो विजयोत्सव निर्धनता रूपी रावण की फंकें, प्राय जला समता की।

—सर्वेडच दवे

इयोबिए कवि मुन्दरता को तभी मुन्दर मान तेने को तत्पर है जब नह उसके मन भी मुन्दरता को कन्पता से मेल ला जाए, प्रन्यपा नहीं। तभी वह कहता है कि जीवन का समय पान प्रमुख है .

जीवन के कुमुमित उपवन में गुञ्जित मधुमय क्लान्का होगा ब्राह्मान भी है, उसमें दूर जाना भी है, परतु जन-त्रीवन का वस्तुपरक चित्र नहीं है। घारमपरक संयोजन ही कविता का प्राण नहीं वन सकता, उससे एकरसता आ जाती है।

'म्रात्मकला कविताकै प्रति'कवि कहनाहै

"हे मुरमरि<sup>1</sup> जन-सिधु की ग्रोर चलो। तुम व्यापक लोक का साधार स्वीकार करो।" (जानकीवल्लम मास्त्रो)

चलो ! करो ! सरो !

चले । किया। मरे। यह नही हुन्ना।

कहने और करने में भेद था गया।

किंतु जहा भावभूमि को तैयार करने का प्रस्त या वह हिंदी में ठीक-ठाक हुया। ग्रीर यब्दा हुया, यद्यपि उतका श्रेव किसी एक कवि को नहीं दिया जा सकता। इसका कारण मा कि कवि श्रपने को मैनिक समभने थे, नायकरव राजनीतिज्ञों के हाथ में या।

> म्रायकार से लडनेवाला मेरा यह विश्वास जयी हो सर्वनाश क्या नवस सुस्टि का सपना कभी मिटा पाया है?

क्या न प्रतय के मरुप्रदेश में जीवन उत्स उमड श्राया है ?

क्यान निज्ञा के शब्य अक मे ही जागी ऊषा सकुमारी?

ग्रभुस्रोत की रेखाओं पर मेरा यह मधुहास जयी हो <sup>1</sup>

श्रुपकार से लडनेवाला भेरा यह विश्वास जयो हो।

पतभड पर छा जाने वाला मेरा यह मधुमास जयो हो,

पतक्ष पर छ। जान वाला मरायह मधुमास जयाहा, भ्रवसादो पर हॅसनेवाला मेरा यह उल्लास जयोहो

भ्रवसादो पर हॅसनेवासा मेरा यह उल्लास जयोहो भ्रायकार को पीनेवाला मेरा यह निष्कम्प निराकुस

ग्रधकार को पीनेवाला मेरा प्रखर प्रकाश जयी हो। ग्रधकार से लडनेवाला मेरा यह विश्वास जयो हो।

—जिनेन्द्रसभार

सब बुख वधी हो, परतु जयो हो- राजनीतिज ही, क्योंकि कवि लोकक्याओं में नहीं उत्तरा । इसोलिए सामें पसकर एवं भ्रोर कुरिसन समाजदास्त्र को स्रति हुई, दूसरी भ्रोर व्यक्तिपरत प्रयोग प्रारम हो गए भ्रोर जहां काव्य को लोक में उत्तरता या बहा वह समस्त्र हो गया।

सिद्धात भपने-पाप में भपूर्ण सरय होता है। वह जन-जीवन के यदार्थ से जब तक मेल नहीं चाना, तम तह बहु धवना प्रमार नहीं कर पाता। कवि फफला उठता है

"की रद्भ यहा ? निष्ठुरता सस्ती होनी जा रही है। यह प्रचेर नगरी है, मूर्छ सासन हैं। उनने मान बडनत् हैं।" (बीनानाय व्यास)

## समाज ऋौर युग-सीमा

जिस समाज में हम रहते हैं उनमें धनेज प्रकार के बन्यन हैं । वे सरीर भीर मन के विकास में बाधा डानते हैं। इसलिए उनका विरोध करना भावदयक है, ब्योकि स्वि तो प्रांता बाहता है। उस पूर्णता का विरोध करने में ही विपदाए सामने शाती हैं।

"तुषान साहस को जुनौती दे रहा है। मेरा स्वप्न है कि मैं उस पार वाऊगा, और सिय बह रहा है कि मैं तरणी को दुवालगा, ग्रीर दिस्तास वह रहा है कि मैं सहरों को हराऊगा । क्या जनानी मौत से भयमीत होती है ?"

(हरिक्या प्रेमी)

इस विद्रोह का सहारा योवन है, बरोकि यौवन में स्कृति होती है। यौवन में व्यक्तिमुद्धर होता है। सुद्धरता पश्चि है और पश्चि ना स्फुरण विलक्षत ही स्वामाविक है। बलिदान धरली के लिए है। वह कहना है, "पहने मिट्टी को देह दान देना नल। तू ् एक ग्रमर जागरण है, जसनेवाओं को स्नेह-दान देता यल।" (देवेन्द्रनारायम वर्मा)

माटी को दान देना महत्कर्म है, क्योंकि माटी हो अपने प्रकारावर से जावित है भीर चेतना का रूप भी उसीसे विकसिन होता है। इसके निए नये विस्वास की मावस्य-यता है।

"विस्वास सपने में वहा है। समर्प सुखों में बडकर है। विस्वास मनुष्य के आप त पौरुप की अविरत्नता का स्वर है। वह मदियों से जागी मानवता की अवस्वाची का कर है।" (मचल)

पौरुष को जिस प्रकार नया कवि जगाता है, वह पुराने कवियों से मिन्न है। पहले भौरप इस प्रकार बात्मवरक रूप में नहीं जगाया जाता या 1 उन समय उसे निसी एवं व्यक्ति विशेष में निहित कर दिया जाता था। यह मात्मगरकता वस्तु को न्यापक बनाते के लिए राम मे लाई गई है। रबि रहता है

"मैंने नवीन विचारों के बीज बीए हैं। घरनी पर नदा इसान उना बाता है।" (श्रीहरि)

उसे किसी भी प्रकार का वैषम्य पसद नहीं है। समाज में कितने ही प्रकार के व्यवधान है। छनदात, देखि, धनी, वह मदनो तोउ देना बाहता है :

—सागाईन

प्राप्तना बन-सा गीत भी गाया। धपने स्वप्न को उसने साकार भी देसा। ऐसा हो जाए 1 की 1 यह हो हुई मार्ग की बात, परतु कल्पना को सुन्दरता प्येच का विच देनी भीर प्राप्रेच बना विश्वास।

जल, चल, नभ सर्वत्र शांति हो ।

"त्रीवनाम ने केंचूल छोडो, परती ने कावा पनटो। नारा घीर निर्माण के दो वग रतकर निष्ठतिन्दी नाव रही है। धरियों के विर्वेत प्रमारे बुमने चुमते महकें। बहुत धीर होगा, किंतु केरी की विध्न हफर्वाटया दूटकर ही रिट्मी। दरान्देश के जन जानेंगे। वर्ग-वर्ष की ततवार चमकेंगी। जिनत गुगो के विकृत प्रमादों के विश्लोटक कुनेंगे।" (नरेंक)

भित्य में थाता नो अमुसता दी गई। इसना यहाँ नारण या नि निव का यमार्थ, लोड़ के समार्थ से सार्य रहा। दिनतर ने मुग-समस्या नो 'हुस्थेन' के पानों में रता। वित्र जमें। निज्ञ नुस्कृत से पानों में रता। वित्र जमें। निज्ञ नुस्कृत से प्रतिक भीज बनकर रही। बोज-मान ही तो व्यापक निवान नहीं है। यदि दिनदर या स्थ्य भीर व्यापक निवान तो नामस्य वह भी 'साहेन' मोर्स 'प्रियप्रवात' जैसा नाम्य नवाजा, जो प्रमनि बाह्य बस्तु-परनता के नारण 'नामा- सनी वें तुस्कृत वन तो ने प्रमाद में नामायनी जन-तो न बन सही। नया निव चित्रताता रही।

विद्रोह करी, विद्रोह करी ग्रामी बीरोजित कर्म करी

भीतर और बाहर की ग्राम एकाकार हो गई है, तभी तो विद्रोह का पूर्ण स्फ्ररण दिखाई देता है।

"जीवन को हार--सहने की सोमा भी ठोकर खाते-खाते ग्राज श्रगार बन गई है, वह प्रगार किसी दिन भूमण्डल में प्राण लगा देगा। गली-गली में मर्यादाए तकान उठाएगी, जिनके बावतों मे लोहे की बुनिवादें तिनको-सी उड जाएगी। नश-लक्ष तल-वारें कण-कण में उन भाएगी। प्रपमानी की धोर घटाए भीपण वज्य निराएगी, तब भू से नम तक बोधि-वृक्ष की हरी टहनिया नहराएगी।" (नीलकच्ठ विवारी)

सहन करने की भी एक सीमा होती है। कब तक मालिर मपमान सहा जाए। लेकिन शोषण से कभी तो मनुष्य ऊवेगा ही और वह प्रनिशोध अवस्य लेगा। कायर प्रवस्य प्रपने लिए डरते हैं

जिनकी भुजाको की शिराएँ फडकों ही नहीं जिनके लह से नहीं देग है अनल का। शिव का परोदक ही पेच जिलका है रहा चक्ता हो जिल्होने नहीं स्वाद हलाहल का। जिनके हुदय में कभी धाग मुलगी ही नहीं ठेस लगते ही ग्रहकार नहीं ग्रलका, जिनको सहारा नहीं भूज के प्रताप का है बंडते भरोसा किए वे ही ग्रात्म बल का। उसकी सहिल्पता, समा का है महत्त्व ही क्या करना ही भातानहीं जिसकी प्रहार है? करणाक्षमा को छोड भीर बया उपाय उसे ले न सकता जो बीरियो से प्रतिकार है? सहता प्रहार कोई विवश, कदये जीव जिसकी नतों में नहीं पौरय को घार है, करणा क्षमा है वतीव जाति के कलक घोर क्षमता क्षमा की शुरवीरों का सिगार है। सदताक्हों भी एक तृष्य जो दारीर से तो उठता करात हो फणीश फुककार है सुनता पतेन्द्र की विधाउ जो बनो मे कहीं

भरता गुहा में ही मृगेन्द्र हुहकार है शूल चुनते हैं, छूते प्राग है जलाती, मुकी-शीलने को देखो गर्जमान पाराबार है उन निर्माय सुन्य स्वासों मे साज पूँच हूँ तो तय शीवन भर दूँ उनमें तूकानों का स्रपणित भूचानों का कन्यन ! जल - ब्वाला भूकम्य तुम्हारे ही प्रतुत्तित बल के परिवायक सांधी सी तुकान पुम्हारे त्यातकाना स्वासों के बाहक उठो - उठो ऐ सोत साजर नई सृष्टि को छे तब कम्पन कीर तिसु भी, बन्यु, तुम्हीये जिससे स्थिति सम-नम का कारण आगो प्रवृत्तानों साने को मानव हो, समक्षो निज गौरव सम्बद्धतत को सांखें लोलो देखो निज सत्वित बस बंभय

बहुंकार धौ' स्वाधिकार---दो पृथक् - प्यक् पय हैं बदी।

--सरेन्ड

मानव को प्रपता गीरव पहचानना है। वह तो एक सागर है, कि तु ऐसी नोर भे दूबा है कि प्रपत्ने को भूव गया है। जानित हो उसे बचा सकतो है। जानित घर झा गई है। विपयता की वायस सकदारों को मरुदार में अकार रही है। वह प्रपदाई सेती है तो भूवात साठे हैं। जावस से पहली अकत के स्तित के लिए हम जाता है। जिपर अक्षते गाव पढते हैं उपर भूगीस दव जाता है। वब दिसायों में सपर तहराती है तब सस्त स्त करों में स्वर्त कराती है। वह स्वर्त हमानी है तब स्वर्त कर स्वर्ति मुझा उठता है। विपाद सिंग स्वर्ति हम करों में सपर तहराती है तब स्वर्ति कर स्वर्ति मुझा उठता है। विपाद सिंग स्वर्ति हमिकर)

दिनकर की कान्ति से उत्पात बहुत है। जैसे कान्ति न हुई शिव का ताण्डव हो गया। किंतु ये कतिशयोकितया प्रभाव उत्पान करने के लिए प्रपुतत हुई हैं। मुलभ समि-व्यञ्जना के कारण किंत्र सम्प्रेतनों में यह किंत्रता यच्या प्रसार जासती रही है। यदि प्रहा को छोडकर देसा चाए, तब भी इसमें जान है, नगोंकि इसमें एक स्मुरण की अजन प्रवस्थ मिनती है। इस जाति के रूप में निर्माण कम है, विष्युस श्रीयक है

> मुध्न विषयपानिनी को ने ज्ञात किस रोख कियर से धारेजी मिट्टी से किस दिन जाग धूट एवर से धान तमाउँगी धांतें प्रपत्ती कर बन्दे देश में अब भूकंप्प मचाउँगी शिक्षका दृरेणा शृब, न जाने, किसका महत्त पिराउँगी निवंद खूर, निर्मोह सदा, मेरा कराल नर्तन, गर्जन,

> भेत - भन घव की ग्रमस्य की बारी है, पापो के पारावार ! सजन बैठे विसूचियस के मुख पर, भोले, प्रकोष मसार ! सजन रोतें का रकत हसान हुया थी जुल्मी की तसवार ! सजन

## आत्म और लोकसंवहन

राष्ट्रीयता जम उप नहीं होती तब प्रेम मानव-मात्र से होता है।

"बच्छिम में नाने और सफेद फून हें और पूरव में पीने और तान। उत्तर में नीने राग के और हमारे यहा फर्माई सावने। दुनिया में हरियानी कहा-कहा नहीं है, जहां भी प्रावमान उटा बादनों ने पीछे बाते हों। प्राज नृजदस्तों में रग-रग के फून सबे हुए हैं। प्रावमान इन लिमगों का बाईना है।" (नमनेर बहादुरिस्ट्)

त्या कवि देश के लिए पृथ्वी के प्रेम को भी स्वीकार करता है। किंतु प्रपता देश जब परतब है तो विश्वय ही ध्यान उसीको स्रोर केन्द्रिन हो जाता है। उसकी व्यया

भी सिमट पाती है। "प्रो मन, नूहसता है कि रोचा है <sup>7</sup> तू बीणा के मन की हुक नहीं कह पाता, बस

निषे-रिजाए तार छेड़ना बसवा है।" (बीरेन्द्र मिथ) बह देश के तिए नया स्कुरण पाहता है। देश पिशा हुमा है। विदेशियों का दमन-चक्र उसपर चल रहा है। उने बह कैंबे देशे विना रह सकता है <sup>7</sup> भौर विशेषनयां उस

समय जबकि सब मधर्ष में लगे हुए हो।
"प्राची में नव जीवन का कृषि, रवि निकल रहा है। वह सम के पन्नो पर ज्योति के सशर लिख रहा है। किरणों के स्वर से महान मानव समिनदिन है। सपने नीट-मरे नयन स्रोत रहा है। कोटि-कोटि वण्ड एकसाथ मृत्र वोल उठे—जब महान एतिया !

जब महान प्रिया । " (सभुनायसिंह) सारा महादीप ही लक्कार रहा है। भारत की जी आप पुनरप्यान के रूप मे भारनेन्द्र हरिस्कद्र से मैदिबोसरण गुन्त तक राष्ट्रीय दनी रही थी, वह अब देव की सीमा में ही बद्ध नहीं रहना चाहनो। यद वह प्रातनता को लौटाना नहीं बाहना। वह देखता

है नि अन्यत्र भी दासता के विरद्ध समये हो रहा है। देश हो मा है। उनका बुरा हाल केंसे देशा जा सकता है। पहले तो स्वदेशो राजा के लिए माग थी, धन्न ऐसा नहीं है। अब तो देश की जनता का भी प्रदेश हैं

भाज तो पतकें, उघारी नेत्र

-----

धतसाए नयन रणवांकुरे

को अकेला सुलमा तो नहीं सकता। 'मानव' ने सहन रूप से अच्छा वित्र खडा किया है.

"मैंने कहा, तू पहती नयां नहीं? मीरा चौंककर बोली, बाबू । हमे कीन पडा-एगा? मैं यह उत्तर मुनकर इस पुष्प देश की गहित वर्ण-व्यवस्था पर सोपने लगा। निसारों ने बान पर प्रिकार कर निया है। दया क्षण को उमरी किंदु कगारे पाकर सीमित हो गई, वह नहीं किं। यह वोली मैं यहत देर को प्याक्षी हूं। मैंने कहा सुराही समने रखी है, गिलास से पानी पो ले। उत्तने कहा मैं तो आत की चमारों हूं। मैंने कहा मैं भी चमार हूं, चल वो ने पानी। वह वोती जाती थी और रोतो हुई सुमें देखतो जाती थी।" (विरक्षमर 'मानव')

इस सटकी को कबि इनाम देना है, परतु बाद में झफसोस करता है। इसी बीच

लडकी प्रपनी मेहनत के पैसी के प्रलाबा पैसे लेकर वापस करने लौट प्राती है। कान्ति का सुवपात ऐसी ही तीकी मारो में हमा करना है। हिंदी में क्रान्ति का

रम भावावेश ग्रीधक रहा। उसके पीधे तीसे चिन कम उभरे। मब बुख को जैसे सामान्य करके रखा गया

में भाती हूँ बन नयी सृद्धि व्यक्तों के प्रतय प्रहारों में में भाती हूँ घर कोटि चरण युग के भनत हुकारों में!

मं प्राती हूं ले नव भाषा मं प्राती ले नव प्रभिताया नव शब्द छदलय ताल मीड नव गमकों की गञ्जारों में।

नव गमकों को गुरुजारों चोरतो रूडियों की छातों विजली बन तमता को डातो, में ग्रातों हैं कथे पर चड

मृत्युञ्जय ग्रभय कुमारो मे। जड गतानुगतिका हिला-हिला

ग्रधानुबरण पर बनी जिला भाती हूँ कसक करोह लिए में मरती हूँ बैदारों मे।

कविको देती घरदान नये रविको देती भैदान नये सख गया प्राणी का रस निज पौरय के निर्माण मे, आधाधी के मस्तक पर चट शकडें जो तकान में। रेते नहीं समय के फरसे खरवजे की फाँक मे, जीवन की हत्दीघाटी में मिटे न जो विस खाक में। टट पडें उन्चात पदन जो सजकर तीर-कमान थे, पावाची ठोकर ला लौटें ठकराए धरमान मे। रोंडे टाप म सघर्षों की डिगे न डगमग-भार मे. कटे नहीं सजबत कलेजा नियागरा की धार में। विश्वल उठे श्रांद प्रन्तर मेरा उद्दे लित धनजान मे. गुमा - जमना फट बहुँ तो जग के रैगिस्तान मे ।

--रागरज्यालनितः 'रादेश' गगा और यमना की धाराए हिरी कवि के मन मे नवा उत्नाह उडेतित करने

लगी । यह जनाने ब डसे गाने के विस्तु हो गया

प्यारे स्वदेश के हिस ग्रगार मांगता है चडती जवानियों का शुगार मांगता है। तम - भेदिनी फिरण का संधान मांगता है ध्रवकी कठिन घडी में पहचान माँगता हैं। पचास्य साद नीवण विकराल मांगता है जडता विनादा को फिर भूचाल माँगता है। उन्माद बेश्ली का उत्थान मांगता है बिस्फोट मांगता है तुकान मांगता है विश्व का सदा सह में संचार माँगता है

बेचैन डिड्यो का मै प्यार मांगता है।

--दिनका

देश के लिए बलिदान मागा जाने लगा । स्वदेश एक देशे वन गया । जवानों से कहा गया कि भाग्नो बिलदान दो। एक हतवल जाग छटी। वेचैन जिंदगी अने प्यार सामने लगी ।

"मासें मदे, धमके प्रकाश में रचतन पड़े रहोंगे ! खडहर तो छोड़ दो ! भगोल भीर संगीन डील रहे हैं। निदा भीर तन्द्रा के हायों वेमील विकेहसी ! अब जाग सरो ।" (बानकी बल्सम शास्त्री)

पूरातन के प्रति मोह से बूध लाभ न था। हम बया थे, बना हो गए-इसोपर रीने से कोई लाभ नहीं था। वह जो बीन गया, बीन गया। वह लौटकर नहीं या सकता।

उसके भागे पथ धनत है, यादिहीन है। उसपर इतनी ही जगह है कि एक ही पाद रखा जा सके। वह पाद उसी वित्रोही का है, यानी 'हम' का है। वह कठोर चरण हे जो माततायों को रॉद देगा। अतीत के काले पायों के अधकार में यहा जाल आग का रख मातों गौरव का विद्व बनकर सामता हमा दिखाई देता है।

परतु दार्सनिक का कहना है कि यह बाता तो योही चलतो रहेगी। यह रुकेगी नहीं। सफर बराबर बना ही रहेगा। न जाने कितना समय बीत पुका है। इसकी गणना करना भी एक अस ही है। यह तो अनादि धनत पय है। इसका भेद असल में कोई पह-चानता नहीं है

> स्रोधियों को चौरता इन्सान चतता ही रहेगा हो न पाएगा सफर लेकिन कमो कमा ' एक युग क्या करण बीते, करण भी फ्रम एक मन का, है न कोई स्नाद, कोई झत है इसके सुजन का। जग इसे निर्माद किसी को करणना से जानता है। पर न कोई ठीक इसके भेद को पहचानता है। स्वयन केसी - सी भुवन रचता, मिटाता, मुस्कराता, बादलों पर तैरता, नभ जगमणाता, मू हिसाता— स्मीधियों को चौरकर इन्सान चलता ही रहेगा. हो न पाएगा सफर सेकिन कभी कम।

कूत - सा इसका हृदयतो सूल - सो इसकी जवानो, ब्रांसुओं को पार प्रविदत, है कहीं मीठी कहानी। टीए - माजनता इसे भारत सुरुष्ण स्मा अपना भी

दोप-साजतना इसे भाता, दालभ-सा भूमना भी, है सुषा प्रिय तो इसे प्रिय है गरत को चूमना भी। ×

×

ते ब्रट्स विश्वास, साथों को जगता, अगमगाता, रोंदता कटि कुगुम, शव पातनाघों के उठाता। है उगसता भाग, भाहों से उगसता ही रहेगा हो न पाएगा सकर लेकिन कभी कम 1

—गान्तिस्वरूप 'बुसुन'

परतु मनुष्य की यात्रा नहीं रकेगो। उसका हृदय कोमल है घोर यौजन चुमने-वाला तथा साहसिक है। इसका काम है मपना स्नेह जलाकर जलते रहना, धालोक फैलाते रहना। यह पमुत का प्रेमी तो है ही, परतु विच भो पीता रहता है 1 तुम्हजानना है सनुष्य तुम नहीं गुलाम देवताथों के धौरन उनके दया पात्र ही, झौर न उनके ऊपर निर्भर तुम्हें आत्म स्रयलव चाहिए !

सुन्हें जानना है सनुष्य नुम स्रोर मानवी स्रविकारो पर जबकि खडे होंगे तुम डटकर कोई शक्ति नहीं ऐसी जो जुन्हें हटा दे तिल-भर पोछे, तुन्हें झारम विश्वास चाहिए।

इसीलिए यह अपनी वाणी तुम्हें भेजता हूँ चंदे में सभव हे तुमको कुछ बंत वे और कालिका करे प्रेरणा निकल पड़ो तुम सहसा कहकर—

श्रपनी रोटी ग्रपना राज,

दन्कलाव जिन्हाबाद <sup>†</sup>

--बस्बन

किन प्रव वाणी भेजता है बये में । नया ही प्रयोग है। प्रपती रोटी और प्रपता राज । दो पुतार हैं। पूर्व स्वतन्त्रता । घरे बैभव के मोह । तू तो बार-बार सता रहा है। कहा गया वह नारत का गौरव !

"तू प्रवय पूछ कि राम कहा है। वृक्षा । बनायो वनस्याम कहा है। यो सगय। तैरे प्रधोक, चट्टगुज—वे बतजाम कहा है। तिषिका पिखारिणी सी पटी है। इसने प्रवर्गी सारी यनन निविद्या कहा गया दो। यो क्षित्वस्तु । बुढदेव के वे मगल उपदेश कहा गए ?" (रामधारीमिङ दिनकर)

सव कुछ चला गया !

वयो ?

मतीत थान<sup>२</sup>

हम अपने स्वत्व को सभाज नही सके।

वितुहम मरेती नहीं<sup>?</sup>

मरेंगे नेते ! हमारी तो घरती में जड़े हैं। हम तभी जीविन हैं

बहु फूल भला क्या फूल, भरा जिसमे जीवन्त पराग न हो ? बहु यौदन क्या, जिस यौवन मे जीवन की जलती खान न हो ?

यह यदिन देया, जिस यदिन में जिन्त की जलती आग न ही ?

मैनडो-हडारो कारा मे तड़ग रहे हैं। कवि भो उन्हों मे से एक है। वह भी ग्रपने को द स में कैवत मुखी रखने के निए पीछे नहीं भाग सकता। जल गए सालो-करोडो मर गए मानव बीसते घट्टें ब्रोर हत-ब्राट्त, ब्रतस्यो शव । किंतु मरकर दे गए थे मुक्त जीवन-वर । मुक्तिको परिवाँ जतरतों ब्राज सपटो पर।

—देवनारायणः काक

220

मृत्यु वा विरोप प्रारम हो गया। लक्ष्य प्रच सता से उत्तर उठ प्राया। मृत्यु बीवन को उठाने वा माध्यम वन गई। विध बहुता है ''गाधी । प्राव तुम वप राग गाधी। समस्त विहास को भैरदी में लीन होने दो। तुम्हारी हृदय वीणा वयी निस्तद वही है। प्राव प्रारम वा उच्चत सुहास सुद न जाए। जागरण के मान सुनकर साज मृत भी किर जान उठे।'' (प्रापेट)

यो विद्रोह चलना रहता है। हृदय की बोणा में फिर फार परी जाती है। सारे-सारे राण मिलाकर उद्गोधन के स्वर में लाकर ड्वाए जाते हैं। मारमा का छौदयें प्रशुक्त रसना उसका ध्येय हो गया है।

तो नया समयुन सब कुछ सोया हुमा या ! नहीं ! बागरण प्रोर मुप्पित मन के विद्वास हैं। प्रतोक हैं। पुराने कवि को भी प्रपने ही सुप्त-इस में प्रकृति को देखने की भारत थी भीर वह किंव में भाज तक वैसी ही खली था रही है। यहा व्यक्ति मूलत नहीं बदता है। उनकी एक भावेस है

> मुक्ति की मजाल जल, सास-लात ज्वाल जल! चोर ग्रथसार चस रही बयार विदर द्गिवार देश तिथिर ग्रस्त हेस रतेश भस्त ज्योति यह निदे नहीं ग्राग यह बक्ते नहीं मुक्तिकी मजाल जल! ग्राज द्वार - द्वार पर नगर प्राप्त बाट पर

> > मात्र घाट-घाट पर विषय ज्योति यह जले

बह वब यक जाती है तो पुराने—मनोत मे प्रमय खोनती है। मतीह पन्या सनता है। यह मनुष्य को एक सहन निर्वतनता है। क्यो र बयोकि प्रतीन पर मिलमिल स्नामा रहती हैं र

मालदा!! "वह मधुमय ससार एक सपना-सा था। बाह ! वह सनत छ्रि-वाल! पृथ्य प्राची का स्विगिम काल था। हत ! धाव उस स्विक वस का सह दुरत

क्काल पड़ा है।" (केसरी)

इस ककांत को प्रव कब तक वे पुराने गीन मुनाए जाए । उनते साभ बया है? कुछ नहीं । इसे तो नयी शक्ति शहिए।

क्षि इसे जानता है।

त भी बन बात की घोर स्विक स्वयूपर है। वह बड़ी ईमानदारों से पूछना है कि बदि तुम बतिदान का मोल चाहते हो, तुम हबत बता फैसे चाहते हो ? सवाप में तो भ गोने किनों स्वाप्त बलि-बीर पपने नो होग देते है, तब आकर प्रकृत प्राप्त होता है।

जो मिटते हैं, दे मकारण नहीं मिद जाते। वे एक नया स्वयन साकार करके जाते

₹:

मिट्टी बतन की पूडती, बह कीन है, वह कीन है, इतिहास जिसपर मौन है!

जिसके सह की घूँर का टीका हमारे भाग पर जिसके सह की सासिमा स्वातत्त्र्य शिशु के माल पर जो कुंक बया विरक्त मगन से निमिय के सारा सब्द्रा बच प्रोत जितना भी न पाया प्रयु जिसका काल पर जो दे बया जीवन बिजन के जूस-सा हुन नाश की जिसके सिए वो यूंद भी स्याहो नहीं इतिहास को ! व्यक्त कोन हैं न

जिसके मरण के नेह से दोगक नये पुण का जाता, कावल नयन के मेह से मरक्त मनुज मन का फता। बुनता गया पदन्य में करक मनुज को राह का, बिय दामता को, युन्ति को निज मृत्युं का प्रमृत पिला, बुयनों न मृति सिन्नों काभी यो में दिसीके पुलनी भूतने न मृति सिन्नों काभी यो में दिसीके पुलनी भूतने न मृति सिन्नों काभी यो मौतुमों के कुल हो।

---श्युमार तिवा-उनकी मृत्यु भी समृत होगी है। सहीद एक सादर्स हो गया। सहीद पर न स्पक्ति तक सीमित रहे यह हुएं बया है
स्पेय जिसका स्थायं, यह समयं बया है
स्वित्व के मार्गायत प्रतादित मानवों को
देन को सतीय, यह उस्तयं क्या है,
स्वित्व का कत्याण गित की सेतना है
भूस सपता सुद्ध कात्त् का दुंख स्टात् व सर्वप्रता हो सम्बद्ध स्थारं जाये
स्वादता हो यन मृद्ध प्यारं जाये
स्वादता का सार बन गल -हार जाने
नात्रा नाये सूकन को नव देवता सन
सोर सण्डित विश्व बन परियार जागे
मांग भरने हुंग्य बित की बेदिका की
बड सहैता, द्योग्य वित की बेदिका की

— प्रस्तिह राजं 'कानेत' द्यपना दु स क्यो सीचा जाए <sup>!</sup> लोक मे क्या कम दुस है <sup>!</sup> शायक मुद्द ने भी ऐसा ही सोचा होगा, परन्तु तव वह विजयी हुआ या । उसने बलियान दिया पा प्रपने भूसो का । नये तुम को समस्या नया बनियान चाहती है । सभी कि मद्र बलियान की स्थास्था करता है

ब्याख्या करता ह

"प्रचरों को मुक्तान विजय का पुरस्कार नहीं है, पय की सीमाभी का आन कर्म को पूर्ति नहीं है। स्वानती दासता से तन की उन्मुक्ति नहीं, मास्स्त्रात की सक्ति है। प्रव इतिहास की देन को बरदान बनाना है। रात बीत पर्दे। विहान हो गया। बहा करूपना चरम संस्य का तस्त्र पा तेती है, यहा मानवता देवत्व पाने को उसुक होती है।" [विद्यावती मित्र)

केवत कह जाना काफी नहीं है। हमारी हवारी मीमाए हैं, परंतु उनका जान लेना ही क्या काफी हत है। तम दासवा से छूट गया तो क्या हुआ, मन भी वो साथ ही बदलना चाहिए, क्योंकि उतके बिना दम ही चारो मोर हा बाएगा। वो मीयकार प्राप्त करने वो बड़ रहे हैं, उनका मानसिक सार अव्याचारियों से कहीं भीषक उन्हा होना चाहिए। इनलिए मारमत्याय की मनित होगी चाहिए। भारतीय चितन इस सव्य की सदा से ही स्वीकार करता माना है। यहने यह वैयन्तिक रूप में या, मब यह समिट रूप में है

> जल रहा रस्त की ज्याला में ककाल विषमता का विचाद

की भारति पडती ककासी ऐसी भीषणः विकराता! यह रहा नहीं जाता है ਗੀ तो सहा नहीं जाता है TH कर दें उसकी BUT क्षार जिसने जगक्षार-क्षार कर दाला ( षधकती ही जाती है द्यार इसपर सङ्जा ग्राती है पर केंसे क्षता स्रभी तक जिसते इन मासमीं का घर जाला !

—शिवमानसिंह 'शुना' प्रव वह सबके ऊपर 'जम' को रखता है। वह सत्ता क्यों कनी रहे जोकि सुख मे

कारें डाल रही है, घाग लगा रही है। उसकी सत्ता बची हुई है यह कितनी अबजा की बात है। उसे तो कभी का नष्ट कर देना चाहिए या। यह कितनी बड़ी कचोट है ? तभी कवि नहता है

"ह कि ि मत कुछ मनीन देकर भी विधाता ने तुन्हें चिर ज्वलित व्यया का रोग दिया है। कुलो से गात रचकर, भाग्य मे गूलो का भीग सिख दिया। वीवन का रस-पीयूय तुन्हें नित्य जग को दान करमा है। तुम नीलकठ हो। तुम्हें तो गरलपान ही लिखा था। तुम सतीय करो। शायद लारी तहरों पर तिरता आशा का तुन्हें कीक मिल जाए। हे किंत, रोगों। ग्रायद आनू के बीच घरणी को नया आलोक मिल जाए।" (दिनकर)

तो क्या कवि का हरण मनेदनशील होने के कारण ही उसे सब कुछ भीरो की मुलना ने अधिक व्याञ्चल करता है। परन्तु यह सत्य है कि कवि सत्य को वह तक जाता है, क्योंकि वह उमे सोनता-मात्र नहीं, उसका प्रमुख्य भी करता है। बात मस्तिय्क से हृदय पर उतर मानी है। उसे दमीलिए यह तकता है कि मधबत उसकी बेदना से ही मनुष्य के बल्याय को सहीरा मिलेगा, वह कहता है

मं ध्रवती चेच्टाघों को चील की भगट नहीं बनाऊँगा कि जहाँ सडा-गता दीखा चाँच मार दो, दिवारों को मूखे भेडिये की जीभ नहीं बनाऊँगा कि जहाँ दुधमूँह गोत्त दीखा दीत मार दिए। मृत्र जो काई के गहुदें में धंत मगर है बुद्धि जो भ्रगारे की तरह रई के स्तरों में सुलय रही हैं सीला जो छटपटाहट हाहाकार से खील रहा है मृतिमान हो गई जहां मुरूप वामना ।
देश मे प्रनेक वर्ष वर्ण जाति यमं हैं
साव है प्रनेक बोल हे प्रनेक कमें हैं
कोटि-कोटि हप मे परतु एक प्राल हैं।
मान एक सान एक, त्यान एक गान है।
एक साव श्रांक है, एक माव मितत है।
कोटि-कोटि प्राल की प्रमिन्न प्राल मावना
साव कोटि-कोटि का जिसे कि वाहुबल मिला
कोन कह रहा कि वीरमूनि माज निवंता
प्राल जायरण हुमा कि हम सदा स्वतन्त्र हैं
प्राल लोक के स्वकीय तय सन्न यन हैं
साव एक कर्यमा, प्राल एक विवादा प्राल प्राल मावना

—सुधीन्द्र

यह कविता बहुत ही नेय घ्रीर क्रबंदियत गरिमा का प्रतिनिधित्व करती है। ह्याँगिय मुधीन्द की ध्रमर कीति वी स्थापना के लिए यह एक कविता ही काकी है। यहा हम केवल यसोगान नही पाते, प्रकृति वा बरदान भी पाते हैं। जातिन्द्रेय हटता हुमा दोसता है घ्रीर करोड़ों की घ्रपार धिनन हरहरानी हुई सुनाई देनी है। यह किंच की एक श्रेट्ठ कविता है, जिने देरान्त्रेम की कवितामों में सबस्य ही मकतित करना चाहिए।

देश और विदव का सम्बर्ण भी एक होना दीखना है जागे सगल बाणी।

> मदयुगकी पगव्यनि में जागे श्रालिल दिःदकल्याणी । जागे जन पद-प्राम-नगर मे

> > गृह-यन में सरिता-सागर में ब्रयक विहग-सी नीलाम्बर में जाती जनगण के ब्रतन से

हवप्त-भगनी तिर्फर-सी फिर वहे प्रमर युगवाणी। महामृत्यु के पथ में गूँजे किंव की भैरववाणी। जागे जन पशहीन नगर मे

> मययुगके उन्नत झिर भर मे स्रशोदय-से नीलाम्बर मे जोम के सके

यह कड़ो पड रही है कि शितिय के रवत सने ये कड़े बाँत यककर डीले पढते जाते घरतों का लोहू भी विध्य बनता जाता है तन सभी दिशाओं के नीले पढते जाते।

.

वह रो-रोकर घक गई कि धाँतू सूख गए घव वह निज्ञ चरणी में प्राकाश भुकाएगी वह सप्पर भरकर शकर के वसस्यल पर किर भूमेगी, सब नुतन विश्व बसाएगी।

वह बाज भृतित के गाएगी किर गीत नमें परवक्षता का कल्पन इसकी स्थीकार नहीं।

— भीदरि ईश्वर को योगको ने घरना साधन बना रखा है, इसलिए कवि पृथ्वी और आकास ना भगदा दिखाता है। कालिदास ने भी राजा की तुमना सूर्य से की थी। नया किंव उसी कम्मना को धारो बडाता है भीर नये तथ्य सामने रखता है। परतु केवल गीती से होता भो क्या है?

"गीत दु ख कम नही कर पाते । लिसे भला कोई क्या-क्या किस-किस पर ! इडियस्त जब हए विदय में प्रपतों के प्रपतों से नाते ! " (शति)

मों वर्षे मत्म हो उठता है, उद्योषन मतम । यह इत्तरिए कि सनुपूर्ति केवल कहने-सनने से तो भपनी तुन्ति नहीं कर पाती ।

केवस रोने से काम नहीं चलता।

मुक्ति का गीत गाने की प्रभिताषा इसीतिए है कि परवसता का करूत कवि स्पीकार नहीं करना पाहता।

प्रकारातर से, जिन्न-भिन्न कोणों से समस्या पर कवि विस्तते हूँ **और** उसे संधिक में संधिक जनता के पास ते जाने की चेष्टा करते हैं।

जागरण एक ज्वाला है। ज्वाला उस गक्ति का पर्याय है, जिसमे विव्यस की शक्ति भी है भीर मकास भी है

ज्वाता है यह ज्वाता ! नाहें-नाहें दीन भोपडों ने जो सुतगी घीरे-पोरे साल-साल गटसट सपटों की माला है यह माला ! में मचेतन मीर उपचेतन सभी पर
वार करता जा रहा हूँ
स्पित्तवादी सम्भात को
च्या विज्ञुल कर रहा हूँ ।
में हिमालय को रगडकर
रास्ते की धृति का कण कर रहा हूँ
स्था में वेठे हुए छवि देवता को
मानवों के साथ जीने
भीर मरने के लिए सलकारता हूँ
मोर कहता हूँ कि मा,
इन हाडुयों से तील प्रथमाकाय्य कायर !
देवियों के कथ के प्रारायको को—

जो बेंधे हैं प्रेम के स्वर-तार से ही— सोह को कटु श्रवता से बांधकर में खींचता हूँ श्रोर जन-तवर्ष में लाकर उन्हें, फोजो बनाकर छोडता है।

—केदारनाथ भ्रप्रवाल

यह 'में' एक घितायोधित वन गया। यह 'में' 'हम' नहीं बना, क्योंकि इसमें समय से पहले ही एक 'यह' का उदय ही गया। वास्तव में मह कि में एक हीनाल को भावना हुई, क्योंकि उसे दिन-प्रतिदिन राजनीतिक कार्यकर्तायों से सामन 'यहता था। वे कमेंठ वनते थे धौर किये भी के उन्हें राह दिवाता था, यब वे किस को पाह दिवाते में भी र तव की को घपनी ईमानदारी घौर विरात को व्याया देनी की न्याया में बात कार्यकर प्रात्त तुन्ता सार्व के स्वया वे को बात में वह हमा कि यथार्थ उन्हा बन गया धौर सिनक ही कोण के बबन जाने से बात भी बदल गई। परतु फिर भी राजनीतिकों पर इसका विजेप क्रमांव नहीं पदा। हिंदी कियार्थ में बात ना दोन स्वया के सात्र नहीं की कार्यकर सार्व किया पर स्वया विज्ञा के विज्ञा स्तर कार्यकर किया के विज्ञा स्तर कार्यकर सार्व की क्षाय के प्रात्नीतिकों से रह एक विज्ञान की निज्ञा का चैतन स्तर कर्जि की हवाय वे राजनीतिकों से रह पर्य पर्व प्राप्त की निज्ञा का चैतन स्तर कर्जि की हवाय के राजनीतिकों के राज पर प्रात्त की क्षाय के राजनीतिकों का निज्ञ स्तर कर कर होता है। परतु एकंक एका नहीं हथा

झाज न जिसने कलम गडाई बगुनत सत्याचारों में उस कायर कवि की गिनतों है नवयम के इत्यारों में । परेपात हो गया, जैने हिन्दी साहित्य के इतिहानकार परवर्षी रीति कवियो की भीड देखकर होते रहे हैं। युन-विशेष में जैसे स्वर में स्वर मिलता ही है, वही बात है, परतु स्रीभकाश उसमे नमा स्वर है

> भाज शत-रात कण्ड में फिर स्वरों का चरशंभ जागा भाज जन-जन के हुवय में मुश्ति का सम्मान जागा भाज जागा शेष कि कौषी घरा नम उनमागाया च्येट्ट के मध्याह्म से स्वर-ताप जब मेंने चुराया कण्ड में स्वर नवत जागा हुदय में वन सबल आगा नवन में गब ज्योति जागे देह पर नव वेरा जागा भाज मेरा देश जाया देश का अभिमान जागा भाज मेरा देश के अपयान का प्रतिदान जागा भाज करा -कण के हुदय में शिवत का उपमान जागा!

> > —जगदीरा

दात, कोटि, हा आप आनेवाने दाव्द है। इतना निहिचन है कि हिन्दी का किंद इक बहुन बढ़े मिनिस से प्रा गया वा घीर उसे प्रमीत की उत्तफन रोक नहीं पादी थी। "मनीत के हिन भैनने ने क्या लाग ! विर नदीन के प्रमर राग से दीगा को बुलरित करो। नियदि कुर धीर निर्मय है। उससे भिक्षा मज मरगो। जीवन तो यतमान ही मे है।" (मनोरजनप्रधार सिंह)

वर्तमान के प्रति इननो अधिक स्वासिन देखकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक बार चौंक उठे थे। उन्होंने कहा था कि कवि वा सदेश राष्ट्रीय परिधि के भीतर वसकर नहीं रह सकता, क्योंकि देश के स्वनत हो जाने पर समस्याए बदल आएगी। किंतु सुग की पुकार बहुत सबक थी। उनका भी स्वर इंद गया। राष्ट्रीयता पर-पर का दीचक दन गई। जो भी हो, पादेश को तो एक रूप प्राप्त करना ही या, और उस समय वह जनस्मृमि के नाम पर मूर्न हो उठा। हम देखने हैं कि मारतीय चेतना की परपर के कारण हो जनस्मृमि के प्रति प्राप्तिन बाहर रण तक हो सो पिन गही रही, उसका अवस्थ भी कवियो ने प्रद-रित करते को यहा रण तक हो सो पिन गही रही, उसका अवस्थ भी कवियो ने प्रद-रित करते को यहा रण तक हो सो पिन गही रही, उसका अवस्थ भी कवियो ने प्रद-रित करते को यहा रण तक हो सो पिन गही रही, उसका अवस्थ भी कवियो ने प्रद-

> स्रवि । तुम भूतल पर श्रादि-किरण को माता दिव का मत्तक भी जिसे देख भूक जाता हे रश्मिलोक का भंगल मुकुट करों में

माता है तो भाने दो धन के अनगर को धन फेलाए, देखें रस्त-भरे प्याले को उन ममरो ते कौन समार । इहरीलो उत्त्वांस गरत की जो माने बडकर पीता है, नई विदयी को ताठी मूटे पी-मीक जो जीता है। ताखों कदमो से जरभी है जतका फन मब सड़ा पड़ा है, बाज तह से भीता स्पष्टा सब की सान बनेगा साथी।

—-नृपात इसका कारण है जनना में यापा का धतागात । हिंदी प्रांत में मनेक बोलिया है। यहां विद्या यदि किसी बोली में होती हो लोक में उठन पई होती। हिंदी के कित वो देवती बड़ी भारी होति रही है कि निस साहिस्विक भाषा में वह लिखता है, वह स्थापक तो बहुत है, परतु नहीं भी प्रावेशिक नहीं है।शिशा हो इस स्थवधान को दूरकर सक्ती है। स्थाहिस्य को माधा शिक्षित वन की माधा है।

शिविदों पर इस काव्य ने प्रमान काता है, यद्यपि इसकी एकांगिता तब ही तक गोह सबी जन तक कि समस्या अपने बाह्य रूप में प्रस्तर और ज्वलत रह सकी। उसका प्रमान साज भी है सबस्य

> जय जय जय जनवारा जय जन-जीवन-धारा

प्रथम करप के धरणप्रज-भूगों से जो गति कूरी,
जस सरिता की धररा सल करों मे कभी न टूरी।
महाकाल के लदा-लूट से सीई यह जल गगा,
लोई कभी मुनों के निरि सहुद मे चपल तरामा,
सीन मरम ने बार-बार जीवन की गति को धरा,
प्राण तरिगत ज्योति शिक्षा को देशने लगा खेंचरा,
प्राण तरिगत ज्योति शिक्षा को देशने लगा खेंचरा,
प्राण तरिगत ज्योति शिक्षा को देशने लगा खेंचरा,
प्राण तरिगत क्येति, प्रणति की गगा के धरिमानो,
जन जीवन के ध्रमर साथको ने पर हार न प्राणी
सूना पुन ध्रम सिलता का उत्स गिरि-शिक्षर स्वाणी
स्वाणी स्वर्ण कर तरिग के उठे परा स्वस्त से।
जिसे मणीरण में थियेक के परती बीच जनारा,
स्वर्णों के शेषों से जितका गतिनय स्व संवररा!

जय जन गगा धारा--

<sup>—</sup> रान्भ्**ना**थिंह

समभाता है

सदियों यो ही रहीं, हाय, तुम श्रद्धा-कामकुमारी !
पूर्णराम देवेन्द्र इन्द्र ने हमा, तजा गीतम ने
रमुनामक ने निवासित कर दिया लोकरजन में !
तदमण श्रीर युद्ध ने तप का समभा कव श्रीयकारी !
नाव कवाता स्वर्ण, बनाकर तुम्हें उवंती-रम्मा ?
निर्मेष सो नहीं गिरी तुम रहीं शक्ति लगदम्बा ?
सती श्राव भी दक्ष प्रजापति अहम्मन्य श्रविवारी ?
मदोम्बत हैं मनुज श्राव भी स्वामी बन सत्ता के
कर दिव को निवासित रचते यह राजिनमत्ता के !
शक्र अलवकर की सहबार बारी पुन तुम्हारी श्रीम्या है इस पूज्य देश पर यन जदक्य महराया महियानुरमहिनी बनी किर भूवन-विमोहिन माया।

.

बनो महातरमी, मंधियारी—मगती करी उजारी!
सागर का नीजीत्यल, उधामल शतदत बसुन्धरा का
पटतन पाने को लालामित उदित भानु रेगराता!
प्रज्ञापारिनिना दर्भन दो पादन भलकारी!— तरेन्न
उत्तने प्रवट्टेगा भी नी, परतु मारतीय नग्हित तो बहुन व्यापक है। ब्रत में
उमें मारतीय परप्रा में हो उपमान मिल गए। वह केवल वृष्टिनीय को में वाहरा हो।
भारत व्यो-स्पी देशातरों के सगर्क में आया धौर जैते उसने अपने सतीत को
देशा, उनके द्विन्कोण की सक्षणित भी कम होनो गई। देश के अपने को देशकर द्विन

.

गमा किसको नदी नहीं है भारतवर्ष न किसका है? श्राषं, बौद, हिंदू, ईसाई सभी गोद में लेन चुके, सहरों के उस्थान पतन को, मुस्लिम जन भी मेंत चुके, सबने इसका फल पाया है स्निप दृष्य का स्वाद सिया, इस पिट्टी की हवा रोगनी मन्त भीर जसपान किया। भावपूर्य जोनन का दर्शन शास्त्रन हुएँ न हिसका है?

х

युव्यो का है मुद्रुट हिमालय भूमण्डल का है सागर भारतकीसीमा क्या कोई? यह क्या किमी जाति का घर ? म्राङ्कात मो है, उत्तमे दूर जाना भी है, परतु जन-बीवन का वस्तुपरक चित्र नही है। घारमपरक सयोजन हो कविता का प्राण नहीं वन सकता, उत्तमे एकरसता आ जाती है।

'म्रात्मकला कविताके प्रति'कवि वहताहै

"हे सुरमरि <sup>।</sup> जन-सिंधु की ग्रोर चलो । तुम व्यापक लोक का माधार स्वीकार करो ।" (जानकीवल्लम सास्त्री)

चलो । करो । यरो । चले । किया । मरे । यह नही हुमा । कहने और करने में भेद आ गया ।

क्षितु जहा भावभूमि को तैयार करने का प्रस्त या वह दिवों से ठोक ठाक हुया। ग्रीर यनदा हुया, यद्यपि उत्तका श्रेव किसी एक कवि को नहीं दिया जा सकता। इसका कारण मा कि कवि घषते को मैनिक सममने थे, नायकरव राजनीतिज्ञों के हाथ मे था।

प्रयकार से लडनेवाला मेरा यह विश्वास जयो हो सब्बेगात क्या नवस सृष्टि का सपना कभी निदा पाया है? क्या न प्रतय के मध्यदेश में जीवन-उत्स जमड प्राया है? क्या न निता के तृत्य अक में ही जागी जया मुकुमारी?

ग्रंथु स्रोत की रेखाग्री पर मेरा यह मधुहास जयी हो। ग्रंथकार से सडनेवाला मेरा यह विश्वास जयो हो।

प्रथमार स सडनवाला मरा यह विश्वास जयी है पत्रभंड पर छा जाने याला मेरा यह मपुमास जयी हो, प्रवसादी पर हँसनेवाला मेरा यह उल्लास जयी हो

ग्रवसादा पर हसनेवासा मेरा यह उत्सास जयो हो ग्रावकार को पीनेवाला मेरा यह निष्कम्प निराकुत

ग्रधकार को पीनेवाला मेरा प्रखर प्रकाश जयी हो। प्र ग्रधकार से लडनेवाला मेरा यह विश्वास जयी हो।

— निरेन्द्रकुमार

सब बुख जयी हो, परतु जयी हो--राजनीतित ही, जयोक्ति कवि लोकक्यायो मे नहीं उनरा। दसीविए याने यसकर एवं भ्रोर कुस्तिन समाजदास्य की स्रति हुई, दूनरी धोर व्यक्तिपरक प्रयोग प्रारम हो गए श्रोर जहां कोव्योक मे उत्तरता या बहा वह समफन हो गया।

सिद्धात अपने-पाप में अपूर्ण सत्य होता है। वह जन-जीवन के बवार्य से जब तक मेल नहीं साना, तम तक वह अपना प्रमार नहीं कर पांतु । कबि अस्टिय जनक के

मेल नहीं बाना, तम कर वह प्रयत्ना प्रमार नहीं कर पाता । कवि फुफला उठता है "कैमे रहू यहा ? निय्तुरता सस्ती होनी जा रही है । यह सबेर नगरी है, मुखं

द्यासन हैं। उनने भाव जडवत् हैं।" (दीनानाथ व्यास)

—समार्जन

भाषता वा-सा गीत भी याया। अपने स्वप्न को उसने साकार भी देखा। ऐसा हो आए १ कीम १ यह तो हुई मार्ग को बात, परतु करूपना की सुन्दरता प्येय का विव दनी भीर प्रापेय बना विस्वास।

"श्वमाग ने केंबुल छोड़ो, पत्ती ने काम पनटी। नारा मीर निर्माण के दो पग रतकर निर्मात-नटी नाव रही है। सिंदयों के विपेत्रे मारी हुमने-चुमते महकेंगे। बहुत स्रोर होता, क्षितु केंदी की विध्त हमबब्धिया टूटकर ही रहेंगी। देश-देश के उन जागेंगे। वर्ग-दवार्थ की ततवार वमकेंगी। जिनत गुगो के विष्ठत समाबो के निश्झेटक कूटेंग।" (गरेट्स) मेरे ग्रसोम । सीमा मत बन तेरी ही पृथ्वी ग्रासमान ! श्रो नौजवान ।

—सोहनलाल दिवेदी

्यक्रा कारण है कि कवि झाज 'प्रवधारमक' नहीं है—'मुक्तक' है। 'प्रवध' का कौशल प्रपना एक लोक रचना है—'रचना का लोक' बनाना है। वह उसने वह स्वप्न के प्रभाव में मुक्तक में बदल गया है। तभी कवि दग गीत 'बातचीत' वन गया है

"प्रो साथी। दोन राह में पहकर मत गिर पडना। पथ में उन अमिट रचत-चिह्नी भी सान वनी रहे। पीछे नी बदान मर मिटने को याते है। इस वन में कहा मसुभ श्रूगाल रीते हैं. जनसत्ता की विराज नगरी निर्मित होगी।" (रामिनवास समी)

सभी कवि एक ही बात कहते हैं। इसीलिए सबकी बात में एक-सा बोर है। इसीलिए कोई भी एक-इसरे से अधिक दर नहीं है!

यवार्य का प्रकृत पुरा का प्रभाव है। ऐसा सर्वव होना है। केवल नवेपन के लिए नवापन भी इनीकी प्रतिदिया बनकर प्रयोग बनी। किंतु रोनो ही ग्रोर से अभी 'यहा-प्राण कवि' जन्म नहीं से मुका। आज भी बैसे विविध किंतु सो सामने धाते है

> देह समर्पित करती पत्नी, नारी करती प्राच वह भर्ता को मुख देती, यह फरली प्रिय कल्याण।

> पुरुष दीव यदि ज्योति प्रसारक पत्नी वर्ति समान वृहष दीव यदि ज्योति प्रसारक पत्नी वर्ति समान दोत उभाग को करनेवाला घृत नारी को जात । काम-मोह का मुम्ब दातम पद जिममे होते क्षार, स्मेह चढा, जस मुद्दे चुनिका, दीव हुम्रा बेकार ।

> > —गौरीशकर मिथ 'दिनेन्द्र'—'सावित्री' थे

परतु हवे कही भी मपूर्ण 'भाव' का चित्र नहीं मिला। इस बुग में कविता को गुगार, करका, बीमला, बीर तथा रीड रख मिले। परतु ने एक ही चुरी में वसे रहे भीर उनकी गति चत्रवन् इतनो तेड रही कि पाठक उनको घूमना ही देश सका। यह है नवी कविता मा प्रभाव। भाज दूर ने देशने पर ही मैं इमें देश सका हू। फिर नहीं कहूमा कि सत्त्रिता नर रने इसकी भी व्यावधा की है

'ब्ययं ही स्वयं घतीत याद प्राता है। हम हार को ही जीत बदते रहे हैं। हम वृत्तियों के भीत दास बने हैं। हम न बैंट समक्त पाए न प्रीति। स्वार्थ का सकत्व पूर्ण करने को हम यहा प्राकृत्य बढते रहे हैं। स्थि-विषह की पिमी-सी बात दिन-रात मन सा संयत के गीत तुहाणित ! सौमूल दिवरा बात के ! साम सरद की सांभ, असा के इस जगमग त्यौहार में शेणावली जलाती फिरती नमें के तिमिरागार में चली होंड करने सू लेकिन मूल न—यह ससार है, मर जीवन की चास दीय से रखना पाँव संभाल के ! सम्मूल इस्टा चूना रही पीछे संगय-नय रोकते, पर्म-कर्म भी बाय-बाय रकी स्थलन टोकते, प्रमान्त्रण की ये चार दिशाएँ तम से पुंपती दीखतों, बतुमूंली आंत्रीक जला के स्मेह सत्य का डांक के! दीप-दीर मांचों के सिलमिल और दिखाएं औति की गति-मति के प्रयप्त चलना है और ति लिए नवरीति की, यह प्रकास का पर्य स्मार हो तम के इंग्रंग रेस में,

चमके मिट्टो को उजियाली सभ का कुहरा टॉल के। —-राजेटक्साट सिंड

मह कविता बहुत ही श्रेष्ठ रचना है जिसे बहुत ही ग्रच्छी तरह गाया जा सकता है। प्रकारा का वर्ष मनाने की घोषणा यूज उठनी है ग्रीर किर श्राती है ग्रद्भुत कल्पना

महसम्या एक शमा-सी है दिन के पर जलते जाते हैं---

—शिनश्हादर मिह

स्रोर मनुष्य प्रेम को अब भी सर्वोञ्च झासन देकर कहता है : किसी भवत ने देव की धारती हित बड़े भाव से दोष मठ का जसाया दूर हट, यह नहीं झर्चना प्रेम की कूद तो ने शक्त ने यती की बुताया प्रणय के नगर में सकत प्रेमियों को जलन ही ग्रयर ग्रीर खुबन ग्रेगारा।

—रिावनहादुर मिद

उदासतम हो बाला पाव भी फर्ज्य की नेतरा का एक संक्ष्य है। और इसे वह प्रकृति से निरन्तर सीम रहा है। तभी कवि-हृदय कुटना है

स्रवर के स्रोतन में जनते रहे सितारे रात-भर चुन-चुन इंगित में चवा ने निश्च से निश्च न भर बात की, स्रोवों में स्थापुल झका यो स्थानेवाले प्रात की, रहे क्षेत्रते स्रोत - भर।

मिट्टी में मिल गई जवानी भोले-भाले फूलो की मौकों में रह गई शिसकती तथ कहानो यूलकी तुन्ह जानना है मनुष्य तुम नहीं गुलाम देवताओं के भीर न उनके दया पात्र हो, भीर न उनके उपर निर्भर

तुम्हें बात्म ग्रवलब चाहिए !

तुम्हें जानना है मनुष्य तुम स्रीर मानवो स्रविकारो पर जबकि खडे होंगे तुम उटकर कोई रावित नहीं ऐसी जो तुम्हें हटा दे तिल-भर पोर्छ, तुम्हें झारम विश्वास चाहिए।

इसोलिए यह अपनी वाणी तुन्हें भेजता हूँ चर्द में सभव है तुमको कुछ बत वे और कालिका करे प्रेरणा निकत पृष्ठी ठाम सहसा कहकर—

श्रपनी रोटी ग्रपना राज,

इन्कलाव जिन्दाबाद । --वस्तन

कित सब बाजों भेजता है बदें में। तया ही प्रयोग है। प्रपत्नी रोटी और अपना राज! दी पुनार हैं। पूर्ण स्वतन्त्रना! सरे बैभव के मोह! तू तो वार-बार सता रहा है। कहा ग्यावह नारत ना गीरव!

"तू प्रवय पूछ कि राम कहा है। बुदा। बनायो धनस्वाम कहा है। यो भगव। तैरे प्रधोक, चउगुज— वे बलधाम कहा है। तिषिक्षा मिलारियों ती पडी है। इसने प्रवती तारी पनन निधिया कहा गवा दो। यो निष्नवस्तु । बुद्धदेव के वे पगत उपदेश कहा गए?" (रामधारीमिह दिनकर)

सव कुछ चला गया !

ययो ?

म्रतीत थान<sup>२</sup>

हम ग्रपने स्वत्व को सभाज नहीं सके ।

वितुहम मरेतो नहीं?

मर्रेने की १ हमारी तो घरती में जड़े हैं । हम तभी जीविन हैं

बह फूल भला क्या फूल, भरा जिसमे जीवन्त पराग न हो ? बह यौवन क्या, जिस यौवन से जीवन की जसती खाग न हो ?

—বিজীয়ে

योजन भी है, क्योंकि उसमें मर मिटने की तमन्ता है। वारामार क्या कवि का मन तौड सकता है। भला वह क्या तोडेगा ?

सैनडो-हतारों कारा में तड़प रहे हैं। कवि मो उन्हों में से एक है। यह भी प्रपत्ने को दू स में केवल सुखी रखने के लिए पीछे पड़ी भाग सकता। जब - जब पदन संदेसा सादे दीये की ली - सी बल खावे भाता दे - दे पास दुतावे उभक्त देख में जानूं मेरे भाए रामकुमार ! देखूं जागल में पटिबनना गमन बीच तारो का खिलना में जानूं यह केवल एतना कीन कहे गचमूच झावं मेरे राजहमार !

धोज रहो तत-मन को बाती धोये-सी हो रात तिराती जीती तो फिर रात जनाती कह भर देता कोई----मेरे झाते राजहमार!

×

—नरेन्द्र शर्भ

राजकुमार उसकी बल्तना का सुदर वाग्य है। इसीलिए कवि का हृदय उसका वरण करने को क्यी की कोमलता का अनुभव कर उठता है भीर कहता है कि प्रायु समास्त हो जाती है। सकल सृष्टि इस रोप की भाति हो यत्न से प्रपत्त को पुनाती रहती है। सोक्षमीत जैसी यह किवता उमम का परिचय देती है। प्रस्त उठता है क्या यह पत्ताधन का विच नहीं देती? मैं समभता हूं नहीं। प्राचीन काल से हो मनुष्य प्रपत्ने वासीनक चित्तक को सहस्त बताने को लेकिक कांग्री में प्रवतीरत करता रहा है। उतने पशुन्यक्षियों तक को बात करते दिखाया है। इसे उसने 'रित' में सबसे प्रधिक निकट संप्रमुख किया है। उद्वाध्य के पतन भी प्रिया में विरट्निवेदन के रूप में प्रकट हुए हैं। यह तो एक सामना है कि व्यक्ति का पातरिक जीवन भी प्रपत्ती सारवना पाता पत्ते। विवास को हो सह साह

दोप जल रहा गल-गलकर छेतेरा ही विश्वास सहारा कल ठुकरामा जाता या पायाय माज भगवान हो गया। बह बब धक जाती है तो पुराने — अतीत से प्रथम कोवती है। अतीत सन्द्रा लगता है। यह मनुष्य की एक सहय निवंतता है। यमे १ वयोकि प्रनीन पर मिलपिस

द्याया रहती है <sup>!</sup>

नालदा!। "बह मधुमय ससार एक सपनान्सा या। बाह् । बह अनत छ्वि-जाल! पुष्प प्राची का स्वींगन काल था। हत्त । काब उत्त स्वींक जन का यह दुरत ककान पत्रा है।" (केसरी)

इस कर्बाल को धव कब तक वे पुराने गीन सुनाए जाए ! उनसे लाभ वया है?

कुछ नहीं। इसे तो नयी अभिन पाहिए।

वर्षि इसे जानना है।

तको बह नबीवता की घोर ब्रायिक प्रश्नपर है। वह बड़ी ईमारदारों से पूछना है कि वदि तुत्र देखित को मोल चाहते हैं। तुन स्वत तता सैवे पाहते हो ? सवाम से हो न जाने किनने प्रताब दक्षिन्दीर पपने नी होम देवें हैं, तब नावर कर अपन्य होता है। को मिटते हैं, वे प्रतारण नहीं मिट याते ने एक नया स्वय सावार करके चारी

ŧ:

मिट्टी वतन की पूटती, बह कीन हैं, वह कीन हैं, इतिहास जिसपर मीन हैं!

जिसके सह की बूँद का टीका हमारे भात पर जिसके सह की लातिमा स्वातन्त्र्य शिक्ष के पात पर जो कुक गया गिरकर गणक से निमित्र के सारा सहस बच प्रोस जितना भी न गया प्रमु जिसका काल पर जो दे यहा जीवन विजन के जून-सा हुक नात की जिसके लिए दो बुँद भी स्वाही नहीं इतिहास को ! कह कोन हैं ?

जितके मरण के नेह में दोषक नयं युग का उत्ता, काबल नमने ने मेह से सरका मनुज सन का लता। बुरा नाया पद-पा से कटक ननुक की यह का, बुरा का को, मुस्ति के निक मृत्यु का समृत् रिला, युमती न स्मृति जितकों की नी मृत्यु का समृत् प्रमृती न समृति जितकों कभी यो वे किसोके युन्त से धरसे न निस्तर श्रांत से दो शामुखों के कृत हो।

--दमहुमार तिवा

उनकी मृत्यु भी समृत होती है। यहीद एक सादर्श हो गमा। सहीद पर

हाय बनी-गरीब ऐसे भेदरच डाले। अहाँ नेह अभेद ऐसी एक बेला है। जानता हूँ रात बीते प्रात होना है प्रात होते तेज से फ्रांस्तस्य खोना है।

—भशनीपमाद तिवारी

हम एक और बड़े सत्य के पास पहुनने के लिए जीवित हैं। वहा हमारी मान्य-ताए भी शुद्र पढ़ आयेंगी, कितु तब तक का उनके द्वारा दिया साथ अपनी साथेंकता पूरी कर चुकेगा। बहु उसकी सीकहित में सर्वत्र चाहता है.

> द्वार-द्वार पर समन्द यह दिया जले मुक्त द्वार हो न बन्द यह दिया जले । सरय बन ससत् प्रवाह मे,

सत्य बन मसत् प्रवाह भ, बन प्रकाश तिमिर राह मे स्रमुत्रधार—मृत्युदाह मे,

नव-तव रस रूप गय स्पर्श शब्द ले प्राण-प्राण बीच यह ग्रमर प्रभा जले !

X सम की दीवार तोडकर,

सप दुनियार तोडकर मुक्त ज्योति की उठ सहर गृह यन गिरिसिय यार मे गगन तले देशकाल से सल्लब्ड यह दिया जले !

**—राम्**नाय सिंह

यह दीपक प्राकाश भीर सकत लोक में प्रज्वतित होकर रहे ! इसलिए कवि-ह्रदय इननों भी स्पर्धों करता है कि प्रकाश के लिए भील भी नहीं चाहता ! स्वयं पर ही विश्वति है

> मुफेराह में रोजनी मत रिखाना में ब्रपना ही बीयक जताती चूलूंगी। कियर मेरी मजिल क्वियर है किनारा नहीं मुभको लेना क्लिपेत कहारा तम्पकर मेरे दिल ने मुभको दुकारा बताया है चुपके से मुम्बकी दुकारा

महबा रात को गृहस्थित के बु ख देखकर रोता है।

हिनु तोक प्रवत् की भावना यहाँ न जाने कर से भीवित वसी बाद है। व्यवस्थ भारतीय बच्चाल चित्र से प्रवत्ता बहुत पुरामा स्थान एतता है। कवि के लिए बहु बुद्धत का इनोक है, करणा ना प्रतिमिधि है। उसकी बाद करने कवि उसी भीक सबस नी भारता ही बाधन करता है

> बाम है ब्रश्वत्य जो ब्राह्मस्त करता रहा पोडियो मन्जता की।

> > ∽शितदणविनेह <sup>4</sup>ट्रमत³

मगल राम धौर विदाह का गर्नन, दोनों ही हिंदी में साथ-माथ गपने हैं। स्वपरेज हिंदी नहीं बढ़ते 2, न देश कियनता नेता ही, स्मया वे भी दम तडकर ना अनुभव नरते। अग्रेर यह तसाय दस अग्राय का गोर्स है, डिसडे प्रति विदोष प्रेम गहीं के तिस्तितों के भर में भी नहीं था। इतने प्रभागों में स्हुबर भी यह भाषा जितनी प्रचट वन सकी है। यहीं है वह स्वर जिसने बहुत था

कीन रोक तकता टीली आगे बहने बीवानी की आप करने हैं लेगा किर से प्रारं कर सामानी की करने कर की हैं लेगा किर से प्रारं कर सामानी की करने के आप हम नाते परधी जनकी बारी है बर-बर में दासा ब बुता है पर-घर में हैं बार हो हम की मार्च के बहु कर हम की कर का दूजन है कितने दोता पड़े बरणों में आप बहुद आपोजन हैं कितने दोता पड़े बरणों में आप बहुद आपोजन हैं बरणों में आप बहुद आपोजन हैं बरणों में आप बहुद आपोजन हैं कितने दोता पड़े बरणों में आप बहुद आपोजन हैं कि बात कर पार्टी की कि बात कर पार्टी की स्वारं में कर पार्टी के स्वारं में कि बात कर पार्टी की स्वारं में कर पार्टी के स्वारं में की स्वारं मार्टी की स्वारं में कि बात कर पार्टी की स्वारं में की स्वारं मार्टी की स्वारं में कि बात कर पार्टी की स्वारं में की स्वारं में कि बात कर पार्टी की स्वारं मार्टी की स्वारं में की स्वारं मार्टी की स्वारं मार्टी की स्वारं में की स्वारं मार्टी की स्वारं मार्टी की स्वारं में मार्टी की स्वारं मार्टी मार्टी की स्वारं मार्टी मार्

—मोद्दलात दिवेदी

क्तिना प्रभावधाती जिन है। बिलिनेबी पर प्रभार बिलिदानों की भीड सची है। ग्रानास में मा के जयवानों की व्यक्ति गुज रही है।

कवि "अविषय के खबहर हो गहराई नाग रहा है। वह वर्षत से याई की उचाई नापना है। रहे दिन मोटकर नहीं बादे, यह वह जानता है। व्यक्ति हो नवी उसकी एर-छाई पहनी है। वह मंजित पर पहुंचकर पंच की सनाई नाय रहा है।"

(समंदेश्वर समाध्याय)

वृदि बडा बीसस जानता है।

,

चुप से बहा बह कभी-सभी दिलाई तो देता है। बाब सारा बहु कोलाईत दूब चुदा है। इतिहास बदर बुदा है। यदि वही यव वह सब जीविन है दो कविता में । दुर्वाय के जजदा सभी प्रध्यक्त विरुद्ध में नहीं हो सबा है। हम भी यदेने सबसे साव किर उसमें दिदशास जागता है और उस प्रकार सामाजिक कुरीति भी उसी चेतना का एप साकर प्रहण करती है। दौप हमारे सामने किर धाना है, क्योंकि वह प्रवृति की सक्षय ज्योति का प्रतीक जो है। उसका आदर्श वनाकर मानव से अपने कप्टो की भील सेने का एक साधन बना लिया है

संन बुमूर्ती, श्रमर दीय की ज्वाला हूं, बाला हूं, बल-भर क्रिसी वच्च से लगकर दिन्न हुई माला हूं, प्रवर पार में पड़ी तरी हूं हुट गई पतवार, में जायत् भारत की विषया,कुष्टित ग्रांति की घार ! चिता भूमि की कुषुमित लतिका,क्षजित सौरभ भार वृद्या।

किसे मुनाऊँ करण कथा ? —जन्दीवल्यम गास्त्री

यह दोपक वब बुक्त जाता है तब वह किन को कोई प्रेरणा नहीं देता । देवल जड भीतिक में उसे सारवान नहीं होतो । सम्यता यदि निष्पाण है तो वह सस्कृति का निर्माण करने में प्रसम्पं है। अन वह स्वाक्य है। प्रकृति का वही रूप मानव को एसद है जो उसे प्राप्त का मार्ग दिखा सके. सब प्रवस्थाओं में उसके हृदय की एक दक्ति दे सके

> यह बुभा टीपक, धिनीना मृतिका का पात्र । दाय उर पे रह गई हैं स्नेह की वो बार कूँदे मात्र । रात्र-भर जतकर किया पय का अधिरा दूर पूछ बनकर इतीपर अब छा गया बह दौन सिमुकी के डोक्टेन्सा ही गया यह दौन सतम-मभ्नात करण काले बादलों में सीन युक्त पुने है आण-दाती चेतना इसमे नहीं अणुमात्र !

—वेशनास्यस्य स्वक भी कह जाना है कि

हिनु बार इसना बोबन व्यर्थ चला गया ? नहीं। बबि यह भी कह बाता है कि इसके कार्य को स्नेह दो, इसनी बबता को नहीं, बचोकि प्रव यह काम नहीं द्वा सन्तता। यह बोप हमारी बेदना से जन रहा है। बिब कहना है हमारी स्वया की जलता से

दियानी शिक्षा जल रही है। ×

हमारी चिता की लपट से प्रमा की निता बल रही है। पियल दल रहे नमं सरमां हदस के मूर्तिमान हो गई जहां मुरूप दामना। देश मे प्रनेक वर्ष वर्ष जाति यमं हैं भाव हैं प्रनेक कर्म हैं कोटि-कोटि हुए में परतु एक गाति हो। एक मान एक, त्यान एक गान है। एक मान शक्ति है। हो होने हिंदी हो। हो हो है से हिंदी हैं जोटि-कोटि का जिसे कि बहुबल मिना कोन कह रहा कि वीरम्मि मान निर्वंस मान जापरण हुआ है हम सद स्तान हैं प्राव को के स्वरुष्ट एम स्वान वर्ष हो हम सद स्तान हैं प्राव को के कर स्वरुष्ट एम स्वान प्राव साज जापरण हुआ हम सद स्वान वर्ष हो साज एक करपना, मान एक चितना मान भाव एक करपना, मान एक चितना मान भावना पही, समस्त सिद्ध साधना।

—सुधीन्द्र

यह कविता बहुत ही नेव ग्रीर क्येंदिक गरिमा का प्रतिनिधित्व करती है। स्वर्गीय मुभीन्द्र की ग्रमर कीनि की स्वापना के लिए यह एक कविता ही काफी है। यहा हम केवल गयोगान नहीं पाते, प्रकृति को करदान भी पाते हैं। जाति-द्रेय हटता हुगा दोलता है ग्रीर करोडों की ग्रमर शक्ति हरहरानी हुई मुनाई देनी है। यह किय की एक शेट्ट कविता है, जिने देरा-त्रेम की कित्ताओं में प्रवस्य ही मक्सित करना चाहिए।

देश और विदव का समर्प भी एक होना दीखना है जागे मगल वाणी।

नवयुगकी पगप्यति में जागे श्रक्तिल विश्वकल्याणी । जागेजन पद-प्राम-नगर मे

गृह-दन में सरिता-सागर में भ्रयक विहम-सीनीलाम्बर में जारी जनगण के भ्रतर से

स्वप्त-भग-से निर्भर-सी फिर वहें ग्रमर युगवाणी। महामृत्यु के पथ में गूँजे कवि की भैरववाणी।

जागे जन पशुहीन नगर में नवयुग के उन्नत जिर भर में सहकोदयं-से नीलाम्बर में जागे मुक्त राष्ट्र के स्वर मे तो भूसो शुगार-भावना दीवासी स्पौहार मनाती।

—विद्यादनी कोवित

प्रवक्तर को मिटाकर घर-घर यानद होता, तब ही अगार को मुखी भावना दोबानी का स्पौहार मनातो । मणवा धानद मिले भी कंसे ? हसरे पत्र मे जब परमात्म देला का स्पर्ध होता है तब मनुष्य सर्वात्म के धानोक पर न्योद्यावर होना भी अयेस्कर समस्त्राही

> दुम दोषक हो, में लघु पर्नम, है देव ! तुम्हारे जलने में है कर्मधोग की मृदु उमय। तुम जलते जिमती उजिधालों, में जलता होती क्षेषियाली, पायन प्राची में कहलाया, प्रभ ! जला तस्तारे समस्य !

कितनी करणा से मनुष्य कहता है कि उसे अपनी सत्ता, घरनी वासना और प्रह की इतनी स्थीकृति नही चाहिए, जितनी इसकी कि उसकी वेदना पहचान भी जाए ।वह प्रपनी वेदना को बहत प्यार करता है

देव मुभको भूलकर इन सांमुझो को जान पाते।

–ताराचारडे

करवा धपने धावत में न जाने कितने मुख-स्वण निए धाती है। मुख-दु व के दोनो पक्ष उसने ब्रह्मिट्ट होते हैं। वह मानद हो, या बेदना, दोनो में ही एक-सा सालिक्य प्राप्त करने का इन्युक बना पहुंग है। जनना मीर युक्ता एक ब्रान्ट भी देते हैं। सपने 'प्याप जितन' के पित्र पाने स्नेह की प्रतिव्यक्ति के लिए भी दक्षी समर्पण की सन्दावसी का प्रभोज करके नहता है

> दिये को लाजा कर बुआया गया है ज्ञासभ मुख्या कर बुखाया गया है—

> > —रामकुमार <del>बन</del>वेदी

प्रेमी वा इस प्रवार बुलाना ग्रीर फिर दीय को बुम्म देवा-वीप यांनी कुतूहल का रूप !

प्रेम की प्रतीक्षा भी इसी प्रकार प्राज प्रभिम्मक्ति पाती है, घौर वह इतनी गूड है कि उसे हम दर्जन की पहराहमा धपने में समेटे देसते हैं।

'जुननू' में बच्चन ने इन दोनों भाषों को मिला दियां है। सन्त जिलार में वह प्रकास का एक क्या उसके लिए प्रस्तित्व ना प्रतीक बन जाता है। कवि कहता है संवेरी रात में शेषक जनाए कीन संत है?

## तो ई देहों की नस-नस का, कस कहाँ रवतुना उद्दित परे हम भारत परवितहार वीर!

—चद्रभान विरेशी

प्रस्ते पूर्वकों के प्रति उन्ने बना मिल्याल है। ऐसे दूर्ववों की पर्यों का कोई बना विमाद करवा है। किसका रक्त इसकी रक्षा के विए नहीं। उनक पड़ेशा। ये सारे इस मारत पर विस्तारों हैं।

वैते दशा देखी जाए तो कवि के पास का है?

"न खर्च को उसे पात है, न पा को तसी है। मानतान वरी खरूर की बसी भी नहीं दीखती। क्लिंद्र मधीन सिन्दे सपनी बाढ़ में स्वनेत्राने मनत खर्च के बन्ती ! युन हार न मानता। कुन्दे सहर पुतार रही है। जामने विनय्य विस्त है क्लिंद्र हर न मान नेता, बसेकि बहुर नदीन कृष्टि का स्वयन नेकर तुन्हें निहार रही है।"

> (समूनापसिंह) यों की । समध्य

सारा देश हो दिख्य है। देवन एर स्वप्न है। शक्ति है वो मुखामों सी। समिष्टि हो शक्ति है।

महारोदद में माने मोम्म एक सुदर मीन यह है

जग है फिर से भारत देश पूर्वे जिनिव पर भरिषम ग्रामा का नुनत उन्मेय कोति धवल हिमबान महुट है विस्तृत शाइन मुख सम्पूट है यया-यमुना की धाराएँ जिसके धनर को सरलाएँ शीनल रस से बोनप्रोन है जिसकी भूमि बरीय सिंधु तरियत है चरकों मे धनुतिन है जो उत्करकों मे क्रवा जिसकी समर प्रशास को शास्त्रम प्रापार विभाका सदा सम्मिन भीर समन्त्रिन जिसका धनदेश थी-शोमा है बियकी दानी दामा- सान्ति का जो विद्यामी यग-यगके उत्यान-व्यत्र अत साक्षी है जो जग-क्षोदन का,

ग्रोर प्रासा प्रपने प्रिय को पहचान गई है। उसके लिए नारा जीवन एक घारा के समान बहने को तत्पर हो गया है। वह धारा ऐसी है जिसका पत्र कोई नहीं रोक सकता '

स्राप्ता का दीय जला है पाक्षर स्रव मृद्य इशारा छूने वरण हृदय वन, में यहती हूं बन धारा। उन्मल हृदय ने वथन सब मोड दिये हैं सारे, मब खुव न सबमें ने मेरी मोदी के तारे।' धह सुद चुकी है कुदिया, यह सुद चुके है कुदिया, यह सुद चुके हो कुदिया, यह सुद चुके होता के तारे।' धा सह सुद चुके है कुदिया, यह सुद चाई कुद्रावारी, यो जहाँ बहुत नहीं कि तियो मृत्यर बारी-बिह्मारी। धो जहाँ के किता गाती मृद् गाया ध्यारी-ध्यारी बहुती धी निकट कुटों के गिरिवाला शुवि सुकुमारी। धो कित-कत, धन-प्रत, स्विरस, चताने बल साती धारा। मिल मिलन सति साती भी, जाती यो चुन किनाधारी। मिल मिलन सतिल स्वयो का जितमें हो जाता निर्मन, धा नहीं कलिकत स्वत से यह दुग्य-धवन सुधि स्वत न

ऊँचे पर्वत भी जिसका पथ रोक नहीं पाते थे उस पानी की घारा से कट राज-कण धन जाते थे।

—हरिक्रण प्रेमी

परतु बिनाय बहुन ही बिकरास सत्य है। यह भी प्रयकार ही है। उसके सामने किसोकी नहीं चरती। प्रकृति के कार्य-व्यापार से मनुष्य नो पोडा का मूल्य कुछ भी नहीं है। उमें धीर पुतर्जन्म के विचार रसी प्राइतिक निर्माता के लिए व्यास्थास्वरूप थे। प्राज का कवि मानना नहीं दमे पूर्णन । यत मानवकी सत्ता की समुदा उसे बहुत प्रथिक कथोटने समती है। कवि कहना है

प्रशं पाली । न सम के राज में आंतू पहुँचता है प्रशं प्रथमी, स्पर्य ही भीति का पक्षी हुहुकता है किसीके प्यार का दीपक जला, जलकर मुक्ता जम से जला दे देह का दीपक किसीके प्यार के पाम मुर्गों से टूटने जनते गणन में चाँद के टीपक । श्रतस प्रवसाद के दीपक ।

—खंशरारय भित्र

एक हो सारवना है। यह जीवन ध्यार के हित दोप-सा जले, बस यही काफी है। बाकाश का चढ़मां भी न जाने कितनी बार जलकर बुक्त खुक्त है। इससे सी प्रधिक परेपान हो गया, जेंगे हिन्दी साहित्य के इतिहानकार परवर्ती रीति कवियो की भीड देखकर होते रहे हैं। गुग-विरोप में जैसे स्वर में स्वर मिलता ही है, वही बात है, परतु ब्रधिकाश उसम नया स्वर है

> क्षान शतन्त्रत कच्छ मे किर स्वरो का वरशंन जागा क्षात्र अन-वन के हृदय मे मुक्ति का सम्मान जागा क्षात्र जागा रोव कि कांगी परां नम जामागावा क्षेट्ठ के मध्याञ्च से स्वर-ताग जब मंने सुरावा क्ष्ण्य मे स्वर नवत जागा हृदय मे बन सबल जागा नवन मे नव क्योंति जागी देह पर नव वैदा जागा क्षात्र मेरा देश जागा देश का क्षमिमान जागा क्षात्र मेरा देश जागा देश का क्षमिमान जागा क्षात्र केरे देश के अध्याप का अस्तिशन जागा!

> > —- त्रगदीरा

हात, कोटि, ही झापे झानेबाते दाव्य है। दतना निस्चिन है कि हिन्दी का कृषि एक बहुत बढ़े निविद में या गया था और उसे झनीत की उसभेज रोक नहीं पाती थी। "भनीत के हिन भोजने से चया लाभ ! चिर नवीन के स्रमर राग से बीगा को मुसरित करो। नियदि कुर और निसंस है। उससे भिन्ना मन मानो। जीवन तो वर्तमान

ही मे है।" (मनोरजनप्रसादसिंह)

वर्तमान के प्रति इतनी प्रधिक घासिना देखकर रवीद्रनाथ ठाजुर एक बार चींक उठे थे। उन्होंने कहा था कि किन बन सदेश राष्ट्रीय परिधि के भीतर वसकर नहीं रह सकता, क्योंकि देश के स्वतंत्र हो जाने पर समस्याए वदल जाएगी। किंतु युग की पुकार बहुत सक्त थी। उनका भी स्वर हुव गया। राष्ट्रीयता पर-पर का दोषक बन गई। जो भी हो, घावेर को तो एक रूप प्राप्त करता ही या, और उस समय बहु जन्मभूमि के नाम पर मूर्त हो उठा। हम देखने हैं कि भारतीय चेतना की परपरा के कारण हो जन्मभूमि के प्रति प्राक्षित वाहर रूप वक्त हो तो गिन गही रही, उसका अतस्य भी कवियो ने प्रद-रित करते वा यत्त किया क्योंकि यहा को सामाजिक खबस्या का मेंद्वाविक निरुष्ण या निदिचत हो जाने की परपरा हमें बेद के 'विराट पुर्य' में ही मिन जाती है।

> र्घाध <sup>1</sup> तुम भूतल पर घादि-किरण को माता दिव का मत्तक भी जिसे देख भुरू जाता हे रिम्तोक का मंगल मुकुट करो से यह तेरे पुष्प पगो तक बदता धाता

है। यह है वह मानव की झतीन्द्रिय चेतना जो माटी मे से उचागर हो उठी है। कवि उसका वर्णन करता है

> इस मिट्टी के दोप, चेतना की बतो को, स्मेह मिला जब कहा विरोधी तत्वो ने, बस धीर चाहिएएक जसन धर्ब! तुमने चपटो की उँगती से मेरा स्मेह-दीप जब धाता। सहसाउपीति जनी धन्तर में प्रत्यकार वन गया उजाला।

> श्रांथी शाई, पानी बरसा, रात धून देन-देनकर हारी पर न बुसी उत्टी भड़की ही,मूल शक्ति-सी यह चिनवारी!

**−**शिवद्मपत्तमिंह सुमन

यह रीप केवल स्तेह के बत पर जीवित रहना है। किंदु उसे विरोधों तस्तों ने जलन भी दे दी है। यह मूल राश्नि नी जिनगारी है। यह व्यक्ति में भी है, समाज में भी ! यह युग में है। युग हमारा एक नया पात्र है।

युग भीर दीप दोनों परस्पर एक नूसरे के लिए लालागिक से होने नयी किवता में दिलाई देते हैं। युग किस चेतना का प्रमूर्ण व्यक्तित्र हे नत्न ने हैं, दीप उसीको सुदरता की प्रमित्यक्ति है। मुद्रप्य का निर्माण ही इस समस्य के मून मे है। पहले का मनुष्य प्रपत्ती निर्माण-प्रक्रित रा पर्व नहीं करता था। आज का मनुष्य करता है। प्राज उसे प्रपत्ती कि मिन में प्रति पर्व नहीं करता था। आज का मनुष्य करता है। प्राज व्यक्ति प्रत्य को स्वीकार कर पुत्रकी साम को मीति प्रति हो। प्राज व्यक्ति प्रत्य को स्वीकार कर पुत्रकी सह को स्वीव है। विश्व मानुष्य विकास ना सहामूर्य में निवत जाने की योजना का रहा है। तमी उसमें मिति से प्रदेश हो। हमा हमा सिंग स्वीकार के दिल पास मानुष्य हो हो कि वह सविल के बहुत प्रस्त भा पुत्र है। हम हमा है। है। को स्वीकार को तम रहा है। हम हमा है।

मुग के पृथमारे महिर में
िक्त से रमों के दीप जले ।
तो ये जीजपाले के मेरे
किर सारमान की मोर चले ।
हम पीधे बती कर धार्य
जस महानात्र की दीह रमाम,
चलकर मार्थ हैं पिन-पय—
इस पुग के देव जिल्ला परण-

तरेस्ट

सदियो यो हो रहीं, हाय, तुम श्रद्धा-कामकुमारो ! पूर्णशाम देवेन्द्र इन्द्र ने ठमा, तता गोतम ने रम्नायक ने निर्वासित कर दिया लोकरकन में! लक्ष्मण योर युद्ध ने तप का समभा कब श्रियकारो ! नाव कवाता स्वर्ण, बनातर दुम्हें उर्वेगी-रम्मा ? मिरने पर भी नहीं गिरी तुम रहीं शादित जगदम्बा ? सती श्राव भी वक्ष प्रशापति श्रहम्मन्य प्रविवासी ? मदीमता है मन्त्र श्राव भी स्वाभी बन सत्ता के कर दिव को निर्वासित रस्ते यह रावितमता है। सहर प्रत्यकर की सहबंदि बारी युन तुम्हारी श्रुप-युन से हम पूज देश पर यन जन्नद्व में हराय महियासुरमहिती बनो फिर भूवन-विशोहित माया।

बनो महालदमो, ब्रेधियारी—जगतो करो उजारी! सायर का नीलोत्पल, प्रयामल शतदत बसुग्धरा का यदतत पाने को लालायित उदित भानुरोगराता! प्रजापारिमिना बजेन दो पावन मगसकारी!—

उसने प्रवहेना भी बी, परतु मारतीय नरकृति तो बहुन व्यापक है। अब में उसे मारतीय परदरा में हो उपमात मिल गए। वह केवल दृष्टिकीय का भेद चाहता है। भारत ग्यो-क्यों देशातरों के सपर्क में आया और जैसे उसने अपने अतील को देला, उसके दृष्टिकोण की सकीर्यता भी कम होनी गई। देश के अगरों को देखकर कवि समस्तात है

x

गगा किसको नदी नहीं है भारतवर्ष न किसका है ? भ्रायं, योड, हिंदू, ईसाई सभी गोद मे लेल चुके, सहरों के उत्पान पतन को, मुस्तिम बनन भी मेल चुके, सबने इसका फल सामा है स्मिण बृग्य का स्वाद सिया, इस मिट्टी में हवा रोसगी मन्न भीर जसपान किया ! भावपूर्व जीयन का दर्शन सास्वन हुई न हिसका है ?

^

पृथ्वी का है मूद्रुट हिमालय भूमण्डल का है सायर
अगरत की सीमा क्या कोई? यह क्या किमी जाति का घर ?

भोव-शिष्मा प्रांत भी सहरा रही उद्दाम वह रही प्रसहाय नर की भावना निक्काम, भीरम ही प्रयवा यूपिटिटर, या कि हो भगवान बुद्ध हो कि घरोक, गांधी हो कि देश महान, सिर मुका सक्की, सभीको थेव्छ निज से मान, मात्र - वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान, वाच कर पर को, स्वय भी भीगता दुल-वह आ रहा मानव चला प्रव भी पुरानी राह । धपहरण सोवण बहो, कुस्सित वही अभियान सोजना चढ दूसरों के भरम पर उत्थान श्रीत से मुत्तमान सक्ता प्रायमी व्यवहार दौड़ना रह-रह उठा उत्मार की सक्वार दौहना रह-रह उठा उत्मार की सक्वार प्रदेश मानव भी बही क्रकार भरता नाग्र।

–ुदिनकर

कब प्राएमा वह दिन, जब कुछ न्यनिन ही नरी, सारे सक्षार मे मन के भीतर उजियाता फंतेमा । उसकी सस्कृति बास्तव में जागेगी ? कब बहु महान ज्योति में अपनी ज्योति मिसाने के योग्य हो जाएगा । उसने जो बेतन प्रतीक बनाए है, उनके प्रति कुछ ही यनिदानी क्यों सब कुछ स्वापते हैं। क्यों नहीं सारा तोक ही सन्पद्ध हो जाता । क्या ऐसा हो जाने पर मनुष्य का अपार कस्योग समीधतम नहीं प्रा जाएगा ? दिनकर ने बहत गहरा प्रदन उठाया है। इसका मन तक केवन पड़ी उत्तर मिस सका है

भावा की निज्ञा में, मधुर स्नेह दीपक जले, छा गया पय पर नव उजेला !

विहेंसती दिशाएँ खुशी के दियों से सरसती दिशाएँ नई रिझ्मपों से कहीं भी नहीं नाम है शेय सम का— कहीं भी नहीं नाम है शेय सम का—

नई भावना से भरा आज जीवन, धरा पर सरस हास का मृग्ध मेला!

तिये हाय से भारती भव्य बीणा रही या युगो बाद फिर से प्रथीणा सुहाने स्वरों से महा सीन मुलरित सुहाने स्वनों से बिजन बीन महत

नई कामना से भरे प्राण तन-मन रहा ग्रव न पथी दगर पर झकेला!

निजरा में पुराने काद से यह भेद है। पहले नातों से मनीन का मोह सिंधक था, बसे कान से नियाल के प्रति उत्तरट जालना है बीर बंद बीचे, मुडकर देवने की बजाय, वह सारी परपरा को सेसेटकर सामे बढता हुया मिलना है

वय वस भारत, वाग्रत भारतः ।
हिरोशे का पहिने भारण मुट
दिवसा हिमार्गिः ना उच्छ भारतः !
वात्रनात स्वितिक सीला मजुत
वर्णामित भारत करव्यासः ।
वृद्धित करने वह तस
स्लाक्टर पर्वता जर भारतः
विद्याल परिता-दिवाहरा-नरा
कोमस उपानन वसन स्वतः
होता सुणा प्रस्त विद्याल ।
विद्याल कर प्रमित्त वुर्ण सिवस्तः ।
प्रिमा भारतः । वीचित भारतः ।

—संयोग्द्र

सारत बन्तुन एक दु हो और शोधिन मानून है। इस प्रकार को दिवीकरण हुआ है, उससे सारत समती समस्त प्रकृतिक हास्त्रीयों के साथ मी एक नर-रूप से प्राद्य है, है असे सारत समती समस्त प्रकृतिक हास्त्रीयों के साथ मी एक नर-रूप से प्राद्य है। स्व निवार में एक नरा 'था' है। इसी दिव में कृति कृत्या है "मानत" है जा मुद्दुक्ता, प्रतिमादक हो। यक्त-प्रवार क्षेत्र मर सकते हैं? अस्त्र हुए हस्स है महा प्रवार के निष्य हो तो फिर चित्रपारी है बचा इसने हो? कृत्या है प्रकृति कर करने हो कि उत्पार है। कि उत्पार है अस्त्र हुए हारा कि इस सुनुवार है। सिनाय स्वयं करहार सिए मुस्हार विद्य सनुवार है। विजय स्वयं करहार सिए मुस्हार विद्य सनुवार है। विजय स्वयं करहार सिए मुस्हार विद्य सनुवार है।

जब जब भारत, जावत भारत ।

भारत में मानवता का विकास हुया है। इस सता की इतिहास भी दुहराता है। इस्तंत्र बंद रेक्सा भीपारें हैं। सहावता तो भारत में तता भी थी जब बहु दासत्व को मूख-लामों में बचा रहा। बद्ध सत्व देशों से प्रमाणिक होता है कि भारत के संदेश हो महासूच जन्म तेते रहें। बहु भारतीय महाति में महित की महत्व देने का ही परिणाग रहा है, जितने सम्बद्धा को बाह्य और माकृति को पीतपरक माता है

शान्ति, प्रेम, मगम को जननी भरत-मूमि यह

परभरा में उनको हुन्छ। है जिन्होंने जनता के सुत के लिए समर्थ किया या धीर स्वद्रकता के बातायनों को खोना था। यह स्वत्रना राजनीतिक हो, या बोटिक, सब ही कवि के नित्त प्रव प्रभाग महत्त्व रहतों है, नयोकि वह उस नवते स्कृत्य प्रध्य करता है। इसीसे कवि दमें बरहीय मानता है, वयोकि उससे जनता नर हिल निर्दित है। यह प्रव में देश की राजिक के सचने प्रणाली बरहान करता है

> जन-इस तेरी जयहो । जयहो ! कयहो ! भारत स पर स्वर्ग प्रक्ष पर धीर टास्य का दमन राज्य का क्षयही ! क्षयहो ! क्षयहो ! मानव पश को कुर दनुझ को रवद्यात का बंध धात का भय हो, भय हो, भय हो ! बद्ध फान्ति का हिस भारत का सत्य ग्रहिका धेम शांति मे तय हो, सम हो, सम हो । ज्यति - स्तरि से टेग के म महित क्षेत्र का विश्व प्रेम का चय हो, चय हो, चय हो।

--नेजनस्यास्य नाक

बात जाति-वाति, देशन्य के प्रेम में जाकर समाध्य होनी है। जनता का सर्च बनता है देश-प्रेम <sup>1</sup> किंदु जनता मुसी होंमें हो <sup>1</sup> तब शिंद की पार्थिक स्वयस्या पर कवि को शेंद्र जाती है भीर वह वर्ग-मर्च्य को देलना है। में मानव भटक रहा है।" (बच्चन) किंतु उसके सामने पान बूकान है
वहराता वुकानी सामर
प्रक्षय निधि बाररपार नहीं
इसका कोई मोकार नहीं
इस पार किनारा पहुँ इसका
उस पार कहीं रकता जाकर
होड़े नद-निध्यों से हारा
हो गया रबन से जल खारा
जल भरने यहां नहीं ग्रावर
प्रकार चुन के जाता
पर कहीं तोट तभी ग्रावर
प्रकार चुन के जाता
पर कहीं तोट तभी ग्रावर

<del>-</del>देवराज दिनेश

"नभी जब कविता बन में रहती थी तब रुबि दर्शन में इवे रहने थे। फिर ये सामती सुरासुन्दरी मे फस गए। अवित की लहर के बाद शुगार की व्यक्तिवार-भरी उत्मत्तता ग्राई। फिर कवि स्वप्नो में डूब गया। परतु बन में ग्राग लग गई। तब यह बस्ती में या गया। और कवि की जीम पर जहर उतर प्राया, क्योंकि बस्ती में माग लगी हुई थी।" (तेजनारायण काक) अब "प्रेम की मदिरा को गगाजल माननेवाला, धर्म का उपहास करनेवाला,सौंदर्य में डवा हम्रा कवि, जो स्वय ही साकी ग्रीर स्वय ही पीने-वाला था।"(बच्चन) "हर कदम पर जीवन की चनौती देखने लगा । श्रविम मजिल सी बही नहीं दीखनी । केवल पनिश्चय तन में विश्वास यचा रहा । सितारों ने ग्राजा का एक भी सदेश नहीं दिया। मकृति ने पय में एक भी मगल शकून नहीं किया । धव उसे उस पार का भी भय नहीं रहा। मत्य-पथ पर वह बढ चला निभंग। वह सो किसीके हाथ का साधन-मात्र या । मानो उसके द्वारा केवल मुख्टि की कोई माग पूरी हो रही थी। आवारा की मुजामों में रजनी मिच गई भीर निरुपम रुपहरा चाद सीस पर दिक गया ह उसने बार-बार प्रथमा प्यार दिया।" (बच्चन) "ज्ञानी ने मानस-मधन करके इस सस्मृति को मुगमरीचिका माया कहा, समाधिरत साधक योगी ने इसे भोग-छाया । वे सत बोदन से भाग गए। प्रेमी ही भरण के धारो चल सका।" (सुधीन्द्र)" घूल में मितने से डर हट गया, नयोति फिर दीपक बनने नी सभावना जाग गई। ग्रगले जन्म मे दीप वनकर डगर मे जलने की कामना ने उपे नया विश्वास दे दिया।" (रामकुमार चतुर्वेदी)

यल जायें नतारे प्रवरकर

म्रो मिट्टो के पुतालो, जारते, युगन्यूग की सत्त्र स्वारति सुनो कि बमुचा के कण-कण से गूँन नवस सगीत गया ! मिट्टी का विश्वास सवग हो गीत प्रगति के गायते तुग, मुख्ती नित तूतन रचना से भू को स्वर्ग बनायते नुग, स्वर्ग वर्ष्ट को डोर एकडकर मटको मन मूनेणन से, गौरव का प्रशास के जग को स्नाभनव पय विराताको तम !

—বর্মর হার্মা 'কমলীগা'

विनास में में एमें मूबन मिना है। समया नहां जाए कि उनने उने प्रसिक्त महत्व दिया है। सपनी मूबनना को उसने प्रकृति के भीतर भी देखा है। युग-सून की ल्हा मनुष्य की दूरी है। प्रकृति का नवावन मर्देन ही उपन्यित था। पहले गारी में विश्वास नहीं था। उसे स्वात्य और जब सम्मक्त जाना था। प्रय उने विश्वाम में मुखेबा जा रहा है। बेनस-पियर ने नेनन एरिसल के वपक में प्राप्त पर यह स्वीकार किया है कि परती का तस्व कपुत्र कैशीवन ही प्रमुख है। नया कि वह में स्वीत नहीं करवा। उनने प्रकृत पीइय वा दीय बताया है और वह वस विस्तान पहला है।

मनुष्य की बनाई मारी सुन्दरना का प्रतीक 'दीप' है और उसने उसे बहुत प्रेरणा दी है। उसमें उज्लोपोह भी है

त्व भर्ता वासित है से भरित में पुत-पुत रही, भरित है को भीग के मीरमें में विता-शित रही, बृद्धि है को मन विकत्तकर स्नता में मित रही, मेरी तब मृतियों की एक ही पुकार है, एक ही बचार मेरे एक ही बचार है

—विधावनी कोति

एकदम बिटोह के स्थान पर प्रात्तांना प्रसी है नवीकि यह मिनत का सहारा ते सनगी है। भाग तो बीचन के सावस्वक है, तिनु भीन खपती न्यूनना में धमुदर होता है। उमे मुदर तो मिनत ही बनाधी है। बुदि ना श्रहतार भी उचिन नहीं है। स्थीक बहु खत में नहीं न कही हुन्दिन हो ही जानी है। इनविए तम सामार नी मन छोड़ी जीकि हम जीवन ना शाधार है।

देवने से लक्ता है कि यह पराजम है। परतु ऐसा नहीं है। यह केवल विडोह करने की प्राप्तुराना नहीं है, इसमें गमीरता है। तारतस्य है। विजन है। इसकी विद्यापता यह है कि इसमें प्रतिलव्य को सामार माना गया है। वृत्तियों की एए पुकार होना प्रकट बरना है, नारी मता का तिर्वाह वर्षने प्राथमार को योज चुवा है। वह है प्राप्ति का प्रपन्ता बहु स्टस्प, जोकि मनुष्य में चेनना के रूप में प्रकट हुमा है। यह सह प्रमुदे पर "यह मनुष्य क्रनत जीवबार को एक तक्ष्य है।"(मुपोन्द्र)"झम्बर का अधिवासी

तो उसकी पुकार मुनकर नहीं बोलना ।" (आरमीप्रसाद मिह)

"एक किरण के लिए जीवन वा जलजात विकल है।" (जितेन्द्रदुमार) किंतु "इस घरती में स्वर्ग है, मिट्टी में भमृत तस्वर वा मृत है। यह जीवन विरह का जलजात है।" (हस दुमार निवारी) "वन्मय हो प्राण तो फिर विरह-छोह कुछ नहीं रहता।" (शहतना रेण्)

न्या कवि इसी जितन में अब समाज की घोर देखता है तो वह अपने भीतर के परिवर्तन को यहा भी उतार लाना चाहता है। वह कह उठना है

तमाम नींव खुर चुकी, तमाम भीति गिर चुकी समाज जीजं - शोजं आजिरी उसीस भर रहा परम्परा विषड चुकी, स्नातिरीति सड चुकी सहा- पता समाज- हो, उदय नया विहान है जोने आदिर ने हाने प्रतिकृति से स्वाचित्र के स्वाचित्र कि स्वाचित्र के स्वचित्र के स्वाचित्र के स्वचित्र के स्वचित्र के स्वच्या स्वच्या के स्वच्या स्व

—वनस्याम् भरपानाः

प्रश्ति का पान बहु नया कर देत रहा है। सब कुदु बदल देना चाहना है। प्राने सबस पौरप का उने इदना विस्ताम हो गया है। वह बानना है कि "रान को मूरक नहीं जनता, परचरो पर कून नहीं विन्त सबते। रेन से ध्यान नहीं बुभनी। मुद्दें वानहीं सजते। कितु वह बारो बायाए कोडकर प्राण का समीन मा रहा है।" (स्वासमुद्धर प्रधान) बहु "शाया के उद्धम में भारम हुमा है भीर प्रायों के समन तक जने जाना है। वह पणवा माथा प्रीमानों के प्राने मुनाने नो वैधार नहीं, वह तो स्तेह के लिए निर कर सकता हो। वह हो। स्तेह के किए निर कर सकता हो। वह तो स्तेह के लिए निर कर सकता हो। वह तो स्तेह के बिर्माण नहीं होना।" (बीरेट निष्) वह "नहीं चाहना कि सरय के समा के लिए टूट बाए। वरार दुनिया कुप के साथ के लिए टूट बाए। वरार दुनिया कुप कर की उठ पके ऐसा सोटी का परसर उसे बनाना है। भ्रमनी महिल कर

बीच में बाब क्षोदा-सा है। मदिर भी धदा का स्थान है, दवना आदोग है पह बसे का प्रतिनिधि कि जीवन में समा-सा गया। उसमें दीप जरा रहा है। दीप हे मनुष्य की धर्म-ज्वाला।

दम प्रकार मतुष्य ने वो कुछ विकास किया है वह साम में चमल्लन करनेवाला मही है, हतना पुराना है कि महब हो गया है। सरव ही है मनुष्य का अपनी चेतना में विद्याम भी। तभी बढ़ प्रपनी चेनता के भारतीक में चहना है

जल रहे हो बुध युगो से रात तो फिर भी घोरी जल बुढ़ी जन शामनाएँ जलन की पाँत घनेरी प्रलय भन्नधावात फिर भी जमीति तो प्रवाश सुम्मे जनत में सग-सण जिलाट पर ग्रहल विश्वास मन में जल उटो तुम साधना में सेहो उटे मसार भानित टक सगो रह जाय, वुसड़े जात हरय भी जाब विगतित।

--केवारा रामो

कुम्हारी ज्योति कभी नहीं बुग्री । उसने क्षनेक विपत्तिभा सहन नी है, परतु किर भी ज्योति तो अदिशप्ट है। इसका कारण है मन का प्रटल विश्वान । यदि तुम बायता मे नक्कर भगने को उद्धाधित कर दी, ग्रारे मनार में प्रातीक ह्या बाए । बी दु सी है वै भी नक्क उँछ।

यह है मनुष्य का दीप। दीप चेनना का प्रतिनिधि है।

चेत्रता मनुष्यविभित्त समार की सुक्ष्म आत्मा है।

उस मूक्त झारमा को मनुष्य का विश्वाम कहना उचित है।

बदि हम बह स्वीकार नहीं करते तो यह समक्ष में ही गरी बांवा कि बीए साहित्य में इतना प्रमुख कैंग्र हो ठठा। पहले बानों में बीप की इनकी महत्त्रा क्यों नहीं मिलतों ! दीप क्योंकि एन प्रनीप है, विगमें मनुष्य की बनाई मुदरवा कैमीग़क सुंदरता के तादात्य में रहनी है, दमीमिए दीप दम युग में इतना प्रिक प्रमान अनने योग्य हो गया है।

विज्ञान वहना है कि अनु से वर्द परमायुहोंगे है। वे अननोबन्या सहत है। सहर वे रूप भे वे स्थित हैं। सबिन प्रकास है। साभी धन भें प्रकाश है। इस प्रकास की ही सिम्ब्यक्ति हमें वर्द प्रकार से साहित्य से सिनतों है।

इन हम देनदिन भीवन मे विभिन्त कार्यन्यों में देशना ही अब अबिस समभते हैं।

मप्पा हो गई है। दीप जल पुके है। मनुष्य प्रयक्षार की बुबौनी दे बुका है। क्दि

या संतत के गीत मुह्मित ! बोगूल दिवस बात के ! प्राव दारद की सीभ, प्रमा के इस जगमग स्पीहार में शेषावली जलाती किस्ती नभ के तिमिसलार में चली होड करने सु लेकिन भूल न—यह सतार है, पर जीवन की बात दीय से रक्ता पांच संभात के ! सम्मृह इच्छा यूना रही थीड़े संध्य-स्वर रोकते, धर्म-कन से भी बाय-याँ को देवकर टोकते, इल-क्य की ये चार दिशाएँ तम से धूंपती बीजतों, वतुर्मुखी झानीर जना के स्नेह सत्य का डाल के !

दीप-दीप भावों के किलियत थ्रीर खिखाएं ग्रीति की गति-मति के पमपर बतता है ज्योति लिए नवरीति की, यह प्रकाश का पर्व श्रमर हो तम के दुर्गम देश मे, समके मिट्टी की उत्रियानी नम का बुहरा टॉल के।

—राजे द्रकार सिंह मह कविता बहुत ही श्रेष्ठ रचना है जिसे बहुत ही शब्दों तरहगाया जा सकता है। प्रकार का पर्य मनाने की थोयणा गूज उठनो है और किर शांती है ब्रद्भुत कल्पना

यह सध्या एक शमा-सौ है दिन के पर जसते जाते हैं---

—शिवश्वादर मिह

ग्नीर मनुष्य प्रेम को प्रव भी सर्वोच्च श्रासन देकर कहता है: किसी भवत ने देव की फ्रास्ती हित बढ़े भाव से दीच मक का जलाया दूर हट, यह नहीं क्रवंता प्रेम की कूद तो मे श्रातम ने यती की बुतायर प्रणय के नगर मे सकल प्रेमियो को जलन ही ग्रयर ग्रीर खुबन ग्रेगारा। — सिक्खारर निश

जदात्ततम हो वाना भाव भी भवूष्य नी चेनना ना एक सहय है। भौर इसे वह

प्रकृति से निरन्तर सीम रहा है। तभी कवि-हृत्य क्ट्ना है प्रवर के प्रांगन मे जगते रहे सितारे रात - भर चुप-चुप द्वागत मे चया ने निशा से निश्चि - भर बात की,

ग्रांखों में ब्राहुल शका यो ग्रानेवाले प्रात की, रहे क्षेत्रते ग्रांख - मिचीनी पन कनरारे रात - भरा

मिट्टी में मिल गई जवानी भोले-भाले फूलो की ग्रांकों में रह गई शिशकती तीय कहानो यूलकी प्रस्तुन करता है कि उसे देखते हो बन पडता है। प्राप ही निव ने सब नवी कल्पनाए की हैं प्रात के पट पर किसी ने सुनिकत्त से बादतो के, साहिमात्र के प्री'सिनिज के

आक अता वाय व जैसे नार्यमाता में कितोने दिये तरका नये परं, मोर सूरक ने कितो ऊंचे शिवर पर चड कि प्रपनी घारमता उजती मुगहती पूप को एय से उतारा तथा किरनो को नर्सनी, घीर चंपा की रस्ती के सूत्त परे हैं नयम जैसे नयी दुर्लाहन हरित श्रवन मी' हसो सतवार को करती सतवडें ठीक, मुख्य पाटन ने लगाई है गिठाई को दुनान

धो' हुरो सबबार को करती समबंट ठीक, मुचड पाटन ने लगाई है गिठाई की दुस्पन कि मूसे 'श्रांनक-प्रींसरों' के तरह दूरे अगर सायदा से सीन भावतन की तरह पुरत्रमुखी ने स्पार्य देते गुपत बाहों की दसारा स्रोत के बन पहिल कर परियान सतरगी-सन्दे एक सीन सीन के जनानों की तरह श्रीजी सतामी दे रहे हैं प्रांत की।

—क∙हैयानाम सन्दर्शक

—वन्ध्यानान वस्त इसमे दैनिक जीवन से देशे हुए चित्र हैं।

स्रवत से धव कि ने "वेषाने फाट दिए हैं जिनने उहती स्मृतिया समृतीत थी। योजन नवोकि धाने देखता है इसीतिए यह हमसाय होतर रोजा नही चाहता। उसे प्रपत्न अदिव्य दिवा है, वह प्रतीन हो नहीं, चीहता। यह प्रपत्ने प्रय कर वाषामी से ही दिवय-गोत गुना चाहता है।" (श्रीराम प्राप्त प्रेम) "यह प्रपा स्वर्ग मृत्युक्तव प्रपा गई है। ग्रांद्यों के विभिन्न को मानवता ने पार वर निवा है।" (शिरिवाहुमार भाषुर) "वये स्वरों से वस्तिया विजित्तो क्या पही हैं। ये सह में सेर-नेरकर नहा यही है।"(दिनवर) तभी एवदम नई भूमि को हमारे सामने प्यार देश है नवा कवि

धरती मे गड्दा कर चिडियां घूस महातीं, चोर दुपरो के उजाड को जब - जब पवन संदेशा लावे दीये की ली - सी बल खावे भाला दे - दे पास बुलावे उभक देख में जानूं मेदे आएरानकुमार ! देखूं जगल में पटविजना

रेसूं जाल म पटावजना गगन बीच तारो का खिलना मै जानूं यह केवल छलना, कौन कहें सचमुच धार्वेगे मेरे राजकमार !

×

धोज रहो तन-मन की बाती दीये-सी हो रात तिराती जीती तो फिर रात जनाती कह भर देता कोई---मेरे झाते राजसुमार!

—नरेन्द्र शर्भा

सामनुमार उसकी बहरना वा सुदर बाग्य है। इसीलिए कवि का हृदय उसका दरण करने को स्प्री की कोमतता का अनुभव कर उठता है भीर बहुता है कि आयुसमारत हो जाती है। सबस स्मिट इस दीप की भागि हो यतनों सपने की चुताती रहती है। तोवमीत अंबी यह किवाज उमय का परिचय देती है। इस उठता है क्या यह गताधन वा विच नहीं होती? मैं समभता हूं नहीं। प्राचीन काल से हो मनुष्य अपने दासीनक चित्र की सहत बनाने को लेकिक कार्यों में प्रवच्या रहा है। उतने पशु-सिक्यों तक को बात करती दिखाया है। उसे पशु-सिक्यों तक को बात करती दिखाया है। उसे उसने पशु-सिक्यों तक को बात करती दिखाया है। उसे उसने पशु-सिक्यों तक को बात करती दिखाया है। उसे उसने पशु-सिक्यों तक को बात करती दिखाया है। उसने पशु-सिक्यों तक को बात करती दिखाया है। उसने पशु-सिक्यों तक को बात करती दिखाया है। उसने पशु-सिक्यों तक को बात की स्वाच्या के पत्र भी प्रयास में विचर्ट-निवेदन के रूप में अन्य हुए है। यह तो एक बामना है कि व्यक्ति का चातरिक जीवन भी धपनी साराना पाता पत्रों। सिंव इसता है

दोप जल रहागल-गतकर केतेराही विश्वात सहारा कत दुकराया जाता या पायाय साज भगवान हो गया। बुजं धास की मदा उर्हियां गोले के से पाय सोचते दह जाने की । पंख घौर डादोवाले

पंत्र घौर डादोवाले उन दोरो की वेदिला मूर्तियाँ यातो-प्रदेशान केतों मे

खडी हुई हैं देती पहरा,

राजमहिरों के सम्भो पर बने हुए

वे तेज दांत के उउते ड्रोगन रम प्रोदक्षर होंक रहे हैं

बुद्धिया पागल जैसी मध हवाएँ घीस रही हैं रक्त सनी वे

इन-सताधूरों के अपर धए जला इतिहास खडा है

ज्वालामों के जिसके केश दिशा कर्णों पर जली धास ले लहर रहे हैं

भवा यात व वहर रह ह सदियों के कोडो ने खींची रक्त नहियाँ महाकाश के नील जांस पर

> महामनुज बह रनत सना बेहोरा माज फिर जाग चटा है।

> > —नरेश मेहना

हाय धनी-गरीब ऐसे भेद रख डाले। अहाँ नेह अभेद ऐसी एक बेला है। जानता हूँ रात बीते प्रात होना है प्रात होते तेज से प्रस्तित्व खोना है।

—भनानीप्रपाद तिवारी

हम एक और वहे सत्य के पास पहुचने के लिए जीवित हैं। वहा हमारी मान्य-ताए भी शुरू पठ जामेंगी, किंतु तब तक का उनके द्वारा दिया साथ सपनी सार्थकता पूरी कर चुकेगा। वह उसको सोकहित में सर्वत्र चाहुता है.

> द्वार-द्वार पर समन्द यह दिया जले मुक्त द्वार हो न बन्द यह दिया जले

सस्य बन मसत् प्रवाह में, बन भकारा तिमिर राह में झमुक्यार-मृत्युवाह में, नव-नव रस रूप एप एपई डाम्ब के

नव-नव रस रूप गर्थ स्पन्न सम्ब स् प्राण-प्राण बीच यह श्रमर प्रभा जले!

सम की दीवार तोडकर, सम दुनिवार तोडकर मुक्त क्योति को उठे सहर गृह यन गिरि सिधु घार मे गयन तले देशकात से मुखब्द यह दिया जले !

**—रा**भूनाथ सिंह

यह दीपक प्राकाश भौर सकत लोक में प्रज्वलित होकर रहे ! इसलिए कवि-हृदय इननों भी संपर्ध करता है कि प्रकाश के लिए भील भी नहीं चाहना ! स्वयं पर ही जो विस्तास है

> मुफेराह में पोजनी मत रिखाना में बबना ही बीपक जनाती चलूंगी। कियर मेरी मतिल कियर है किनारा नहीं मुमकी तेना दिखीते सहारा तबप कर मेरे बिल ने मुक्की पुकारा बताया है चुपके से मुक्की दुवारा

विद्यम सक्त भारे-प्राते वे गोरी, उजली, सात---

-- सरेश मेहता

एक के बाद एक भाषकी एक नयापन मिसता चला जाता है। यह सच है कि प्रति से चमत्कार भी अन्य ले सकता है, वित्त वह तब होता है, जब कवि के पास कोई उदात सदेश नहीं होता । यहां वह है भीर पूर्ण जागरित है । उसे मानवता से प्यार है । प्रशति उसके लिए मानव की चेतना को परिष्कृत व रनेवाली है। वह सकल समा को एक मानकर कहता है

> सुनी पृथिबीवासियो। माता हमारी, महापश्ची धनि है, धन-धान्य है, रपायनी संघवंशीला है यह लड़ी पी लिथ भी' भारता से रूप पाने के लिये

रमसिये में वर्षे जन की शहित है हैं चरण, मातक और भवाएं 'सास्यवादी' काश मे भीर जन का शबु वह

कौटाणुखों के यम गिराता है भगुर है, वृत्र है, धुत इसके बसन हैं, मृत्यू इसका भाग्य ही है हम विधाता भाग्य के इसके पृथ्वीकृत हैं. श्रीमक हैं भीर यह जन-राज है।

-नरेश मेहन

सत् ग्रौर शमत् के सवर्ष के रूप में कवि ने लोक को दो वर्गों में बाटा है। परत वर्षी के विभाजन से भी बढकर है यहा उसका पृथ्वी के निवासियों को एक करने का प्रयत्न, जिसमे वह मधूमन्त जीवन की कल्पना करता है।

भव 'बल्पना होती जा रही है और जिंदभी पास भाती जा रही है। डयमगाती वा रही है वह। केवल प्रणय नहीं, साथ में समर्प भी चाहिए क्योंकि तुफान चादनी से नहीं पंपते। पहले कभी उसका स्थाप से संबंध था, किंतु तब वह मद या भीर वह बात किर उससे दिरवास जागता है और उम प्रकार सामाजिक कुरीति भी उसी चेवना का इप माकर प्रहण करती है। दोप हमारे सामने फिर धाना है, क्योंकि वह प्रवृति की प्रसाद ज्योति का प्रतीक जो है। उसका आदर्श वनाकर मानव से भपने कप्टो की मेल तेने का एक साधन बना लिया है

> यं न बुनूंगो, प्रमर दीय की क्वाला हूं, बाला हूं, बल-भरिन्सी क्ष्ण हो ताकर पिन्न हुई माला हूं, प्रतर पार में पड़ी तरी हूँ हूट यई पतवार, में जावत्भारत की विषया,कुप्लिज मंत्रिकी पार । बिता भूमि वर्ष कुपुनित लोतका,लज्जित सीरम भार ब्या।

किसे मुनाऊँ करण कथा?

—बानदीबल्सभ शास्त्री

यह बोएक जब बुक्त जाता है तब वह कबि को कोई प्ररणा नहीं देता। बेबत जड मीनिक में उसे सालवा नहीं होनो। सम्यवा यदि निष्प्राण है तो वह सस्कृति का निर्माण करने में प्रसम्प है। यन वह स्वाज्य है। प्रकृति का वही रूप मानव को एसद है जो उसे बाले का मार्ग दिखा तके, सब प्रयम्पायों में उसके हृदय को एक राहिन दे सके

यह बुभा दीयक, धिनौना मृतिहा हा पात्र । दाय उर मे बहु गई है हमेह की वो बार बूँदे मात्र । राजि-भर जलकर किया पय का खेरा दूर पूछ बनकर इसीपर सब सा गया बहु कुट विश्वकों के टोकरेन्सा हो गया यह दीन सतम-मम-सा करण काले बादलों में सीन युक्त चुनो है प्राण-वातों बेतना इसमे नहीं सणु मात्र !

-नेवनगराम अक

िन्तु नग्र इसना जीवन व्यथं चला गया ? नहीं । निव यह भी कह बाता है कि इसके कार्य नो स्नेह दो, इसने जडना को नहीं, क्योंकि प्रय यह काम नहीं ग्रा सनता ! यह दोप हमारी बेदना से जल रहा है। निव नहना है

हमारी व्ययाकी जलन से दियाकी शिक्षाजल रही है।

४ हमारी चिता को लगट से समा की निता बल रही है। विषल दल रहे नमें सरमा हबस के के लिए तो कुछ नये पग उठाने ही होने ।" (महेन्द्र जोसी)

"चारो घोर खडित मान्यताए है। रुडिया चीन की दीवार की तरह फैली है। विज्ञान के प्रमुक्त्यान, नये प्राविष्कार, गर्थोग्यत्त। जगत् की छन पामीर को चुनौती दे रहे हैं।" (महेन्द्र भटनागर)

इतिल नया कवि रात के टलान में दूसरा ही सौदर्य देखना है, क्योंकि इस समय वह द स से ध्याय पर उत्तर झाया है

> इस मुबह के चाँद की मृदु वांदनी मे चल दिये टट्ट् लिए ट्टे हुए इसके (रघो के रूप दिगड़े) सब पुराने कर्मयोगी

सिर घुटाकर झाज उनमे हैं सुशोभित। वे कुचलकर भी पुराने देवगृह को जाएँगे वस्दन बजाने

वयोंकि सुंदर पर्व यह वरदान है भगवान का।

पान ऊँची विमनियां भी
पूफ उपलेगी घरार, सोहवान का
पान मन्दिर को फिड़ों मे
ऊदबती की महक
चरदत मुगिरत व्याप्त होगी
प्रीर पाटल गथ से प्रांभिसकत जल की
प्रव वहां बरसात होगी।
वार पांसु के दर्ब की भावाड तेरी
स्वातवाचन के साची मे ?

—इरिव्याम

धाज ना विव "एक बार जो रहा है, एक बार मर रहा है, वह मपनी जान ना सौदा एक बार कर रहा है। इसितए धपनी जनानी के विराग का एक बार तूकान में घर रहा है। कन नानी रात वीरकर सकेरा साएगा। निनारों के देत से उनका सूरज आएगा। वह सोने नी ज्वानिया साथ में लाएगा, वह धपने साथ फूलों की नहानिया। साएगा। इसीतिए वह इस रात की सामोदी धौर सुनगान में, मिनारों के मना मानमान में एक बार मीतों की रागिनी मर रहा है।"(गोपालगिंद नेपाली) "प्रस्तवय पाज भी सहार मन रिचर होना है, धम मिटजाना है, मावा हट जानी है। धरवरस के तले कि मनो आन तो भूषी भूगार - भावता दोवाली त्योहार मनातो।

—विवासी कोविल

प्रधकार को मिटाकर घर-घर आनद होता, तब ही ग्रागार की भूषी भावता दीवाली का स्वीहार मनावी । मन्यया प्रानर मिले भी कंडे <sup>7</sup> दूसरे पत्त से जब परमात्म बेला का स्पत्त होता है तब मनुष्य सर्वात्म के प्रालोक पर न्योदावर होना भी अवस्कर सममजा है

> तुन दोषक हो, में लघु परंग, है देव ! तुम्हारे जतने मे है कर्मयोग की मृदु उमय । तुम जतते मितती उजियाती, में जतता होती मेंदियाती, पामत प्राणी में कहताया, प्रभ् ! जता तुम्हारे सम्सग !

> > —तारा पाएड

कितनी करणा से मनुष्य कहता है कि उसे अपनी सत्ता, धयनी वासना और सह की इतनी रमीकृति नहीं चाहिए, जितनी इपकी कि उसकी बेबना पहचान सी बाए । यह भ्रमनी बेबना को बहुत प्यार करता है

देव मुक्तको भूलकर इन श्रांतुस्रो को जान पाते।

—तास पाएंडे

करणा अपने थायन में न जाने कितने सुद्ध-तक्का लिए आगी है। सुद्ध-दु स के दोनों पक्ष उसमें मतनिहित होने हैं। नह धानद हो, या बेदना, दोनों में ही एक-सासान्तिस्य प्राप्त करने का इच्छुक नमा रहता है। जलना और चुक्का एक म्रान्य भी देते हैं। प्रपते 'प्रयम मिनन' ने कवि समने स्नेह की अभिव्यक्ति के लिए भी दक्षी समर्थन की शब्दावनी का प्रयोग करते कहता है

दिये को लजा कर बुलाया गया है

शतभ मृस्करा कर मुलाया गया है---

—राम्झ्यार व्यवेश प्रेमी वा इक्ष प्रकार बुलाना बीर फिर दोप को बुक्त देना—दोप यानी कुतूहल बा रूप <sup>1</sup>

प्रेम को प्रतोक्षा भी इसी प्रकार ग्राज ग्रामिक्यक्ति पाती है, ग्रौर वह इतनी गृढ है कि उसे हम दर्जन की बहुराइया घपने मे समेटे देखते हैं ।

'जुरन' में बच्चन ने इन दोनों आदो को मिला दिया है। सनत जिल्लार से वह प्रकारा का एक बचा उसके लिए प्रस्तित्व ना प्रतीक बन जाता है। कृति कहता है संवेरी रात में दोपक जनाए कीन संत है? नया विषय है, तभी उनके विषय की कविना भी नयी है। वह एक दौप है। दौप में प्रातोक है। वह प्रात्मेक है, दिया नहीं। प्रातोक सर्वत्र पूज्य है, प्रतः मानव पूज्य है। एक कवि कहना है कि वह प्रातोक कभी बुभता नहीं

बुको न दीप की शिला ध्रनत्त में समा गई। ध्रमट ज्योति प्राण-प्राण बीच जगमगा गई।

धकाय ज्योति - स्तम्भ वह पुरस बना कि जब प्रष्टति बनी विकास चेतना न सत्य बीज मृतिका द्विपा सकी

उगी, बडी, कसी श्रहप कल्पना, न बँच सका श्रसन् प्रमाद पाश मे प्रकाश तन

विमुक्त सन् प्रभा दिगत बीच मुक्करा गई! सहा व कामस्य कथि बना स्रमर

कि कोटि-कोटि कष्ठ में हुया मुखर मिटा न काल का प्रवाह बन घिरा बसीय सन्तरिक्ष में फ़नल स्वर न मन्त्रस्वर समुत्रसंभाल मुक्सवी परासकी,

न नगरपर अभून समात नृष्मया परा सका, त्रिकाल रागिनो प्रनन्त सृष्टि बोच द्या गई। ×

अिनेन पान तन बना,न छूसका मरण घरण विराट चेतना ग्रहप बन स्वरूप पा गई बुभीन दीपकी निष्या, ग्रसीम मेसमा गई। ग्रीर ग्राता ग्रदने प्रिय को पहचान गई है । उसके लिए सारा जीवन एक पारा के समान बहने को तत्पर हो गया है । बह घारा ऐसी है जिसका पत्र कोई नही रोक सकता '

स्राप्ता का बीप जला है पाकर स्रव मृद्य इसारा छूने चरण हृदय बन, में बहतो हूं बन धारा । उत्पात हृदय ने वयन सब तोड बिये हैं सारे, सब छिए न सकोंगे तुम भी 'मेरो प्रांसी के तारे ।' यह सूद्र चुको है कुटिया, वह सूद्र गई छुतवारो, वो जहां बहुत-सो कलियां मुम्पर बारी-चित्तहारी। यो जहां कोहिता पातो मुद्र पार प्यारी-चित्तहारी। यो जहां कोहिता पातो मुद्र पार प्यारी-चाल कहां थे निकट कुटो के गिरिवाला धुकि सुकुमारो। यो कत्तक, छुत-छुत, स्विरह्म, चत्तनी बन खाती घारा, पाती यो, इठलाती यो, जातो यो चून किनारा। मिल मिलन सलित स्वरी का जिसमे हो आता निर्मल, पानहीं कतिरत छुत से वह इत्य-पवल सुधि कवत। विर्मल, पानहीं कतिरत छुत से वह इत्य-पवल सुधि कवत।

X ऊँचे पर्वत भी जिसका पथ शोक नहीं पाते थे

उस पानी की धारा से कट रज-कण धन जाते थे। —-हरिक्रण पेनी

परतु बिनाया बहुन ही बिनाराल सत्य है। वह भी घषकार ही है। उसके सामने किसीकी मही चनती। प्रकृति के कार्य-व्यापार से मनुष्य नी पीडा का मूला कुछ भी नहीं है। कम भीर पुनर्जन्म के बिचार इसी प्राकृतिक निर्ममता के लिए व्यास्थास्वरूप थे। बाज का कवि मानना नहीं देने पूर्णन। यत मानव की सत्ता की संख्ता उसे बहुन प्रथिक कचोटने समती है। कवि कहना है

> प्ररो पाली । न सम के राज में आंदू पहुँचता है प्ररो पाली, ध्यमें ही भीति का पश्ची हुहुकता है क्सिनेके प्यार का बोपक तसा, तसकर कुम्का जा में जता दे देह का टीपक क्सिके प्यार के पा में युगों से टूब्ते जसते गागन में चांड के टीपक । श्रतस प्रवसाद के टीपक ।

> > —खर्नास्सरय मित्र

एक हो साददना है। यह जीवन प्यार के हिन दोप-सा जले, दस यही काफी है। पाकाय का चढ़मां भी न जाने कितनी बार जलकर कुफ चुका है। इससे मी प्रथिक है। यह है वह मानव की मतीन्द्रिय चेतना जो माटी में से उजागर हो उठी है। कबि उन्नका वर्णन करता है

इस मिट्टी के बीप, चेतना की बतो को, स्मेह मिला जब कहा विरोधी तस्बो ने, बस घीर चाहिए एक जसन खर्ड तुमने चपटो की वीतती से मेरा स्मेह-दीप जब धाला । सहसा स्योति जनी धन्तर में प्रत्यकार बन गया उजाला ।

प्रोधी बाई, पानी बरसा, राख धून वेंन-वेंगकर हारी पर न बुधी उत्टी भडकी ही,मूल शक्ति-सी यह चिनवारी!

—शिवमयलमिंह सुधव

यह दीप केवल स्वेह के बत पर जीवित रहना है। किंतु उने विरोधों तस्त्रों ने ज़तन भी दे दी है। यह मूल शक्ति की चिनगारी है। यह व्यक्ति में भी है, समाज में भी। यह युग में है। एग हमारा एक नया पात्र है।

युग भीर दीप दोनों परस्पर एक-दूसरे के लिए लालायित से हमे नसी कविता में दिखाई देते हैं। युग विश्व चेतना का प्रमूर्ण व्यक्तिष्ठत चेनन है, दीप उद्योक्ती सुदरता की प्रमित्यक्ति है। मनुष्य का निर्माण ही इस समस्त के मूल में है। पहले का मनुष्य प्रपत्ती निर्माण-शिकार राग्ने नहीं करता था। प्राप्त का मनुष्य करता है। प्राप्त उत्ते प्रपत्ती सामम्यं के प्रति एक विद्यास-साही चला है। पुराना व्यक्ति प्रत्य को क्षेत्रकर कर खुका था, नद्या मनुष्य विनाशन्याल सभीण प्रात्ता जानकर इस पृथ्वी यह हुसा है। सामस्यों से पूर्व ही उद्यक्ता मन माने यह गया है। वह महीनाया को बदी कर देना चाहता है, क्योंक उत्ते तम रहा है कि बहु महिल के बहुत प्रस्त मा चुका है।

जो प्रपना है, जो प्रपने थम और स्नेह ना प्राधार लेकर पतता है। उसे हम बुभने से यवा सकते हैं। भौर वह हमारा सबल वन सकता है।

दिसाय के बिना कुछ नहीं हो सन्ता । १२वर के दिल में जावति का गाठ पढ़ा वा सनता है। किंतु जब विद्याश ठावाटील होता है, वह पहली हो मजिस में डिप जाता है। दूर जाने की मानस्वन्ता नहीं है। जो है सो यही है। इसना हो सन्त सभी तक कोई नहीं जान सका है। पायों में ममता ना बच्यन और सिर पर वियोग का भार, दोनो इसर ही सम धनते हैं

यहा कवि ग्रापनी व्यथ्टि भीर समध्य दोनों का मिलान करके देखता है भीर वह भ्रपने इन्द्र से निकलने का प्रयत्न करता है। वह कहता है

> लेकर प्रक्षय विश्वास धरे! उस दिन जब पत्यर के दिल मे मैंने जागृति का पाठ पड़ा सोनेवाली की महफिल मे

भेदन करना है क्रायकार !'
तब पागल - सामे बील उठा।
कब सीचा था, दिग जाऊँगा
में बस पहलो ही मजिल से ?
उस पार ! ब्रारे उस पार कहां
है अस्तरों न इस पार प्रिये,
विकास का बायन
विकास का सामा का सामा

—भगवतीचरण वर्षा

'त्रिये' ना मुत्र भी एक विद्रोह वनकर ही चाहित्य में प्राया या। इस देश में पति भी पत्नी का मुद्द दिन में नहीं देश पाता था। उपयोगितायादियों और विद्युदतायादियों ने हंगी के प्रति दुष्ट हर्गमन बाथ दिए में। वह समय चला गया। नया कि बौर धाने वा गया। वह कहता है—"वहा उस पार उद्योग मीर साकाश दृष्टि में एकाकार-से नयते हैं, उज्ज्वनता का विद्यु प्रशिवा के पखीं जो सींख सर्वारक के दयान किन्नों में क्षिणश या रहा है। प्राने गीतों में साकाश बाध तो। भूगोल बाम को। गीत का लद्य, जीति का मिलन है। दमलिए र्यंब से भी किंव दिख्य है।" (पोट्टार श्री रामाववार महस्त)

कवि ने प्रपना दाधिन्य सम्भ निया ग्रीर वह सकुक्ति प्रेष से व्यासक प्रेम दर सा गया। इमरा यह प्रयं नहीं कि 'प्रिया' के प्रति निस्तानोई पाप है या कोई प्रपान-जनक बात है। क्ति केवन बामना की कृष्णि मा गरीर बिरह की सकुक्ति केवेंद्र श्रेय- भोग-लिप्सा प्राज भी लहरा रही उद्दाम बह रही बसहाय नर की भावना निष्काम, भीटम हो ग्रयवा यधिटिंठर, या कि हों भगवान बुद्ध हो कि अशोक, गांधी हो कि ईसु महान, सिर भुका सबकी, सभीको थेडँठ निज से मान, मात्र - वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान, दम्ध कर परको, स्वयं भी भीगता दल-दाह जा रहा मानव चला ग्रव भी पुरानी राह । ग्रपहरण झोवण वही, कृत्सित वही ग्रभियान खोजना चढ दसरों के भस्म पर उत्यान श्रीत से सुलभ्यान सकना ग्रापसी व्यवहार दौडना रह-रह उठा उन्माद की तलवार दोह से ग्रब भी वही शतुराग प्राण में धव भी वही फकार भरता नाग।

-- दिनकर

कब ग्राएगा वह दिन, जब कुछ व्यक्ति ही नहीं, सारे ससार में मन के भीतर उजियाला फैलेगा। उसकी सस्कृति बास्तव में जागेगी ? कब वह महान ज्योति में अपनी ज्योति मिलाने के योग्य हो जाएगा । उसने जो चेतन प्रनीक बनाए है. उनके प्रति कछ ही बिलदानी क्यो सब कुछ त्यागते हैं। क्यो नहीं सारा स्त्रोक ही सन्तद्ध हो जाता। क्या ऐसा हो जाने पर मनुष्य का अपार कल्याण समीपतम नहीं श्रा जाएगा ? दिनकर ने बहुत गहरा प्रश्न उठाया है। इसका मन तक केवल यही उत्तर मिल सका है

धमा की निशा में, मधुर स्नेह दीपक जले, छा गया पय पर नव उजेला !

विहेंसती दिशाएँ खुशी के दियों से सरसतौ दिशाएँ नई रहिमयो से क्हों भी नहीं नाम है शेव सम का— कहीं भी नहीं नाम है रोय समका-

नई भावना से भरा बाज जीवन, धरा पर सरस हास का माध मेला ! लिये हाय मे भारती भव्य बीणा रही गा युगो बाद फिर से प्रयोगा सुहाने स्वरों से महा मीन सुखरित मुहाने स्वनों से विजन बीत भहत

नई कामना से भरे प्राण तन-मन रहा सब न पथी दगर पर शकेला!

प्राकाश हम उठा। दिशाए मुस्करा दी। कथी, कृमुमकोपल दल उदान में साकार साम ह्या पद्मा। नदी की जवानी जलन बुम्ता रही है, गगन बरस रहा है। नर के लिए यह मत्र सृष्टि जीवन है। सभी से उमे प्राण का पन मिल रहा है। फूलो में ही नर मुस्कराना सीख-कर हार को विजय में बदस रहा है।" (उदयगकर मह)

मनुष्य की मुन्दरता मनुष्य के लिए सबसे अधिक श्राकपंक है। विस्मय श्रीर

ग्रदाक् करनेवाला बोधन मनुष्य के व्यवहार मे सबमे ग्रधिक दिखाई देना है।

रिनकर ने इसे भी अपनी इत्तो प्रीव्ध कविता में दिखाया है। बाद में 'कॉलिंग विजय' में हमें चैतना का प्रसार मिलना है। जब मन की बाज खुल जानी है, तब चेतना अपनी पांचे खोत देती है

वुल गई है सुन्न मन की श्रांख खुल गई है वेतना की पांख आग को प्रत तिला पर आज पहलो बार आगकर करणा उठी है कर मुस्ल भनकार। श्री धुष्णों में गल रहे हैं प्राप्त विकास रहा मन में कमन प्राप्तान। पिर गया हत्युक्तिना यककर पृथ्य दुर्जेय प्राप्त ने निकली प्रनामय गारि एक प्रमेष कर्ष - नारी त्रवर स्रक्षों महीप; नरपराज्ञित, नारि सकारी हिनायका टीप प्रथमों की मुन मुद्दुल भनकार पिर गई बार से स्थय तकवार प्रचा का जर हो गया हो इक वा उठी कोई हुद्य में हुक। उठी कोई हुद्य में हुक।

विषय का दुवेंग ग्रह मानवी ज्योति से दव जाता है और प्रायं-मारीस्वर हो। जाता है। यह व्यक्ति-पूर्णेत्व कर रूप, हृदय में जियके ग्रस्थान कमल खिता है। ऐसी कविनाए सचमुच बहुत कम सिसी जाती है। विवि फिर श्रभय देता है

> शत्रु हो कीई नहीं, हो श्रास्मवत् ससार पुत्र-सा पत्तु-पिसमी को भी सक् कर प्यार। मिट नहीं जाए क्षितिक सप्प-िच्छ पुनीत राह मे भी से चलूं प्या-पग सजग-सभीत। हो नहीं मुक्ति किसी पर रोध अमें का मूंत्रे जयत से घोष!

ऐसा है, जिसकी प्यास नहीं बुक्ती, काया समाध्य हो जाती है। क्या यह ध्यक्ति ही है, यर मनुष्य !

यह तो मनुष्य है। ब्यवस्थाए इसनी नृष्या को नहीं योह सकती। यह समाज में रहना है। मह को इने काटना पहता है सोक के कल्पाण के लिए। यह कल्पाण है उसके मह का परिपाजित और उदातारूप। विव कहना है

मीत का शेषक संतो वो शेषा जागृति के क्यों से ! उर-जतद-पर मिता किर शिमती के प्रश्तों से ! पूर्वों के प्रवसाद में प्राह्माद -जत - उत्पत्न विजा शो बहुत दिन विजुड़े रहें जो लिल बहिरन्तर मिता हो ! करण-कियों को करो बरसात किर मणुराधरों से ! करण-सन्दिती किर सोजकर उन्मुक्त विहरे ! कर प्रस्त मणु धुद का किर साणुवक मनुभूति मिहरे ! किर करें नहीं कुहार चेतना के निसंधें से !

—सोन्ट

प्रतिनिधि है, वह समस्टि की चेतना का प्रतीक है। इसके साथ ही प्रकृति के बाह्य रूप भी इसी 'पात्र' के प्रतबहिर के साथ ही उपस्थित हुए हैं। अंत दुरुहता उन्हें ही सवाती है, जो इमे पुराने मानदण्डों को बदलें बिना ही बिठा लेना चाहते हैं। में प्राच्यापक वर्ग बी बात तो कह ही बयो, जो कि कोर्स में प्राने पर ही नया साहित्य पढते हैं।

प्रतीत के प्रति तो नये कवि ने बहुत ही स्पट शब्दों में बहुत ही सुन्दर कहा है जो हम यहा देखता चाहते हैं। नये कवि ने अपनी साधना को सामने करके कहा है

> 'अय हो !' सोलो स्रांजर हार मेरे स्रतीत सो स्राभिमानी ! बाहर लड़ी तिये नीराजन कब से भावो को राजी ! बहुत बार भन्नावरोध पर प्रश्नत फूल बिक्तेर चुकी संबद्ध से अगरती जलाकर रो रो हुमको टेर चुकी। सर्वेमान का स्रांज नियमण देह परी, प्राणे आसी प्रहुत करो स्राकार देवता ! यह पूजा-प्रसाद पासी। दातां नहीं, चैतन्यमूनि पर तितक तथाने में साई। सर्वामान की समर-दूनिका पुन्हें जगाने में साई।

कहदी उनसे जगा, कि उनकी ध्वजा धुल मे सोती है

सिहारत है मृत्य, सिद्धि उनको, विश्वमानी रोती है प्रवी सकत युद्धिने पाई हृदय सनुज का भूखाहै बड़ी सभ्यता बहुत, किन्तु खतसर प्रब तक सखाहै

×

जय में भीषण धन्यकार है जमो तिनिष्ठ-नाशक आयो जयो मशहरदा, जयती के गौरत, गुरु, शासक, जागी। जय हो सोती हार धमृत थो, हे जम के पहले दानी यह कोताहल शमित करेगी किसी युद्ध को ही वाणी।

—दिनकर

सबपुत्र इतना दर्शन, वितन, विवेचन करके भी प्रतीत में मानय की समस्या नहीं सुत्रभी है। भी यह नहीं कहूगा कि भाग के लोगों ने उसे सुत्रभा दिया है, क्योंकि इस बाक्य की सित्रते का प्रथम मेरे देखते ही देखते मतीत हुआ जा रहा है। परन्तु इतना प्रवरम मुखे कहाता है कि पुत्र बदतते हैं। वित प्रकार भवितकाव्य भी रितिकाव्य को एक ही भानदण्ड से नहीं भरमा जा सकता, उसी प्रकार भाज की बतिता के लिए भाज की परिस्थितवा भी देखती प्रावस्यक हैं। केवल राजनीतिक पटनायों की देख सेना ही मे मानव भटक रहा है।" (बच्चन) किंतु उसके सामने बाज तुस्तान है लहराता तुस्तानी सामर प्रक्षय निध्य वारापार नहीं

ब्रक्षय निथि बारापार नहीं इसका कोई झाकार नहीं इस पार किनारा यह इसका उस पार कहां रकता जाकर छोडे नद-नदियों से हारा

होडे नद-निर्देगी से हारी हो गया रदम से जल खारा जल भरने यहाँ महीं झाती वह मक्ल सलोनी ले गागर

धाकाश चूमने को जाता परजल्दी लौटतभी धाता खारे पानी को छूते ही सल जायें नतारे प्रवर्गकर

**—**देवरान दिनेश

"नभी जब कविता बन में रहती थी तब चबि दर्शन में ड्वे रहने थे। फिर वे सामती सुरासुन्दरी मे फस गए। भिवत की लहर के बाद शुगार की व्यभिचार-भरी उत्मत्तता ब्राई। फिर कवि स्वप्नो में डूब गया। परतु बन में ब्राग लग गई। तब बह बस्ती में मा गमा। भीर कवि की जीम पर जहर उत्तर माया, क्योंकि वस्ती में माग लगी इर्ड थी।" (तेजनारायण काक) अब "प्रेम की मदिरा को गगाजल माननेवाला, धर्म का उपहास करनेवासा, सौंदर्य में ड्वा हुआ कवि, जो स्वय ही साकी और स्वय ही पीने-वाला था।"(बच्चन)"हर कदम पर जीवन की चुनौती देखने लगा। घतिम मजिल सी बही नहीं दीखती। केवल पुनिशाय तन में विश्वास येवा रहा। सितारों ने ग्रासा का एक भी सदेश नहीं दिया। प्रकृति ने पय में एक भी मगल शबुन नहीं दिया। धव उसे उस पार का भी भय नही रहा। मृत्य-पथ पर वह बढ चला निभय। वह सो किसीके हाय का साधन-मात्र या । मानो उसके द्वारा के वल मध्टि की कोई माग पूरी हो रही थी। आतात की मुजायों में रजनी मिच गई और निरुपम रुपहरा चाद शीस पर टिक गया। उसने बार-बार प्रपना पार दिया।" (बच्चन) "ज्ञानी ने मानस-मधन करके इस सस्मृति को मुगमरीचिका माया कहा, समाधिरत साधक योगी ने इमे भोग-छाया । वे सद जीवन से भाग गए। प्रेमी ही भरण के धारों चल सका।"(सुधीन्द्र)"धूल में मिलने से डर हट नया, नयोति फिर दीपक बनने नी सभावना जाग गई। भगने जन्म मे दीप बनकर डगर मे जनने की कामना ने उसे नया विश्वास दे दिया।" (रामकुमार चतुर्वेदी)

पारी का क्लिय हुए। है इस पुन के नारण में । दसे निज नाम से पुकार जाए? मैं इसे मानन-मुग ही कह वकता हूं। निजु दनना कनुनित क्या बने यह हदय कि इस छोटे-से काल-पारण को भी कृत नाम दिया जाएं। यभी तो इस अध्ये के खड़ काल में एक जन्में बाने को हैं, निसके नारण बुरे नहीं हैं, बिल्ड साधाप्रद हो दिखाई दे रहे हैं। बादों के पहिल जामी में कोनता को बादना कवि का समान करना है। वहने ति जा नाम करना है। यह तो आवार्य दुवन ही का बाम या कि तुनती का काव्य देवकर, हर्ययम वैसे दृष्णीवर को बोहकर ने 'राममिलन याला' को पता गए। हमें सब्हित का नाथा मानन करना है

ये चित्ते हैं सावार सम्यता महाति के सादिस-पुत से जो ले साए हैं एटम तक इस ही नका का कारती समर से हैं कि नहीं पक के उस हो मिल्यों के विकत्तित कर लाए भागे बाले कर-पुत के लुक्टर कूलों से 1 ये प्रतिकास कर ताए भागे बाले कर-पुत के लुक्टर कूलों से 1 ये प्रतिकास करता की बांहों के प्रतीक उत करों, भारते हाथों के प्रतिकास किय जो क्या से रहें हैं जब की, कर रहें पूर्व कर के सपने, के हैं हम्ये करा के सपने,

— गिरिबाबुमार माधुर

स्वर्ग दिवारों के नम ते उत्तर रहा है। हम भाषिन मुन ने एटन यून करू जत-रूर मा नए हैं। सिट्टी को विकतित करके लाए हैं। भविष्य में बतनेवाले जत-बुच के मुन्टर चून के रूप में। श्रम का भी गौरवं जागा हैं, जिसके कारण प्रत्येक सर्वेन से हमें प्रेम हैं।

(इस्त भन्ने हो इसे बानना कह थे, किनु नये पुण ना भूक्यात करनेवाला मानव जानना है कि उनीने यह बाता को है। यह बातवा है कि "कृष्टि के ध्यारन्त में उत्तरे उदा के मान चुने है। बातविक के ध्यापनाने रीव्य विधाप भान को चूना था। प्रयम ध्यापन के घटन दून उनीने पुमर रहुनाए थे, उत्तरे की कियों से मुश्तिकत वन-निया के साम चुने थे। सबसे कहीं जाने हैं होते ने तथा के रायप प्रयप्त थे। वह बाती मी नुनिवन्नी के हो का अधिकार करें " (बचनन)

इह मारी को पूराची मध्यकाचीन गामना है। मधे कबि की बाबना उससे कपर उठ पूरी है, इसलिए वह स्ताप्य है। वह नवंग ही मूरन हो गया है। वशीकि वह सर्वातीय रूप में मुमहात होना बाहता है। "यह मनुष्य सनत जोवधार का एक तक्ष्य है।"(सुघीन्द्र)"सम्बर का स्रधिवासी तो उसकी पुकार मुनकर नही बोलना ।" (सारमीप्रसाद निह)

"एक किरण के लिए जोजन का जलजात विकल है।" (जिलेन्द्रमार) विशु "इस धरती मे स्वर्ग है, मिट्टी ने अमृत तक्ष्यर वा मृत है। यह जीवन विरह का जलजात है।" (इस दुमार विवारी) "कम्मय हो प्राण तो फिर विरह-औह कुछ नहीं रहता।" (शक्तावा रेण)

नया कवि इसी चितन में अब समाज की ग्रोर देखता है तो वह अपने भीतर के

परिवर्तन की वहा भी उतार लाना चाहता है । वह कह उठना है

तमास नींव खुद कुरी, तमाम भीति थिर चुरी समाज जीयं - द्रोजं आधिरी उतांस भर रहा परस्परा विगद चुनी, प्रतीत-रीति सड चुनी सहा- पतांसमाज-कोड फूट - फूट गिर रहा । वदस रहा जहान है, उदय नया विहान है ज्वेत स्तरित से नया विहान ति स्त्रीत सीति तोहता, नया प्रवाह मेरेहता सजय सतकं इन्किनाव विद्य में निवार रहा । स्तान किसीमिता उठी, कि रुडि तितिमता उठी प्रपाड फरवहार- मृतित सा चमक सित्तर रहा । वया परन, नयी परा, समूत नव परम्परा नवी दिशा, नयी उपा, समूत नव परम्परा नवी दिशा, नयी उपा, समूत नव परम्परा स्वीदान पति सहर रहा । क्रात्मत्व पति दहा पति सहर सहस्त स्वार्थ स्वार्थ स्वार्थ है, स्त्रण सवस्व मनुष्य है उठा मृता सतस्त-मान स्थनाद दर रहा ।

—-दनस्याम् भरपाना

प्रश्ति वा पाव बहु नया रूप देश रहा है। सब कुछ बदत देना चाहना है। प्रपत्ने सबस पौरप का उने इतना विश्वास हो गया है। वह बानना है कि "रान को सूरक नहीं उनना, परपयो पर कूम नहीं वित्त सबते। रेग से प्याम नहीं कुमती। मुर्द सानहीं सन्ते। किनु बहु सारी बाधाए बोडकर प्राण का स्पोन का रहा है।" (स्वाम-पुरद प्रयान) बहु "श्वपयों के उद्तम में भारम हुमा है भीर प्रायों कि स्थम तक उसे बाना है। बहु प्रपत्ता साथा प्रविभागों के भागे कुनाने नो वैदार नहीं, बहु तो महते के लिए मिर वहा सकता है। सन्द्रिति के नयर से दूर जाकर वह मरमा नहीं बाहुता। रनने से निर्माण नहीं होता।" (बीरेन्द्र मिन्द्र) वह "नहीं बाहुना कि सरम वा सपना स्वन्त के साथ के लिए टूट बाए। उस दुनिया कुछ कभी उठ मके ऐसा सीटी का स्वस्य उसे बनाना है। प्रयोग मिहन क्ल में देख रहा यह मानवता कितनी नियंत कितनी मिनस्य ! में जग को मुख देनेदाले जग के कादन की देख रहा ! —भागनीवस्य वर्मा

चितु कोवे पूर्णतया पराजित नही है। वह वहता है—'साथी। उसे भीदेख,

जो भीतर भगार भरा है। उमी को एक तेरी खाग का ही योघार है।" (दिनकर) विषयना का कारण है यन। वह कही अधिक है नहीं उमना अभाव है। अभाव

में वास्त्रिय है, वडवन है। तभी वैभववामों नो देखनर विव नहुदा है उनके मस्तरु वर खेल रहा था अहम्मायता का विदास

उनके मस्तक पर खल रहाया महम्मन्यताका रिशास उनके प्यासों के साय-साय यीं जगकी ब्राहें रहीं नाच । ~ भगवनीचरण वर्षी

परमु वंभव सकेला नया वरेगा। विन तो जायत है। वह वृद्धारता है—"नायर ऊवे फून भरोवे से नीचे मावा करने हैं, बीर तदा आयी के हर भोके से उत्तर उठते हैं। बीर तो जयन वो झाहो से अपने धाव पिरोते हैं। वे अन्यायों की घून उठावर मिट्टी में दक्ताते हैं और सत्व धिव मुन्दर के मदिर की गहरी नीच जमाते हैं।"(बीलकठ तिवारी)। इसी उत्ताह में विवेदता है कि "ज्योति की उत्त उठी, दूर-पूर तक आहे। सदियों का विविद्यार पार के माववता आ गई। युग के विदाय चरण जनवय पर मूज रहे हैं। धरती के महान दर प्रवर को चूम रहे हैं। पर-व्य के बीधों औ रेज भावरी पर गई है। भावर कारा-सो साववी नान रात्रि भिट गई है। मुख्य के निदाय पर जिस्तों ने तह

है। तप्तदस्य मूमि हरित, भीत मोर सदसी हो गई है।" (गिरिजानुमार मायुर) कवि को विश्वास है कि सोधितों को —"प्रगति का वरदान मिला है। उन्हें दुर्दम

गनित का स्रिमान होना चाहिए। पुरानी जिदमी के तार तीटनै होने।"

(महेन्द्र भटनागर) नगर में साहकार भीर लुटेरे हैं। दानवना है। साम्राज्य के "रक्तपात से मान-

बना की मिन नहीं एक सकती। पशुना लडती हैं। जल्ता की जड कटती जाती है।" (गरेन्द्र)

उक । कैसा कटोर दारिज्य छाया हुमा है इस देश थे स्रोदी के दुकरों को लेने प्रतिदिश पिसकर, मूलो माक्कर भंसागादी पर स्वा हुमा आ नहा सला मानव अर्जर । है उसे युकाना गृट कर्ज है उसे युकाना युग्ट कर्ज है उसे युकाना युग्ट कर्ज दिक् में सीमित कर सके ? ससीमित है वह, उसे कीन वायसकता है? '(बालकृष्ण सर्मा नवांन) "वह जलना है तो उसके माय-साब साहस, हृदय का रन, निरासा-मामा, मृजन की माया, ग्रहन सर्जन, जानि-माकृति, मिचना स्मृति, कुमुम-म्मय, विश्वन-विस्मय सन जलते हैं।"(उदयाकर मट्ट) "धाम को यह व्यक्ष मेटी जाने देगा। जिनका कोई नहीं है, उन्हें वह स्वपना लेगा। वह सक्षमण सुन से व्यक्ष है, हिन्तु इसके पाम साम है। जिनना ही वह उत्त-जीवा ज्योति-दीप को उक्तनाता है, उतना हो उच्चन होना जाना है। इसमें बढ़- कर जीवन का उपसोग वह नहीं जानना। (सिवममलिह मुमन) स्नोट वह प्रश्वति से मानव को कल्पकालिस हो भी दी हमान वहीं कर वावन के उत्तर स्वावन स्वावन स्वावन है।

तू ता कोश्लि! या बिर कियोर!

गयवंश्वर तू चिर तुन्दर गानव को दुनिया है कठोर

होहित! या, तूने चेत्ररथी वन के मीठे फल हैं साथे
स्वर्गमा को बत्तील बीमयों में स्वर सप्तक सरसाये
महित रमवाती महती को वो मान-पुषाओं में विकरी—
पुरपति के वैजयनत से जो उउती सावक सामन तहती
इन चठनुउने में अब समत्त भर लाया समरावती, सवे
सब बीपत क्यों न बने दिगत में यह वसत वसुमती, सवे
सो उदनेवाले, स्रो को कित-मानव-किव को बया कहें
हिस समका को प्रेमी हमसी से विरही की वयाना कहें

—केमही

मानव-किंव की नया भी विधिव है। वह मानव की कठोरता नही सह सबसा। वह तो पूर्ण ज्योनि बाहना है। उमरा तो "उन्धुम्त विहाय सबय हो गया है। उसके दासता के गोह प्रय छूट गए हैं। कारातम के बाधी ने उपण हास हेना है। वह गया ने भासुर पर सांसकर उद प्यता है। वह सबर का प्रतन उर बीर देगा। युव मुग की बढ़ता का भत कर देगा। वैपन्य प्रत्नलाए बुर-बुर कर देगा। युद्द समना की न्यां रैसाए उग रही है। यगावन छरना के दिन योग गए हैं। वह पाज पुनेत-मा प्रभू बरखों में विसर्धित हो गया है। उनका पर प्रमुक्त फंना है।" (तिभव येन) "समय के तीव पृथ्वो पर यह हृदय के रहन में प्रयोग कहानी नित्व रहा है। गिसु की भ्रष्टन उपने रवालों को नित्य रहा है।" (रामुमार चतु बही) "दीपक जता दो, नहीं सर्थग पृथ्वी पर न रहनाए। जब स्वय मनुष्य दीर बन वाएगा जमी बह सर्थों करोगी।" (नीरन)

यह जीवन हास-विवास ने साथ किसी बासना की निष्हें श्रीर इसके किनने विविध रूप हैं किसो मूर्फ की हो परिणीता निज घर - सार बसाइए । होयें केंटीली, प्रांखें गोली तकडो सीती, तवियत दोलो घर को सबसे बडी पतीली भरकर भात पसाइए ।

—रपुकीर महाय

सब प्रेम गया। सब वह फिलमिल को गई। क्यम प्राया, गहरी कवांट मरा। स्वान कब कि पुकारता है कि — "हे प्रमृत! अपां! ! देवता रह देता रहे हैं!" (दिनकर) तब मोह में डावाडोत हदम सहमा चैतन हो उठगा है और दृत होकर कह उठता है—"वतायों, यह कैंसे सभव है कि तुमको सपना कर सबके ठुकरा दू? जू हुत हुत हुत होरी हो जग की प्रायामों में साम उठकर हुत हुत हुत होरी हो जन की प्रायामों में साम उठकर हैं से अपना भी नहीं हूं। मैं तो विश्व की याती बनकर चनता हिस्सा है। पपने उठर से में सबका सम प्रियान की कठा है?"

(राजेश दीक्षित)

वयों कि "एक घोर नायक परनो नी प्रमुता के बाद के प्रिमानी है, दूसरी घोर मनुक्ता के रसक नि सत्त्र सिवाही सहे हैं। जो प्रमुता का समर्थन करे वह निरवय ही धुर्म है नारे वह पनी हो या पांच्यत । त्याय ही पद्म घोर मनुक की एकपात्र सच्ची कसीटी रहा है। "(पर्योद्ध राम 'क्यतेश')। बाद तो एक नया स्वच्य भी प्रासी के सामने जाग रहा है। सीघा ही मूने पह , पह नाता ने के कार कल इसान के वायो की बढ़ीं लो पर्यावाह होनी। प्रधाना, प्रध्यप्रति, पार-पुण्य, देव घोर कर्मकल के भिष्या स्वार्थी सोपक नियम-विधान यह मानव ना सर्व- ना कर सक्ते। प्रपत्ती साना ना सर्व- ना दिना से विद्या स्वार्थी से पर स्वार्थी स्वा

(वीरेन्द्रकुमार जैन)

ऐते समय में पीछे हटने का क्या काम ! नहा से प्रारम हुया यह समर्थ, जहा या गया । वह किनती स्कृति का प्रमुख कर रहा है यव ! "मनुज को साजाय से पानाल तक सब कुछ श्रेय हैं। बुद्धि पर पैतन्य उर की जीत उतका बाग्यविक श्रेय है। श्रेय तो मानव की पानवों से प्रसोमिन प्रीति है।" (दिनकर)

\( \sqrt{\text{- (द्रांत) न हुता है—"हमने काल में मपकर वाति की ज्वाला जगाई। स्तेन में
स्वाधीनना की मांग लगाई। स्त में हमने जारगाही का जनावा निकाला। हम जम से
जुन्म करने वा दरादा भी निकाल देंगे। हम विस्व से सर मानवों के एक-में सधिकार
है।" (निरवारदेव नेवक)

"एक बार फिर ग्रम्यामी का राजसिंहासन डोल उठा है। मुगो की सोई बाधी

प्रस्तुत करता है कि उसे देखते हो यन पहला है। प्राय ही कवि ने सब नयी कल्पनाए की हैं

प्रात के पर पर किसी ने तसिका से बाइलो के. लालिसा के धी' शितिज के

कोड राजे विश

जैसे नाहयशाला मे किसीने दिये लटका तथे परें.

झौर सरज ने किसी ऊँचे शिसर पर चड

कि सपनी मास्मना उननी मनहती घष को

रच से उतारा

व्याग कि पत्रों की नर्गती.

भीर संबा की गयी के

खल राये हैं नयन

जंसे नयो दलहिन हरित श्रवल

भी' हरी सलवार की करती सलवर ठीक.

सुचड पाटन ने नगाई है पिठाई की दकान

कि भसे 'सनिक अभिनों' की तरहटटे अमर

हाधना में सीन भावतन की तरह सुरजम्खी के

झर्च देने पुरत बाहो को पसारा

द्योस के कन पहिन कर परिधान सतरगी-प्रवटे

एन० सी० सी० के जवानों को तरह फीजी सलामी दे रहे हैं प्राप्त को।

<del>~-व-देवानाम स</del>व्याह

इसमे दैतिक जीवन मे देशे हए चित्र हैं।

ब्रमल में भव कवि ने "देपाने फाउ दिए हैं जिनमें उसनी स्मृतिया समृहीत थे बौदन बबोकि साथे देखता है इसीलिए यह हमभाग हो र रोना नहीं बाहता। उसे प्रप अविष्य प्रिय है, वह प्रशीत को नहीं चाहता। वह प्रपने प्रयूपर वाषाक्षी से ही बिच भीत सनना चाहता है।" (थीराम शर्मा प्रेम) "यह घरा स्वर्ग मस्यञ्ज्य स्वर्ग था है। सदियों के विमिर को मानवता ने पार कर लिया है।" (गिरिजाद मार मायर)" स्वरो में जनानिया सिजिनो बजा रही हैं। वे सह में तैर-नैरकर नहा रही हैं।"(हिन हथी एवदम नई भूमि की हमारे सामने पसार देना है नया कवि

घरती में गड्डा कर चिडियां चल नहातीं, चीर दयेशी के उलाड की

क्या करेगा प्यार यह भगवान को क्या करेगा प्यार यह ईमान को जनम लेकर योग में इन्सान की प्यार कर पाया न जो इन्सान की।

—नीरन

सारे घर्मों का भूत कि ने सहज पा लिया है। वह मनुष्य को प्यार करता है। क्योंकि सब वचन नहीं रहा। "शान नई नेतना जामी है। वर्ष के वचन विश्वर रहे हैं। आशिशों के वचन मूल में मिसकर पून बन रहे हैं। पाज जन-जन के गये से जीत के नारे उसक रहे हैं।" (जारीय)

हम एक परिवार देखते हैं।

नवयुव का कवि कितना भारमविभार है। वह सारी शुद्रतामा से परे ही गया

कोई नहीं पराया, मेरा घर सारा सतार है। मेन बेंचा हूँ देश-काल की जब सभी खंजीर मे, में न सदा हूँ जाति पति की जेंची-नोची भीड़ मे, मेरा धर्म न हुछ स्वाही द्वारों का मिर्क गुलाब है में बस कहता हूँ कि प्यार है तो घट-घट में राम है, मुमसे युन न कहां मेरा-मिजन पर में सर टेक बूँ मेरा तो साराज्य सावसी, देशाल्य हर द्वार है। कोई मही पराया मेरा पर सारा संतर है।

—वीरज

यह प्रपुताना की प्रता नहीं, विना किसी पात की एकता है। इसमें सबकों सहब स्थान है। स्थिति परिवर्तन हो गया है। यद "पूर्म बदसा, देवता बदने । समय बदसा हुमा है। हम इस नये पुर के विधाता, जाति के प्रकार है। हम प्रधा पर सर्व-वन्न-पुर-पुर-दर्शन वसाए थे। हम महत्व को देवताओं पर साहित्य करेंगे । स्थार में मुख्य भी नहीं है बिकके सामने हम नवसीय हो। विध्व में मब कुछ हमारे निए हैं। हम सब स्थान है। साहित्य के प्रसाद होगा। हम एक नूनन स्थान होगा के माणत है। पात के प्रसाद है। साहित्य के प्रमाद है। पात को प्रसाद है। (निरकारदेव सेवक)

समानता को प्रोतस्वित उठ रही है। मात्र किय ने प्रांति का मनुभव किया है। "मात्र सहारत की उठनी भाकी की मुकाठो कीन वन गमा है? मात्र महाकाति का क्रिस्टक्त बेनालिक कारण योल उठा है।" (मचल)

इस प्रकार यह विभवान्तित स्वर शक्ति भरता जा रहा है। वह प्रतिविधा-

बर्ज धास की मदा डाड़ियाँ गोले के से घाव सोचते दह जाने की। वंख घौर डाडोवाले उन दोरों की वेशिलामृत्तियाँ क्रानी-प्रदेश कात होतों से खडी हुई हैं देती पहरा, राजमहिरों के खम्भो पर बने हुए वे तेल दांत के उडते डेगन रम झोडकर हॉफ रहे हैं बढ़िया पागल जैसी घघ हवाएँ चील रही हैं रक्त सनी वे इन-सत्ता घरों के अपर घए जला इतिहास खडा है ज्वालाको के जिसके केश दिशा कर्षी पर जली धास से लहर रहे हैं सदियों के कोडो ने लींची रवत नहियाँ महाकाश के नील जॉस पर महामन्ज यह रक्त सना

—नरेश मेहन

नरेरा ने कितनी सात्रन नियता लियी है। महामनुत्र ही इसका प्रतिम भावता है। सकता था। एकरम नधी उपपाप, नया रचना-विधान । नरेश ने बहुत प्राचा करना भी भ्रमणन नहीं है। उसने प्रकृति भीर मनुष्य, इतिहास धीर सस्कृति को कैशा मिखा दिया है। 'रक्त की मदियों का प्रदिशें के कीशों से निकलना' किननी गहरी दृष्टि है। स्थेर किर उतने देशों की बाधाण मिटाई हैं। सारी वस्पुयर उसके निय एक है। हतने पर पत्र निकलना के स्वीन द्यार नहीं हुए। उसकी एक-एक पिला में प्राप्त हैं, किए क कभी है मतरे वस्पुयर, वह है ताल भीर तथ वी। यात्रनीत का दग है, भी तो भ्राक्ष्य है, वरत्र विधी-भी गति भीर प्रधिक होती, तो निम्मदेह किता भीर भी पुन्दर वन पहती। प्रदि उत्त प्रकृत है। सही भीवा मिस्त होती, तो निम्मदेह किता भीर भी पुन्दर वन पहती। प्रद उत्त का की ही भीवार से मह किता नियर धरना प्रभाव डाल सकती है ? मैं पूछना हु कि भीवार के किता किस भीर से जाती है। विदरास और माराय के रूप वदत्तते रहते हैं। यत उत्तरर विवाद वरना व्यर्थ ही है। साम्यता के प्रधान में प्रमुद्ध थाने पर सम्मान से स्वाद र सरा हार्य होडा है । नरेस परिवादी भा कित नहीं है।

बेहोश बाज फिर जाग उठा है।

तिस्वत के दक्षिण मेरा बृद्ध देश है— क्षीर निपुन्ता महाहिमालय बरफ केंबुसी मारे जैसे सेधनाय हों नीकामत सेटा है जिस पर स्वयं विष्णु बन छहानुत्र बह नानिनास है तिस पर तिस्वत गौर कमलन्ता विता हुंया है, योजा चीवर धारण कर

बहुत के जैसा चीन सुगोभित भूते बेद के सामगान का पाठ कर रहा---बर्मा, हिन्दचीन की अतग्रत जनता, सरमी चैसी

जीवन के देवाधिरेव के

चरणों में नतमस्तक बेठी--तीस वर्ष सक नयी सृष्टि हित बहुत से मनले किया है

बह्मा ने संघर्ष किया है उसके नयनों में ब्रालोक लोक है चमकीले पक्षों के सूरन खेती के हित सुजन कमण्डल में जलवाले

मेध हमारे निवयों के हित चावत के कूलों की माला पहने ब्रह्मा— पीत बालियों वाले स्वर्णिम

भ्रन्न सिधु पर उजते शांति हस पर उड़ते

मानव मगल गान सनाते ।

⊸नरेश मेडना

र्ग मगतमय स्वप्त को प्रभो विश्व ने पूर्णनया साकार नही वाया है। प्राप्ता एक दिन बन ऐसा भी होगा। एक दिन इतना भी नहीं था। गानों में यह भी जीवन कितना विषम घोरदिद्द है। यहां समुदा को ही महान मान लिया गगा है। यप्पारंभ का सर्वेद्द मतीय है, परतु सनोप प्रमान की करों। से उपनी परावय नहीं। समर्थ जब उस होकर दूसरे परधान-मण न करे, तब वह सतीय है। किये ने भान का एक विश्व देकर देश से सैजिहर व्यवस्था की निर्वेदना का केसा हुदयादीं वर्णने किया है: तिव्यत सक्त साते-वाते वे गोरी, उजनी, लाल---

--- त्रोग मेदता

एक के बाद एक धारको एक नंगापन मिखता चला जाता है। यह सब है कि प्रति से चमत्कार भी जन्म के सकता है, बिंतु यह तम होता है, जब किन के पाम कोई उसता करेंग्र नहीं होता। महा बह है भीर पूर्ण जागीरत है। उसे मानवता से प्यार है। प्रश्नीत उपके जिए मानव की नेवता को परिस्कृत चरनेवाली है। बह सकत मूमा कोएक मानकर बहुता है

> मुत्री पृषियोगितियो। माता हमारो, महापृष्यो प्रान्त है, प्रतन्धान्य है, स्पायनी स्वयंग्रीता है यह सडो पो तिषु पो' धाकाश से हुए पाने के सिर्ण

इससिये संवर्ष

जन की शक्ति है हैं चरण, मातक ग्रौर भुजाएं

'साम्यवादी' काहा मे

भीर जन का शत्रु वह कीटाणको के सम विराता है

प्रमुर है, बृथ है, पूस इसके बसन हैं, मृत्यु इसका भाग्य हो है हम बिधाता भाग्य से इसके पृथ्वोहत हैं, अधिक हैं और यह जनतान है।

--बरेश से हता

सत् मौर समत् के सबसं के रूप से वित्त ने लोक को दो वर्गों से बाटा है। परतु बनों के विभाजन से भी बढकर है महा उसका पृथ्वों के निवासियों को एक करने का प्रथान, जिसमें बहु मधुमन्त बीवन की करना करता है।

धव ' बल्पमा होती जा रही है और जिस्ती बात माती जा रही है। उत्तमाती जा रही है वह । केवल प्रणव मही, साथ में समर्थ भी चाहिए क्वीकि जूफान चारती से मही बमते। पहले कभी उतका स्थम से संस्थ या, किनु तब वह मद या घोर बह नात तब धपने-धापने लड़ लयपब बहुने पर न जाने कहाँ से चोड़ का वहीं पुरातन दुकबा जिले मेंने घने बनों, बोहुडों, धाय के समन्दरों, धोतों के क्वालामुखी से लड़कर टूँडा है मन को धारना के कटोर लेकिन सार्यक हाथों में प्राक्त जबक बाता है। '

कवि का ग्रन्तद्वेन्द्र और ममाजको कठोरता, मार्थिकविषमता,सब मे घोर जल-फत-मी पड गई है। इसका मूल है दरिद्रता। कवि उसे पहले समाप्त करना चाहता है।

एक दिन कवि ने कहा था-"कि उधर दशारों को दूध-वस्य मिनता है, दशर मूरे दायक अनुष्याने हैं। वे मा की हड्डी से चिपक ठिट्टर बाडों की राज विताते हैं। युवती के त्यश्रवमन बेचकर ब्याव चुकाए जाते हैं। माणिक उम मम्य तैन-कुनेता पर पानी-मा द्रम्य बहाते हैं। पार्य सहरों का सहकार ही नारित को सामन्वय देना है। दानि निन्ते को का तेज हैं। यह युवों के मुक्त मीत की वाणों है। वह दिन्तवर्य शामितों के दिन की जवती दूई कहानी है। सदियों की जब्दी तीजकर जामनेवाली ज्वाला को रामी कानि विप-सरी जवानों की मानि जहर दणता है। यह सहस्य मुब्बियों के दशन प्रेसी है। वह मुखी वाधिन की कर पात है।" (विनक्षर)

ग्राज भी वह समस्या उसके सामने बनी हुई है। किंतु वह उसकी 'जिजीविधा'

का दर्शन बन गई है घव ।

"मदि जीना तुम सबग धर्म मानी, तो मरना भी महोकर्म बन जाएगा । निर्माण करो ! निर्माण करो !" (मदानीप्रमाद तिवारी)

'र्सिस्म' के निए निर्माण है। इन दो के मिलन में ब्रमर शानि है। इसीलिए वह बर्बरना भीर युद्ध का प्रचड विरोधी हो गया है

जिनकी हाती से कुटा है मानून्य सभी, बहु माँ क्या दकतावेगी दूष मडारों में ! क्या गोलों की बीह्यार मिलेगी सावत की, क्या डानेगा विनाश मुला प्रमराई में ? क्या उपवन को डालों में कुलीय मान्य व्या पुणा बजेगी भीरों की शहनाई में ? मानहाय बुद्दाका तक्ष्मा क्या महस्य से बाहद करेगी क्या म्हंगार जजानी का ?

१ शाह-मान की स्टेकॉन--शिवनारादणभिद्द 'मुखोगी'

के लिए तो कछ नये पग उठाने ही होने।" (महेन्द्र जोशी)

''चारो ग्रोर खडित मान्यताए है। रूढिया चीन की दीवार की तरह फैली है। विज्ञान के सनुसन्धान, नये स्नाविष्कार, गर्वोत्मत्त । जगतु की छन पामीर को चनौती दे

रहे हैं।" (महेन्द्र भटनागर)

इसलिए नया कवि रात के टलान में इसरा ही सीदयें देखना है. क्योंकि इस समय वह द स से ध्यम्य पर उत्तर ग्राया है

> इस मुबह के चाँद की मद चांदनी मे चल दिये टटट लिए टटे हए इसके (रघो के रूप बिगडे)

सब प्राने कर्मयोगी सिर घटाकर ग्राज उनमे हैं सुशोभित। वे क्वलकर भी प्राने देवगह को जाएँगे बन्दन बजाने

वयोंकि संदर पर्व यह बरदान है भगवान का।

Y धात देंनी निप्रतियाँ भी षम्र उपलेंगी बगर, लोहबान का बाज बहिटर की किसी वे ऊदबत्ती की महक चन्दन सुगधित व्याप्त होगी भीर पाटल गध से मभिसियत जल की भव वहाँ बरसात होगी। वयों सनें वे दहें की भावाज तेरी स्वस्तिवाचन के लकों से ?

--हरिव्याम भाज का कवि "एक बार जी रहा है, एक बार मर रहा है, वह भ्रपनी जान का सौदा एक बार कर रहा है। इमलिए भ्रष्ती जवानी के विराग का एक बार सुफान में धर रहा है। क्ल काली रात चीरकर सबेरा प्राएगा। मिनारों के देश से उमका सूरज प्राएगा। वह सीने नी जवानिया साथ में लाएगा, वह घपने साथ फूलो की नहानिया लाएगा। इसीलिए वह इस रात की खामोदी और सुनमान में, मिनारों के मकान भानमान में एक बार गीतो की रागिनी भर रहा है।"(गोपालमिह नेपाली)"प्रस्वत्य प्राज भी खडा है। मन स्पिर होता है, भ्रम मिटजाता है, माथा हट जाती है। मस्वस्य के तले क्सिको झान हो सावधान!सँभलो द्यो ताजतस्तवातो ! भूलो घरती ब्रब भूख मिटाने द्याती है ।

×
तुम कफन चुराकर बंड गए जा महलों में
देखों ! गायों को प्रयों नगी कालों है,
इस रामराज्य के सुपर रेशामी दामन में
देखों सोता की लाज उसारी जाती है,
उस और दशाम की राधा वह यून्दावन में
प्राण्तियन-चुवन के राधा वह यून्दावन में
प्राण्तियन-चुवन के पर मर पाती है।
हेसावधान-संभनों ग्रोताज सरत वालों !
भूखी यहनी सुब मेखा मिटाने प्राणी है।

—नीरइ

क्या सपा हुमा तीर है <sup>।</sup> अचूक <sup>।</sup> यह श्रव बिलकुल निर्भय है । कैसी मामिकता है इन सब्दों में ।

"मानव का रोदन-कदन सुनकर भेरे निव की वाणी मुखरित हो जाती है। मैं मानव के हित ममता की रसपार खोजता हू।" (देवराज दिनेस)

जो बुछ है मनुष्य के सुछ के लिए हैं। मनुष्य सुखी हो जाए। उसकी सुन्दरता ' भ्रोर निखर उठे। यसनोप मिट जाए। दोनना दूर हो जाए

। भटजाए। दानुनाद् रहाजाए सृष्टिहो जागेषुरभिमय इसलिए कटको मे फूल मुस्काता रहा।

—नीरब

यह है उसकी बरनना ! वह जानता है कि इस ससार मे— "बो माग भीरो को जनातो है, वह पहले सुद जलकर प्रमने तन को राख बनाती है। जो नदी गावो को बहाती है, वह सुद पहले प्रपने क्यार खा आती है। हर नफरत को एक मुहब्बत का पूसा दो। मरतो को जीने का पैगाम दिए जामो।" (विश्वक्मरमसाद तिवारी)

नफरत उसकी जिदनी का सहारा नहीं वन सकती।

जीवित रहना है तो उसका ग्रानन्द लेकर।

"जीवन में भस्ती से मुस्कराकर जीना है। सबमुच वही जवान है, जिसको जवानी जब में सक्यों का विव मौकर भी मुस्कराती है।" (देवराज दिनेस)

क्ति दर्शन की उडान में भी वह विषमनाग्री को नहीं भूनता। वह उसे हर पल याद बनी रहती है। एक दिन वह मुख से ब्याइल होकर कहना है

जहाँ रहीं से एक घठननी लानी होगी

नवा विषय है, तभी उसके विषय की कविना भी नवी है। वह एक दौप है। दौप में झालोक है। वह मालोक है, दिया नहीं। मालोक सबैन पूज्य है, प्रज मानव पूज्य है। एक कवि कहना है कि वह धालोक कभी लुभता नहीं

बुको न दीय की तिरास धनता में समा गई! धनगर ज्योति प्राण-प्राण बीच जगमगा गई! धकाय ज्योति - स्तम्भ वह पुरुष बना कि जड सहित बनी विकास खेतना न सत्य बीज मृतिका दिया सकी उसी, बडी, फसी प्रस्थ करूपना, न बंध सका धन्यन प्रमाद पास में प्रस्था तन विमुक्त सन् प्रभा दिगत बीच मुस्करा गई! सरा व कामहण कवि बना प्रमर कि कोटि-कोटि कण्ड में हुसा मुतद मिटा न काल का प्रयाह बन थिरा प्रसीस धन्तरिस में सन्तल स्वय न सम्ब वस्त सम्बन्ध सन्तान सुण्य थेया सकी, विकास सामिनी धननत सीट बीच हा गई।

×

क्षिते न पात्र तन बना, न छू सका मरण घरण विराट चेतना महण बन स्वरूप पा गई बभी न दीप की शिक्षा, धारीम में समा गई।

—शम्भूनाथसिंह

पुष्प हो उम्मोति-स्तरम बना । जड प्रकृति से ही विकास की चेतना भ्राई । माटो में से ही ग्रम्प कल्पना निरती है । प्रकार भ्रमन् में नटी बय सका । सन् ही विमुक्त होकर सबपर खाए जा रहा है ।

नहीं अनुष्य बता है। यह मनुष्य आप्य का किलोता है। परचु आप्य भी अनुष्य वा विलोता। विव दोनो हो पक्षों को स्वीवार करता है। मानव प्रश्नति का घर है। वह उसका निष्ठों सीमा तक निवता भी है। पहले मानव प्रश्नति से सकत परा उत्तरा था, पात्र का मानव दरतर भी लटना है। यह वह मताने वाह विजयने कारण उत्तरों है। जनमन मर बाई है। प्रश्नति का प्रमित्तर पत्तरा रहता है, वह रहता नहीं। मुत-दू म भी पतुष्ति प्रश्नति केरी ही रहती है। गय गुछ यही है, इसनिय विव न्यानि मीर दू स नहीं करता। वह द्योंने प्रस्ता भी देखता है भीर द्योंने समुसं पानवर भी। प्रश्नति ब्रासीतं नम के भूरजन्वांद-सितारो को पानी का यह व्यंध्ट उधारना ही होगा।

—सीरज

पुरानी कला जो इस सरव को नहीं देखना चाहनी कवि उसका स्वरूप उपारकर सामने रखना हुमा कहना है कि--- "वेशमं बामुरी लागो में बहुत वज चुकी है, बहुन वज चुकी है, जुमे बन्द करो।" (वीरेस्वर्रसिंह)

पुराने प्रधार के भी रूप ददल गए हैं। अब उसके सामने एक नई नैतिकता आ गई है।

ाइ है। "दिर दिन ब्यापी श्रेम का अवसान हो गया है। अब तो एक श्रेम मे सभी श्रेम की स्मृति के तार समा गए हैं।" (स्वामसुन्दर लश्री)

इस प्रेमे के लिए ससार को शांति चाहिए। यब रता इसको समाप्त कर देती है

पूलों की लातों पर खाते भीरें पद्धाड मृरवा तितिलयां कफन ग्रीटें हैं वितियों का चड ग्राया मलय सभीरन की काला बुजार सब खुन तर्नदिक चुस मई पय-गलियों का ।

—नीरज

दुनतिए प्रव ता जो गोपितों में छीन लिया गया है, वह उन्हें वापस मिलना ही होगा। उसे कोई कब तक दिशाकर रल सकता है

> झाने दे शोज घरा पर सावन की छुद्दार अव्यथा संस्य की प्यास सिप् बन जाएगी ग्रेटि जन न मिना हो सत्य माने को झासभान ग्रह फिट्टी वोणित के सैनाब चुनाएभी। नीची हो जाती हैं जब प्यास सङ्घर ध्यना शीरा जाती हैं भीने की पाँच विकल ही उठते हैं सागर बब वह नित रेगिस्तानी नवर पुमाती है।

> > ~- नारज

वर्जरता वा धना होना तो नया उल्लाम जागेगा। कवि उस उल्लास से परि-चित है। वह कहता है

"श्राज मरपट पर सुजन ने मद स्वर में मृष्टिकी मधुरतम मुरती फूक दो है। मौन नी छाया तने सोई हुई वेहीस नवरें फिर उठ रही हैं। साब इस बतवान धण ने पर्वन को सपनी भवा में बायकर चुर कर डाला है।" (हरिस्यास) जो भागता है, जो भागते अम और स्तेह का श्राधार लेकर पतता है। उसे हम दुक्तते से बचा सकते हैं। भौर वह हमारा सबल बन सकता है।

दिरवास के दिना नुस नहीं हो सकता । १२वर के दिल में जाग्रति का गृह पड़ा या सनता है । किंतु जब दिरवास टाबाडील होता है, वह पहली हो मजिस में दिग जाता है । दूर जाने की मानस्मता नहीं है । जो है तो यही है । दनका हो मन्त सभी तक कोई नहीं जान सकत है । वासे में ममता का बन्धन प्रोर सिर पर वियोग का भार, दोनो इसर ही सप सनते हैं ।

यहा कवि सपनी व्यथ्टि और समध्टि दोनों का मिलान करके देखता है और यह अपने द्वन्द्व से निकलने का प्रयत्न करता है। यह कहता है

> लेकर प्रक्षय विश्वास ग्रहे ! उस दिन जब पत्यर के दिल मे मैंने जागृति का पाठ पड़ा सोनेवालों को महफिल मे

—भगवनीचरण दर्मा

'त्रिये' ना मुच भी एक विशेष्ठ वनकर ही साहित्य में भाषा था। इस देश में पति भीषत्वी का मुह दिन में नहीं देव बाना था। उपयोगिनावादियों और विशुद्धतावादियों ने स्त्री के तित दुस्ह बन्धन वाध दिए में । वह समय चला गया। नया कि योद धाने धा गया। वह कहता है—''वहा उस पार उदिष्म मोर आनाश दृष्टि में एकाकार से नगते हैं, उज्ज्वनना का विहुए प्रशिवा के पक्षों जो सील सगरिस के दशाम विज्ञानों में द्विषया या रहा है। प्रमते गीतों में सानाय वाध तो। मूनोल नाम यो। गीत ना लदम प्रीति का मिलन है। इमलिए र्याव से भी कि दिख्य है।'' (पोहार श्री सामानवार महण)

रिव ने प्रवता दायिष्य समाफ लिया और यह सकुवित क्षेम से व्यापक ग्रेम पर या गया। इनका यह अर्थ नहीं कि 'प्रिया' के प्रति लिखना कोई सप्पान-जनक बात है। क्ति केवल वामना की क्षेणि या गरीर विरह की सकुवित अंचोट स्रेय- तूनवत सृष्टिको ज्या को नव छूति धपने मंगों से भर बड़वानि-वितोड़ित मंद्रीय की उत्तग तरनों से गति ले रयपुत रिव - तारिको बेदी कर दृग-दोयो का रच बन्दीयर कोपती तडित को जिल्ला - सो विष - मयुमय दोतों से दावे दु प्रकट हुई सहसा की मेरी जगती से, जीवन से?

तू प्रकट हुई सहसा की मेरी जमती मे, जीवन तू मनोमोहिनी रमा-सी, तू रुपवती रितरानी-सी, तू मोहमयी उबंधी सहस तू मानमयी इहायो-सी, तू द्यामयी जनरम्बा-सी, तू मृत्यु सद्धा कर, कूर, निदुर तू त्यकरी कालिका सद्दा, सू भयकरी रहायी-सी तू प्रीति, भीति, प्रासक्ति, यूणा की एक विषम सहा बनकर, परिवृतित होने की प्रार्ट भेरे प्रार्थ सथा-प्रतिक्षण मेर

—बच्दर

नागिन का 'कैनवास' बहुत ही बढ़ा है।

"तू भ्रमने कन में कुफनार लिए बचल फिरकों-छी किरती है। तेरी भीषण हुकार से दिगाज भी बाप उठते हैं। पत-भर में तेरा स्वर और मुद्रा बदल जाती हैं। तेरी हर जिनवन में स्वर्ग-नरक के द्वार लुसते-मुद्रते हैं।" (बच्चन)

हिन्तु यह गाभीयें हमे सबंत्र नथी नविता में ऊभ-चूम करता हुया नहीं मिलता। हम जिस व्यापक भूमि में पहुंचे हैं, बहा विद्वति भो कम नहीं है, जिससे कवि दावाडोत हो उठता है.

"डिंदगो पीले पते नागड पर मिछी, नटी-पिटी, मिटी सतरो नी तरह है। वह मनड़ी के जाते, प्यास्टर के चपाड, खाली ननस्तर, चीनट विद्यौते ग्रीर उचार के समान है। चिनिया बादाम के द्वितके, बुमा 'स्टार' ' यही डिंदगी है।" (मैयद चैप्रहीन)

दियों के लिए कितनों बचोट-सरी बात करों है बित ने। साब का जीवन वितान उत्तक ममा है। तभी वह बहता है कि विज्ञान का विकास सब बुद्ध हिलाए दे रहा है। फिर भी वह परिवर्तन को स्वीकार करने को विदय है, "प्य मे परवर, कड़त कारे को बहुचा मिलते हैं। यहा-बड़ा हो मुल्ताता हुमा फूल मिला करता है। तथे बनम के लिए कफ़न का प्यार मिला करता है।" (शकुनतता विरोडिया)

पूराने बिगम भी फिर से बार-बार तिए जाते हैं। नारी को बिगना रूपों मे देखा गया है। परन्तु बहुंचा नारी-सम्बन्ध में व्यक्तिगत कुठा प्रकट होती है। बही-कही सुदर बिज भी मिन जाते हैं। मारत को बिगवा की धवस्या क्वी दयनीय है:

चलतो घोमो,

भग ठहर-दहर,

प्राकाश हम उठा। दिशाए मुस्करा थी। कली, कुषुमकोपन दल उद्यान में साकार नाम छा पदा। नदी की जवानी जलन बुक्ता रही है, गलन बरस रहा है। नर के लिए यह मब सृष्टि जीवन है। सभी से उमे प्राण का पन मिल रहा है। फूलो में ही नर मुस्कराना सीख-कर हार को विजय में बदस रहा है।" (उदयाकर मुट्ट)

मनुष्य की मृत्दरना मनुष्य के लिए सबसे अधिक आकर्षक है। विस्मय और

ग्रवाक् करनेवाला बोंघन मनुष्य के व्यवहार मे सबमे ग्राधिक दिखाई देना है।

दिनकर ने इसे भी अपनी इसी प्रसिद्ध कविता में दिखाया है। बाद में 'कॉलप विजय' में हमें चैतना का प्रसार मिलना है। जब मन की बाख खुल जानी है, वब चेतना अपनी पाल खोत देती है

खुल गई है सुभ मन की प्रीख खुल गई है देतना को पाँख आग को प्रत लिला पर आज पहली बार आग कर प्रत कर पाँच कर पहले क

विजय का दुवंग ग्रह मानवी ज्योति से दव जाता है और प्रयं-मारीस्वर हो जाता है। यह व्यक्ति-पूर्णत्व का रूप, हृदय में जिमके ग्रम्तान कमल खिला है। ऐसी कविनाए सचमुच बहुत कम लिखी जाती है। विचि फिर ग्रमय देता है

शबू हो कोई नहीं, हो घारमवत् ससार पुत्र-सा पगु-पशियों को भी सर्कु कर प्यारा मिट नहीं जाए हिस्सीका चरफ-चिह्न वृशीत राह में भी में चलूं पग-पग सजा-सभीत । हो नहीं मुक्तको किसी पर रोध धर्म का मूंत्रे जयत मे धोय ! जाता है। मन भी कवियों की दृष्टि विविध विषयों की मोर जाती है। 'कोरे कामज में' ऐसी ही एक बहुत मुदर कविता है, इसमें कामज बहुत-में प्रतीकों वा एक प्रतीक वन जाता है। ऐसी कविताए सर्यरजी साहित्य में तो बहुत मिसती है, किनु हिंदी में कवि-सम्मेतनबाद के कारण प्राय सस्ती भावुकता काम में आती है। किनिता यो है

द्मभी हिमानी के टक्डेन्सा यह जीवन है ह्वेत कृत्द क्सूम-सा घवत हृहग्,नन उज्ज्वस गगा-रेत। मृद्त लचीला गात प्यन से उडता सी-सी बार जैसे नौड़ सोबता कोई पक्षी पंत पतार मभी न सुपाई तुमको है जग की काली स्याही काँड-छोड बधन की तुमपर आई नहीं तबाही मभी सम्हारे जीवन का है छद बडा स्वच्छद धभी नहीं देखे तुमने हैं बठिन दुखी के पन्द ! मभी विरहिणी के न विरह का तुमपर ग्रक्ति लेंख मभीन मांसु-शोक विश्व का तुमने पाया देख धभी न झपने को समेट तुम भेड़ कर सके बढ ग्रभी न तुमपर लिखा गया है मधूर मिलन का खंद। विवकार ने सभी न विवित्त किए बमन्ती कुळ्य मूर्तिमान मुद्दस्यन सद्द्रा जिनपर वितरे असिपुत द्मभी तलायित कवरी में मद गय-ग्यरूट पूल किसी मुत्दरी ने न तुन्हें छूने की की है भून । पूर्ण तृष्ति की भांति सभी तो नुम हो बिन्कुल मुक क्सी वियोगी के न हृदय से किए गए दी दूक। पुष्वी को मानव ने सिख-सिख कितना दिया विगाउ तुम कोरें हो ठीक! वरें-करते जी तिल का ताड

—इरिह्नद्रदेव हमा 'त्रातक'

इममें बहुन ही नोमल व्यवना है धीर सामितना बड़ी गहरो है। इसी प्रनार नवे नवि ने नोबले पर बीवन नी गहरी धनुसूनि उनार दी है। नोबला नाना है। नव्यना नी मुक्त ने उसे बीवन नी मसींदा दी है।

'नोयना' में कवि कहता है

"मैं काश्रिमा में कैंद उज्ज्वत ज्योति हू। में अपेरेका कपन आहे हुए पावन सर्वेरा हू।" (मोहननास श्रीवास्तव)

'नानासूमी' एन बहुत ही गहरी मनुमूनि ना स्वतत प्रमाण है। ऐसी विवाए

प्रतिनिधि है, वह समिध्द की चेतना का प्रतीक है। इसके साथ ही प्रकृति के बाझ रूप भी इसी 'पात्र' के प्रतबांहर के साथ ही उपस्थित हुए हैं। श्रुत दुरुहता उन्हें ही सताती है, जो इसे पुराने मानदण्डों को बदते दिना ही बिठा चेना चाहते हैं। में प्रस्मापक वर्ग की बात सोकह ही बयो, जो कि कोर्स में प्राने पर ही नया साहित्य पढते हैं।

म्रतीत के प्रति तो नये कवि ने बहुत हो स्पट शब्दों में बहुत ही सुन्दर कहा है ओ हम यहा देखना चाहने हैं । नये किंव ने ग्रपनी साधना को सामने करके कहा है

'अय हो!' लोलो स्राजिए द्वार मेरे स्रतीत स्रो समिमानो! सहर लड़ी लिये नीराजन कब से भावो की रानी <sup>5</sup>
सहत बार भावावरोय पर स्रप्तत कूल बिलेर चुकी संस्कृत कार भारती जलाकर रो रो तुमको टेर चुकी। सर्वमान का स्राज निमत्रण देह परो, स्रागे सामो प्रहण करो साकार देवता 'यह यूला-प्रसाद पासो पाला नहीं, चीतन्यमूलि पर तिलक लगाने में साई । चर्णमान की समर-बूलिका नुग्हें जगाने में साई।

कह दो उनसे जगा, कि उनकी
प्रजा धूल में सोती है
सिहासन है मृग्य, तिद्वि
उनको, विषया-सो रोती है
प्रया सकल युद्धि ने पाई हृदय मनूज का भूखा है
वहीं सभ्यता बहुत, किन्त प्रतासर प्रजासक छखा है

अग में भीषण घन्यकार है जगे तिमिर-नाशक आगो जगे मबद्रस्टा, जगती के गौरव, गृह, शासक, जागो। जय हो होती हार धमृत दो, हे जग के पहले दाती यह कोसाहल शमित करेगी किसी यद को ही बागों।

—दिनकर

सवपुत्र इतना दर्सन, वितन, विवेचन करके भी प्रतीत में मानव को त्यसवा नहीं सुवामी है। मैं यह नहीं कहूगा कि माज के लोगों ने उसे सुवामा दिया है, बयोकि इस बावब को सिखने का समय मेरे देखते ही देखते प्रतीत हुमा जा दहा है। परन्तु इतना प्रवद्य मुक्ते कहना है कि गुग बदनते हैं। दिस प्रकार प्रतिकाव्य और शिक्ताव्य को एक एक हो मानदम्ब से नहीं परना जा सकता, उसी प्रकार पान की कविता के लिए माज की परिस्थितिया भी देखती प्रावस्थक है। केवल राजनीतिक पटनायों को देख सेना ही भी प्रेम प्राप्त कर रहा है। धौर किन ने कही भी प्रचार का सहारा नहीं लिया। इसी तरह किन ने बहुत ही साचारण-सी वस्तु ली है--वियासलाई की तीली धौर कहा है

मुक्ते विश्वात है खमा की बेला में सूरज, सितारें थीं चन्दा जब किरनों का वैभव को धम्बर के चुन्तू-भर पानी में हुब, मर जाएँगे —तब भी में

दात कोकित-पत्नी कमरे में बस्त की पतादा-पताका फहराऊँगी <sup>(</sup>

×

प्रकाश के गीत ग्रेंथेरे के श्रथरो परगाऊँगी।

प्राकाश ने चमरते-दमकते विशाल सूरव की घरती पर उतरी हुई प्राणवान घरती हूँ ।

—श्रीराम वर्मा

मारी का विकास हुया है इस पुत्र के काव्य में । इसे कित नाम से युकारा जाए? में इसे मानव-नुत्ता हो कह सकता हूं । किन्तु इतना सङ्गीलत स्वीयने यह हरवा कि इस छोटे-से जान-प्राप्त को भी कृत जान दिया जाए? मारी तो इस सम्पर्क कर-कात से एक उत्तर्ष पाने को है, जिसके सराव दूरे नहीं हैं, बल्कि मायावद हो दिखाई दे रहे हैं। बादों के पहिल नामां में कावित तो बादना कवि का प्रथमन करना है। सह्झित का नाम करना है। यह तो प्राप्ताय युक्त ही का जान था कि नुससी वा काव्य देसकर, हृदयसम सैते इस्पृत्ति को ओटकर वे 'साममिक्त साला' को यहा गए। हमें सरकृति का नदा मनन करना है

> > —मिरिबादुमार् मानुर

स्वर्ग विचारों के नम से उबर रहा है। हम कादिम पुत्र के एटन यून तक चत-कर पा नए हैं। पिट्टी को विकत्तित करके नाए हैं। अविषय में बननेवाले जब-यून के मुस्टर फूल के रूप में। यस ना भी सौरवं जाता है, जिसके कारण प्रस्केत सर्वन से हमें प्रेस हैं।

विद्रव भावे ही एमे वालता कह से, किंदु उमे यून वा सुरवात करनेवाला मानव जानता है कि उमीने यह पाता की है। यह वालता है कि "मृद्धि के घारम्य में उससे ज्या के पाल मूने वे। वालदी के जायपाने दीका दिसाल मास को चूना था। जबन सम्बा के मस्य दूव उसीने मूनवर सुनार पे, जारा को करियों से मुत्तिज्वत नव-जिशा के बास चूने वे। सबसे पहले उमीके होंगे ने वाल के स्थापन घमर सुन्दे थे। यह बारी की पुनिवंश के हो बसा मिनवार करें?" (अज्बन)

वह मारों को दुवारी मध्यकाशीत वासना है। नये कवि को बासना उससे उत्तर उठ बुतो है, इसलिए बह स्वाप्य है। यह नयंत्र हो मुख्य हो बया है। बयोक्ति वह सर्वांगीय रूप मे मुनस्टल होना चाहता है। बिन्ने पूणा प्रोर प्यार के बो नियम हैं उन्हें कोई नहीं बानना। यह केनी सावारी है कि हमने प्रमत्नी सहजता हो एकदम विवारी है। बो भी हो, समर्थ की बान तो ठीक है।" (बीनि बीचरी) विव कहना है—"मुफ्ते प्रस्ता सावन के तरल मेथ-साबो लहराना है, रह-रहनर हक्त बाना है, उने प्यास्टिक के नएने मे मत बागो वह मजन है, प्रमित है, क्योंकि वह भेरा है, मेरे दर्व मे उजबा है। मैं ह भेरी प्रास्था है, इननिए बो प्रनी-

"मैं वह हू जिमने सपन धमानों की डाल वर धरने हाथों भाने जीवन का सत्ता रचा है। वडी व डिनाई से योडा-मा मधु इकट्ठा कर वाया हू। मेरे सहर को चुरानेवालो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। प्रपने धीनाल की ऊबाई तक जाने में जिस बनाल को पकडी,

उसको मत वोडो।" (पृष्पोत्तम सरे)

"बीलो मत! बील के बाद भी दरवाडा बद न करने दूगा! बना पता तूकान को सककोर से उलडे, तिक विश्वाम को तनका रहे दो पाद बहा तक आ पहुंचे और दरवाडा बद पाकर, इन्हीं हिम्मत किए साहम बटोरे सोट पढे।" (कार्रेमानाल नन्दन)

"भो पागत में बहिन्न सम्बन्ध जीना चाहना है तो सापन नहीं, यक्ति भाग। यहिन से साधन मिल जाएगे, परंतु साधन नुमें यहिन नहीं दे कहेंगे।" (छिन्न त्रायकुमार) "ध्यामा तट जहां था, वहीं रहां। गारा ही याहै, जावन की बेला में माज मैंने नहें उत-सांक्य याहै है। निहत्व ही समर्थेण ही मिल्लि है। जब वर्षों भाएगी तके स्वाची नरें एक वृद्द मोनी वन जाएगी। दोटी मी सीनी ही यह विवाएगी कि रस का सही प्रहच विननी वहीं बात है।" (भारत मुण्य मध्याल)

"सागर कभी क्यारो से नहीं मिलना ।" (गगाप्रसाद पाण्डेय)

"रिमस्मिन-रिमिक्षन हो रही है। इश्यनुष का क्रियामन बूटेबार दुग्हा मोडकर साम्महिशोले चड़ी मूच रही है। किनार सोलकर रह-रहकर विजली माककर परजवी-तकानी है।" (वर्दर्सामह)

प्रायुनिक 'प्रेम' पर वह व्याग नरना है—"प्लोमय के वर्गर इसकी उपलब्धि निकास मनभव है।" (कैलास बावपेसी)

"मित रोधों से तो मन्दा है कि पशु हुने ले चलें।" (सत्येन्द्र धीउाम्बर)

"तुन्हारी बजरहरी सदी को (माउट माफ डेट) हवेती, पूरानी पीत्री के प्रति श्रद्धा के नाम पर बब भी बल रही है। इतका मगला हिस्सा तुडबाकर तुम इने सायु-नित्र बनाना चाहते हो ? मानेवालों को बाहर ही बाहर नकतो चेहरा लगाकर अरसाना चाहते हो ?" (केशक्यद बर्मा)

"बब पहला मूरब उगा तब में हम 'बेन्द्र' की सत्ता स्वीवार कर प्रदक्षिण कर रहे हैं। हमारे दार्-बाए समृद्धि है, जीवन है, धमनियों का स्वदन है, पर हम जीवन को में देख रहा यह मानवता कितनी निवंत कितनी मनित्य ! मंजण को मुख देनैवाले जग के फादन को देख रहा !

—भगवतीचरक वर्मा

वितु कांत्र पूर्णत्या पराजित नही है। वह वहता है—"साधी ! उसे भी देख, जो भीतर मगार भरा है। जभी को एक तेरी माग का ही साधार है।" (दिनकर)

स्वित्तवा का कारण है बन। यह कही अधिक है कही उसका अभाव है। अभाव

मे बारिडब है, तडफा है। तभी बैभववाणों को देखकर कवि कहता है उनके महत्त पर खेल रहा था श्रहम्मप्यता का पिशाच उनके प्यासों के साय-साथ यों जग की ब्राही रहीं नाच।

—भगवर्शवरण वर्षा

परमु बैमन सकेला बवा न रेगा। मिन हो जाशत है। वह पुनासा है—"नापर के वे कून भरोने से नीचे माना नरते हैं, बीर सीर साथी के हुए मीने से उत्तर उठते हैं। वे दिन तो जबन हो माहि से माने पात पिरोते हैं। वे प्रमाण की सून उठान मिन्हों में रफताते हैं और कल जिन पूर्व के मिरद को गररी मीन जमाते हैं।" (बीनक ठितारी)। इसा उत्तर के मिन्द को गररी मीन जमाते हैं।" (बीनक ठितारी)। इसा उत्तर के साम हो ने "मीति की उरा उठी, हर-पूर तक का गई। सिकों का तिमिर पार करके मानवता का पई। सुपा के विवार चरण जनवप पर मून रहें हैं। स्वर्त के महान हर स्वर का वृम रहें हैं। मन-वन के सीपो की रेग भावरी पड वई है। अबद कारानी सामरों नो राजि मीन वर्ष हैं। स्वराप पर विवारी नी वर्ष हैं। स्वराप पर विवारी नी वर्ष हैं। स्वराप स्वर्त मीन होते पर विवार पर विवारी नी वर्ष हैं। स्वराप स्वर्त मीन होते पर मीत मीर सबसी हो। गई हैं।" (गिरवाह मार मानूर)

विव को विश्वास है कि सोवितों को —''प्रयति का चरदान मिला है। उन्हें दुर्दम

गक्ति वा ग्रभियान होना चाहिए। पुरानी ग्रिटमी के तार तीटने होगे।"

(महेन्द्र भटदागर)

नगर में बाहुकार भीर लुटेरे हैं। दानगता है। साझाउच के "रक्तपात से मान-बता को मति नहीं ककसकती। पशुना लडती है। जडता की बड कटती जाती है।"

(नरेन्द्र)

उक्त ! वैसा कठोर दारिजय छामा हुआ है इस देश मे

चोदी के ट्रकडों को लेने
प्रतिदिन पिसकर, भूको मरकर
भंसागादी पर सदा हुपा
जा रहा बला मानव जर्नर !
है उसे सुकाना मूट-कर्ज
है उसे सुकाना सुवना कर

मानव-सरङ्ख

किसी मूर्लको हो परिमोता निज घर-बार बसाइए। होये कॅटोबी, मॉर्ले पोली सकड़ी सोलो, सबियत डोको घरको सबसे बडी पतीली भरकर भांत पसाइए।

—स्पुत्रीर महाय

प्रव प्रेम गया। यद वह फ़िलीमल को गई। व्यथ्य प्राया, गहरी कवीट मरा। यिन जब कवि बुकारता है कि —'हे प्रमृत' जग्मो 'देवता राह देख रहे हैं।''(दिनकर) तब मोह में डावाडोत हुदय सहगा चैतन्य हो उठना है और दृढ होकर कह उठता है—"बतायो, वह बंसे सभव है कि तुमको प्रयनाकर सबको दुकरा दू' एक बुम्हारेपीछे जगको ग्रासामी में प्राग सगा दू? मैं यानना भी नहीं हूं। मैं तो विहन की पाती बनकर

चलता फिरता हू । यपने ऊपर से में सबका सम ग्रधिकार कैसे उठा दू ?"

(राजेश दीक्षित)

क्यों कि "एक मीर नासक सस्त्री नी पनुता के सब के प्रसिमानी है, दूसरी धीर मनुकता के रसक नि शस्त्र सिवाही सबे हैं। जो पनुता का समर्थन करे वह निश्चय ही चतु है पाहे वह चनी हो या परंपलब । न्यार ही पतु और सनुत्र को एकपाश सन्त्री कसीटो रहा है। "(पर्यासह पन्धे 'कमनेयां")। सब ती एक नया स्वष्य भी आसी के सामने जाग रहा है। पीत्र ही मुस्त्र स्वत्र मुल्तावां के कार कत दासन के जायों को मंत्रीं ज यन्यावा होती। स्पर्यास्य, सप्यप्रहत, पान-पुष्प, देव और कमंकर के सिच्या स्वार्थी पीपक नियम-निवास सब मानव का प्रविक पीपक ती पत्र कर एकर। प्रमुत्ती सत्ता का सर्व-तृत्र हामी सन्तर मनुत्र स्वत्री और सन्तर पर स्वप्त राज्य करेगा।"

(वीरेन्द्रकुमार जैन)

ऐसे समय ने पीछे हटने का बया काम ! नहा से आरम हुया यह समर्थ, कहा या गया । वह कितने स्कूरित का प्रमुख कर रहा है पत्र ! "मनुत को प्राकाश से पानाल तक घर नुख भेय हैं। बुद्धि पर भेतन्य उर की जीत उसका बाग्विकिय येथ है। धेय वो भानव की भागत की ससीमित जीति है।" (दिनकर)

भ विद्रोही बहुता है— "हमने काम में ममकर वाति को ब्वाला जगाई। स्थेन में स्वाफीतना की माग लगाई। स्म के हमने जारागारी का जनावा निकाला। हम जब से जुन्म करते वा दरादा भी निकाल संगे। हम विस्त्र में सम मानवों के एक-में पश्चितार है।" (निरकारदेव नेवक)

"एक बार फिर बन्यायी का राजसिहासन डोल उठा है। युपो की सोई आधी

"डस्ट बोन की गणन गुका में काते जूहें रहने हैं। 'नालिवी' के नात्मोदक में रोज नहाते रहते हैं। एक दिन की दान कही तबीयन सट गई। घर जौटे, पाया धपनी पूछ नहीं कट गई। तद से सब तक

एक सिरद्धा एक धाताथा कटी यूँछ सहराए जाझो दया-परम-कस्तूरी-दिविया नाभिषक सहलाए जाझो 'सग-मद्भम्' महामश्र-बोटी का मुडका मारे जाझो, यहो खिरगो, यहो परम है लख्बीरासा तारे जाओ। दु केव्यनुद्धिनमना: सुक्षेषु विगतस्मृह बीतराग भय कोय नामवं मुनिक्यते।। स्वसमे नियन श्रेष परक्षमी भयावह।

ॐ तत् सत् ।"

नामदं मुनि को मीता कैसी तीसी कपोट लिए है। साई हुई गुठलों के प्रति भी उसकी ऐसी मजबूरी है कि वह उमें फेकता नहीं। फिर वह कर्राना करता है कि यह गुठली ठगेगी। उस समस का कितना प्राकर्षक वर्णन है

हरी ग्रेंथरिया पहन यह गुरुली इस्ताती नाचेगी कल परसो नरसो कभी न कभी ग्रामों के ग्रवार लगा देगी।

--वमनुदेव क्रिकेट <del>क्रिकेट</del>

'काल बन की क्षाम' में प्रकृति का नये इग का वर्षन है—"ससीमी सीन विदेश प्रकार के बाल में फस गई। तरकाल में नमकील कुद्दरे के विषयर सिदर गए। मोधूनी की सबीती छाह में बक-पार्ग लहरा रही हैं, जैंगे क्षित वह पुल के नीचे से शौकाए जा रही हो। सोज कुद में बिलरे मोती, रही ज्योति की राजिया, जोगन की बातास होलती कहनी प्रवद कहानिया।" (गिरियर गोपाल)

"दर घन है, उसे न बहायों, न भुताबे देकर भुलाया। राह की राहत बने, उतनी दवा तो ठीक है। छान का सहारा होता है, ने लो, मगर घर यत बनाखो।"

(जगदीश एम० ए०)

'धारा मणीन' में कुतल मेघ धाधुनित यत्र, मानव-कर्मठता और मानवीय सबेद-नाको का एकत्रोकरण करता है

"प्राप्त मजीन ना प्रत्मिल तुम्हे नित बामत्रण देता है—चीरो चीरो दरं, यनन को प्रीर बोर्ण-बीर्ण को नाटीनाटी। प्रश्निल के सम्मुख प्रपने करकमणी को अपिन मत होने दो। यन वन मनर, चैत्र मनोहर, सुमन मयवर को जब्द-चेत्रन में मट्-मह्ला दो। उन्हें वर्गनक वी मेर्जें, प्रस्मारी, दरवाजें, पसम, चीलटें बनापो. रेलों वे क्या करेगा प्यार यह भगवान को क्या करेगा प्यार यह ईमीन को जन्म केकर गोर में इन्सान की प्यार कर पाया न जो इन्सान की।

—नीरन

सारे पर्यों का मूल किये ने सहज पा जिया है। यह मनुष्य की प्यार करता है। क्योंकि सब वषत नहीं रहा। "बाज नई नेतना जागी है। वर्ष के बधन निखर रहे हैं। जातियों के बधत यूल में मिसकर पूल बन रहे हैं। याज जन-जन के गसे से जीत के नारे उनक रहे हैं।" (जगरीय)

हम एक परिवार देखते हैं।

नवयुग का कवि कितना मारमविभोर है। वह सारी शुद्रतामों से परे हो गया

कोई नहीं पराण, मेरा पर सारा ससार है। में न बंदा हूं नी-कार को जग तगो खंडोर ने, में न सड़ा हूं नाति गति को क्यों-नोधों भीड़ मे, मेरा धर्म न कुछ स्वाही सार्वों का विक्ते गुताब हैं में बत कहता हूँ कि प्यार है तो पट-पट मे राव है, मुध्तेसुम न कहा महिर-मिरन पर में सर टेक बूं सेसा हो साराम्य सादमी, देवालय हर डार है। कोई महीं पराया मेरा पर सारा संताह है।

—सीरज

यह मपुताबा की एरना नहीं, दिना कियी तर्त की एनता है। इतमें सबकों सहस स्थान है। क्योंकि परिवर्तन हो गया है। यह "पर्म बदला, देवता बदले। समय बदला हुया है। हम इस वर्ष ये युग के विपाल, जाति के सनवार है। हम प्राय पर सर्व-वन-पुत्र दर्व क्यांगे। हम मपुत्र को देवताओं पर मोहाबर करेंगे। सामार में कुछ भी नहीं है जिसके सामने हम पत्र विपाल से सब कुछहमारे लिए हैं। हम सब बदाय है। बात जो दुनिया के लिए हमार में कुछन सामार के हमार में कुछ का सामार के साम हमार में कुछन सामार के सामार का सामार के सामार का सामार के सामार का सामार के सामार के सामार के सामार के सामार का सामार का सामार के सामार का सामार के सामार के सामार का सामार का सामार के सामार का 
समानता नी प्रतिष्यनि चठ रही है। प्राप्त निष्के ने मादि का प्रमुभव दिया है। "प्राप्त राहारत नी जठनों भारी नी लुकाठों नीन वन गया है। प्राप्त महात्राति ना विराज्यनत वैनालिन चारण योज उठा है।" (प्रचल)

इस प्रकार पह विभवान्त्रित स्वर शक्ति मरक्षा जा रहा है। वह प्रतित्रिया-

हम हरी चीटियो-जैसी हैं । हम श्रादिकाल से सब बिनयो की नियति घरा को मीसवती इसे ने मध्यित करने गिरिवन, मध्यल, नगर-बृह गाप रही हैं ।" (नरेस मेहना)

"बोई भी सामा ग्रव मुझे वहुत लब्बी नही है, कोई भी राह मुझे दुर्गम या दुस्तर नहीं है। हे मीत! जब तुम साब हो तो ग्रव भीर जिला नहां है। श्रव करने के काटे मुझे

फूनो से घटकर नहीं हैं।" (देवराज)

देवता घौर घर्म के डकोमले को देवकर विव कहता है—"मदिर के देव को ग्रव उस वगह पहुंचा दो, वहा पर डेर के डेर देवता पड़े हैं। ये सगह की वस्तु हैं, ये सागद विधातर नहीं। वे ग्रव जिदा नहीं, काल के चरण हैं।" (वशीधर पण्डा)

यात्रा सतहोत है। कवि जबकर कहता है, "क्या कभी यह एक उनकी माग-सी धूत-धूतर राह सत्म होने को न भाएगी? क्या यह सफर की सबुभ-भयाह प्यास एक दिन मुभीको पी जाएगी? क्या मेरे साथ यही सब ऊपते करवे, और पुराने पुत जाएगे? क्या यह प्रमुष-सी दुहरी पान में तियटी हुई नदी मुफ्ते विस्कुल हो बीख देगी?"

(धर्मवीर भारती)

कवि जिनना परिवर्तन चाहना है उतना पा नहीं सको है। साकेतिक चेथनित-नता यहा युग का प्रतीत बतकर सम्मेन प्राती है।

्रितिस्ववंद-वन साधना नया थेथ कुम्हलाए फूलो में नूतन गथ भरने बाया है। इसकी नम में छा बाने दो। यह तम्हें रंभेड़, सींदर्य, स्वाम्च्य सब कुछ देगा।"

(स्यामसुदर 'ग्रशान')

"ग्रव दिवकाल ग्रतान और मध ना कारण नहीं है। ग्रतिम रण के लिए नर-नारायण ग्रव विटिबंड ही रहे हैं। परम पावन-नारण क्षेत्र ग्रव रणक्षेत्र बनेगा।" (नरेन्द्र शर्मा)

"हामुन का घनमनपन फैसा है, धनस दुपहरी है। बेमन नीरम च्वनिया औदा परफोधा-सी पसरी है। पनीसी राग हवाए चल रही है। कहते हैं बसत बौराया है, पर मुक्ते बगता है कि मैं जैसे सब्सी में जक्क गया हूं।" (विद्याभुषण श्रद्धवाल)

"प्यार स्वतन्त्र है, मगर जमभर नहीं निवत्रण भी है, जैसे छन्द कहीं मुक्ति है तो नहीं बन्धन ।" (नीरज)

"एक पीली नाम ऐसी है जैने पनफर का जरा खटका हुपा पता। घव गिरा, घव थिरा वह सटका हुपा आमू साज्य तारक-मा है।"--(शमरीरवहादर सिंह)

"दीप जसावर रात गुजार दी, दोपहरी देह जलाकर।" (नेपाली)

"प्रामेवाता सबेरा होता है, जानेवामी शाम होती है।" (बलवोर्शमह रम) 'बाद ग्रीर मेघ' का वर्णन करते हुएकवि कहना है

"दिया ने भी द्विया हायी मजा फेरी लगा, काली रई-सा नम की धुना और

तिस्वत के दक्षिण मेरा बृद्ध देश है— श्रीर नियुक्ता महाहिमालय बएक कंतुको मारे बेंसे बीयनाग हों नीलपान केटा है जिस पर स्वयं विरणु बन स्थापुत्र वह ताभिजाल है किस पर तिस्त्व गौर कमलन्ता लिसा हुंचा है, भीला बीवर थारण कर

ब्रह्मा के जैसा चीन सुवोभित भये वेद के सामगान का पाठ कर रहा--बर्मा, हिन्दचीन की अत्यात जनता, सदमी बंसी

जीवन के देवाधिदेव के

चरणों मे नतमस्तक वंठी-

तीस वर्ष तक नयी सृष्टि हित बह्मा ने संघर्ष किया है अपने क्लार्डे से सामीन नोक है

उसके नवनों में श्रामोक लोक है धमकीले पत्तों के सूरज खेती के हित सुजन कमण्डल से जलवाले

मेव हमारे निवयों के हित चावस के कूसों की माला पहने क्षह्मा---पीत बातियों बाले स्वीयम

भन्न सिधु पर उजले शांति हस पर उड़ते मानव मगल गान सुनाते ।

—नोश मेडन

दग मगसमय स्वप्न को प्रभी विदव ने पूर्णनया साकार नहीं पाया है। ग्राच्या एक दिन जब ऐसा भी होता।

एक दिन इतना भी नहीं था। गांवों में घद भी बीवन कितना विषम धोरहरिद है। बहा समुद्रा को ही महान मान किया नाता है। प्रध्यास का तर्वेदन गतीय है, परतु सनोप समाव की कवीटों से उपकी परायब नहीं। समर्थ जब उध होकर दूसरे पर साक-मान करें, तब यह हतीय है। कवि ने शाम का एक बिन देकर देश में बीतहर ध्यवस्था की निर्वेतना का केंग्रा हुस्पराही बचेंद किया है। इन्द्र भी पहला श्रीमक या, बृत्र, जो जनशत्रु या, श्रमचोर या, इन्द्र को उस शत्रु से लदना यदा या— भीर जन विजयी हुए—अम की विजय थी। प्रात के हम इन्द्र हैं—हैं देवता श्रम के— जान के इस प्रमुद, शोधक वृत्र की 5— जो जलाता कसल, मदिर, नगर, जन के केन्द्र की।

—नरेश मेहना

घरती जाग रही है।

कीव किछान को बुलाता है। परती का गुन है कि वह गुनती है। "को विचानो! तुम्हारी हरो घरती को बाग ने अभय मानव पल रहे हैं। मुक्ति के नेता! सजग होकर विगुल का निर्मोध कर दो।" (शिवसूति निष्य)

भत में में कहूगा कि सभी बहुत वटो शक्ति भौर उसकी समादना हमारे काव्य

में द्विपी हुई है। बनता में जिनना सामीप्य होगा नाव्य निखरता भाएगा।

"जन-मादना नी शिज्यिनी मधुर स्वर में बज रही है। ग्रागामी मुनन जगत् की वह कामना है वह स्वर ।वह चादनी सी मधुर है, प्रान काल-सी उन्सेयदात्री है। वह जगत, गाब, घर, नगर, गती में घूमती है।वहाँ जिसी की जीत का दिटोरा पीटती है।" (हरिव्यान)

इषर 'प्रमात' की 'ऋतवरा' में खीलन नो वडी ही गहन समुप्तति प्रवट हुई हैं, जितमे हम जल, पृथ्वो, प्रीम, पथने भीर भारताम, मानव, प्रजा, नारी और चराचर नो एक महान कमेंयज में सिन्तिहित देखते हैं। 'ऋतवरा' एक नया मील का परकर है। भाज जीवन वड रहा है

> मनुकी अवाबनी शतथा विसरी दिशि-दिशि मे मू पर धन-पिरि-गहुर, समतस में, हिममडित भूव के ऊपर । यह मानवता की राहल पारा भ्रमन्त भिवनाशी धनने बसी दिश्व-संस्कृति का अस-निध अप-दिश्वसी है देशों मे जन बेंदे, बनी सरि-सायर को सीमाएँ धरती बेंदी, एक नभ मे पर सबके स्वर सहराए। पर्म-जाति-रगों-वर्गों को बनी नई बोबारें पर विराट जन-चरण न पय को बाधाधों से हारे। मिसी एक हो नीत गमन से सबके स्वरिन्त हाथा

प्रतिक्रियाबादियों में घृषा है। भ्रौर जहां भी मानव की स्वतन्त्रता का भ्रस्त है, वहीं उमे माखना मिसती है

मुम्दे भ्रमरीका का लिवर्टी-

हंबू उतना हो प्यास है जितना मांस्त्रों का साल तारा और मेरे दिल में वेहिंग का स्वर्गीय महत महत्ता में क्य प्रियंत नहीं में कांत्रों में उत्त यार्थों का सलनार सुनतर हूँ जो बोहना से झाए मेरी देहती में प्रक्लाद की

तपस्याएँ दोनों दुनियामों की चौलट पर मुद्ध के हिरम्यक्टमप को चीर रही हैं

बात मेने गोर्डों की होरों के मौगन में देशा भीर तात्र के साए में रार्जीय कुंग की पामा जितन के हाम में हाज दिये हुए भीर तांस्तरांध मेरे देहाती प्रिमन होठों से बोल उठा भीर भारतां की सौलों में नया इतिहास मेरे दिल की कहानी की मुखीं वन गया मं जोता की वह सस्ती हूँ जो नेकदा की मजों से जाम की तरह टकरानी है में मंत्र के कुमार खायावादी सावन-मारों की बोट हूँ हिलोर केते कर्य पर में निरासत के राम का एक मौनू जो तीसरे महायुद्ध के किन्त तीह पड़ों की

—राजगेसदार मिंड

मनार की मुन्दर इनिया जमें मुहाबी है, वह बाहे कही को भी बयो न हों। जमे किमी प्रकार का भेद-मात वहीं है। ही भी बयो ? जिमका प्राणत योवत के प्रति प्रेम है, वह बया जम मबसे म्मेंह नहीं बरेगा, यो कि जीवत को बरदात बनानेवाले हैं। उनके तो भावान्तियों, मम्हनियों और देम की मीमाधों को पार कर निया है। पूना केवल उनमें है बिसके द्वारा मार्ग रक्ता है। बन्धमा उने मदमें प्रेम हैं। वह ब्रद्धन्य का सुन्धव करना हो सावधान!सँभलो श्रो ताजतस्तवातो ! भूखो धरती श्रव भूख मिटाने श्राती है।

X

तुम कक व्हराकर वेट गए जा महलों में देखों ! गायों को सर्वो नगी कालों है, इस रामराज्य के सुपर रेशमी रामन में रेखों सीता की साज उसारी जातो है, उस फोर रामा की राया वह युन्हावन में धानितन-बुन्न बेंच पेट मर पाती हैं। होशावधान संभाती घोताज दरत वालों! भूखों परनी धार मूख मिराने माती है।

—સોરવ

क्या संघा हुमा तीर है <sup>1</sup> अचुक<sup>ा</sup> वह ग्रव विलकुल निर्भय है । कैसी मामिकता है इन राज्यों में ।

"मानव का रोदन-कदन सुनकर मेरे गिंव की बाणी मुखरित हो जाती है। मैं मानव के हित ममता की रसघार खोजता हूं।" (देवराज दिनेत)

को बुद्ध है मनुष्य के सुद्ध के लिए है। मनुष्य सुद्धी हो जाए। उसकी सुन्दरता ' भीर निचर उठे। सनगेष मिट जाए। दीनना दरहो जाए

मृध्टि हो जाये सुरिभमय इसलिए कटको मे फूल मुस्काता रहा।

--संस्ब

यह है उसकी करना! वह बानता है कि इस ससार में — "बो झाम झोरों को बतातों है, यह पहले खुद उसकर अपने हत की राख बनाती है। जो नटी माजो को बहाती है, वह सुद पहले अपने क्यार सा जाती है। हर नफरत नो एक मुहस्बत का धूसा दो। मरतों को जीनें का पंचाम दिए जाओ।" (विश्वक्यरप्रसाद दिवारों)

नफरत उसकी जिंदगी का सहारा नहीं वन सकती।

बीबित रहना है तो उसका घानन्द नेकर। "बीबन में मस्तो से मुस्कराकर जीना है। सबमुब बही जबान है, जिसको बदानो जन मे सथयों का बिय पोकर भी मुस्करानी है।" (देवराज दिनेदा)

क्ति दर्शन को उडान में भी वह विषमनामों को नहीं भूनता। वह उसे हर बल याद बनी रहनी हैं। एक दिन वह भूख से व्यादुल होकर कहना है

जहाँ रहीं से एक घठनी लानी होगी

ŧ

श्रासीलं नम के सुरज-चाँद-सितारो को पानी का यह चूंधट उग्रास्ता ही होगा।

—नीरज

पुरानी कला जो इस सरव को नही देखना चाहती कवि उसका स्वस्प उचारकर सामने रखना हुमा कहना है कि----'वेसमें बामुरी लाशो में बहुत वन चुकी है, बहुन वन चको है, उसे बन्द करो।'' (वीरस्वरसिंह)

पुराने प्रशास के भी रूप वदल गए हैं। यह उसके सामने एक नई नैतिकता आ गई है।

"चिर दिन ब्यापी ग्रेम का श्रवसान हो गया है। श्रव ती एक प्रेम में सभी ग्रेम की स्मृति के तार समा गए हैं।" (स्वाममुख्य लग्नी)

इस प्रेमे के लिए ससार को शांति चाहिए। वर्बरता इसकी ममाप्त कर देती है

फूलों की लाशों पर खाते भीरे पछाड मुखा तितिलयाँ कफन प्रोडे हैं विलयों का यह सामा मलय समीरन को काला बुखार सब खन तेपैडिक यह गईपय-गलियों का।

—सीरज

इमलिए घव ता जो गोषितों में छीन लिया गया है, वह उन्हें वापस मिलना ही होगा। उसे कोई कब तक जिपाकर रच सकता है

> बाने दे सीम परा पर सावन की छुट्टार अव्यथा संस्य की प्यास सिप् बन जाएगी यदि जन व मिला तो सत्य भान की प्रासमत यह फिट्टो वोणित के सैसाब बुनाएगी। नीची हो जाती हैं चौदियाँ पहाडों की जब प्यास तड्फर अपना शीरा डठाती है धोने की पींच बिबन हो उठते हैं सागर जब बह निन रेगिस्तानी नवर प्यासी है।

> > ~- मार्ज

बर्वरता का सन्त होना तो नवा उल्लाम जानेगा। कवि उत उल्लास से परि-वित है। वह कहता है

"धान मरपट पर मुनन ने मद स्वर में मृष्टिकी मधुरतम मुस्ती फूक दो है। भीत भी छाबा बने सोई हुई बेहीच नवरें फिर चेठ रही है। मात दम बतवान क्षण ने पर्वत को प्रपत्ती भन्ना में बायकर पूर कर डाला है।" (हरिस्वास) तूनक्त सृष्टिकी ज्या कोनव छृति धपने धंगों मे भर बड़्बानि-विसोहित धंनुधिकी उत्तम तरनों से मति ले रषयुत्त रिव- सांतिको बरीकर दूग-रोधो का रच बन्दीधर कोपती तहित को जिल्ला-सोविय- नयुमय दोतों में सी

तू प्रकट हुई सहसा के से मेरी जगती मे, जीवन से? तू मनोसोहिनो रूमा सो, तू रूपको रितरानी सी तू मोहमयी उदांगी सहुत तू मानमयी इहाणी सी, तू द्यामयी जबदम्बा सी, तू मृत्यु सहुत कुरू, निपुर तू सवकरी कालिका सहुत, तू भयकरी रहाणी सी तू प्रति, मोति, प्रासीहत, पृथा की एक विषय सहा बनकर, परिवर्तित होने को ग्राई भेरे ग्रागे सण प्रतिक्षण मे।

<del>---र</del>च्चर

मागिन का 'कैनवास' बहुत ही बडा है।

"तू घ्रमने कर में फुफ्रार सिए बचल फिरकों-छी किरती है। तेरी भीवण हुकार से दिगाज भी बाप चठते हैं। पल-मर में तेरा स्वर और मुद्रा बदल जाती हैं। तेरी हर चितवत में स्वर्ग-तरक के द्वार खसते-मुदते हैं।" (बच्चन)

कितु यह गाभी वें हमें सर्वत्र नधी निवता में ऊश-चूम करता हुया नहीं मितता। हम जिस व्यापक भूमि में पहुंचे हैं, वहा विष्टति भी कम नहीं है, जिससे कवि दावाडोत हो उठता है.

''डिंदको पीडे को नागड पर निक्षी, नटी-पिटी, मिटी सठदो नी तरह है। वह मनड़ी के जाते, प्लास्टर के चपाड, साली ननस्तर, चौतट विद्यौते और उचार केसमान है। चिनिया बादाम के दिलके, युमा 'स्टार' ' यही जिंदगी है।" (सैयर उंपुरीन)

दिदमी के लिए कितनी बचोट-मरी बात कही है बिन ने। माज का जीवन वितना उसका ममा है। तभी वह बहता है कि विज्ञान वा विकास सब बुख हिलाए दे रहा है। फिर भी वह परिवर्जन को स्वीकार करने को विवस है, "प्या मेपरबर, करने, काटे हो बहुचा मिलते हैं। यस कड़ा हो मुन्नाता तुमा पूज मिला करता है। तमे जनम के लिए कफ़न वा प्यार मिला करता है।" (सनुन्तता सिरोडिया)

पूराने विषय भी फिर से वार-बार निए जाने हैं। नारों को बिमिन्न रूपों में देखा गया है। परन्तु बहुधा नारो-सम्बन्ध में व्यक्तिगत कुठा प्रकट होती है। वरी-कही मुदर विज भी मिन जाने हैं। मारत की विषया की प्रवस्ता केती दवनीय है:

चलतो घोमो,

भग टहर-टहर,

मानव-संस्कृति

जाता है। मब भो कवियों की दृष्टि विविध विषयों की घोर वाती है। 'कोरे कायत घें ऐसी ही एक बहुत मुक्त कवित्रा है, हमने बागत बहुत-नै प्रतीकों वा एक प्रतीक वन जाता है। ऐसी विविद्यास मगरेती साहित्य में वो बहुत मियती है, दिनु हिंदी में विव सम्मेतनबाद के कारण प्राय सक्ती भावृत्तना नाम में माती हैं। विविद्या यो है

मभी हिमानी के ट्रवेंबेना यह जीवन है ज्वेत हुन्द हु सुम-सा घवत हुदय,नन उज्जवत गणा-रेत। मृद्रुत लबीला गात पवन से उडना सी-सी बार वैसे बीड़ छोजता कोई पश्ची पंत पसार मभी न ग्रुपाई तुमरी है जग की काली स्याही काँट-द्वांट वधन की तुमपर आई नहीं तबाही ग्रभी तुम्हारे जीवन का है छद बडा स्वच्छद शभी नहीं देखे तुमने हैं कठिन दुखों के पनदा मनी दिरहिणी के न विरह का तुमपर ग्रहित लेख भ्रभी न भ्रांस-शोर बिख का तुमने पाया देख धभी व सपने को समेट तुम भेद कर सके दद मभी न तुमपर लिहा गया है मधूर मिलन का छंडा। विवक्तर ने सभी न चित्रित हिए वमन्ती बुक्त श्रुतिमान मुदस्यप्न सदश जिनपर विवरे अविपुज श्रभी सर्लाधत क्वरी में मृदु गूथ-गूथरूर पूल किसी सुत्दरी ने न तुन्हें छूने की की है भूत । पूर्व तुन्ति की भाँति ग्रभी तो नुम हो बिन्हुल मूक क्सि वियोगों के न हुदय से किए गए दो टुकः। पृथ्वी को मानव ने लिख-लिख कितना दिया विगाउ तम कोरे ही ठीक ! करें-करते जी तिल का ताड

—र्रहरूदेव रहा 'वाक' इसमें बहुन ही बीमत व्यवता है भीर सोमेनिकता वडी गहरी है। हमी प्रकार नदे बढ़ि ने बोबले बर बीबन की गहरी प्रमुमित उत्तार दी है। बोबला काला है। बलला की मुख्य ने उसे बीवन की मर्पांश दो है।

'कोयना' में क्या कहता है

"मैं काश्विमा में कैंद उज्ज्ञत ज्योति हूं। में मधेरे का कपन बोडे हुए शवन सबेरा हु।" (मोहनताल श्रीवास्तव)

'बाबाकूमी' एवं बहुत ही गहरी मनुमूनि का ब्वलत प्रकाम है। ऐसी विश्वाए

भो भेम प्राप्त कर रहा है। भौर कवि ने कही भी प्रपार का सहारा नहीं लिया। इसी तरह कवि ने बहुत ही सापारण-सी वस्तु सी है---'दिवासलाई की तीली' श्रीर कहा है

मुक्ते विद्यात है सम्मा की बेला में सूरन, सितारे में।' चन्दा जब किरनों का वैभव खो सम्बर के चुन्त्-भर बाती में डून, मर आएंगे —तब भी में दात कोक्ति-पढ़ी कमरे में बसत की बलादा-पताका फहराऊंगी '

× प्रकाश के गीत ग्रेंथेरे के श्रथरो पर गाऊंगी।

धाकाश में चमकते-दमकते विशाल सूरव की घरती पर उत्तरी हुई प्राणवान थाती हैं।

—श्रीराम वर्मा

कोकित पुत्री कमरा—इगर्यक है। बोकित पत्र-सा काला और नर्गी से भरे वातावरण बाला। थीरान वर्मा की कलम में उनती हुई उत्तेवना है।

यहा में समित्यक्ति के कुछ तमें एप सामने रखता हूं, जिसके हमारी भाषा की सहा में समित्यक्ति के कुछ तमें एप सामने रखता हूं, जिसके हमारी भाषा की सक्ति प्रकट होती हैं। इस सक्ति से हमारा भड़ार यह रहा है। इसके साथ ही इसमे

जीवन की अनुभूति भी है। "वहती नदीरेल को खिनमेष कर देख। दुस प्रीष्म का तापनत तक ब्याप रहा-है। हर स्थन जसहीन है, दरकी हुई भूमि है। हर स्वप्न जसता हुमा स्वायं नादश है।" (जसदीय गुप्त)

"सब कुछ तो बदल गया, पर मृह का भाव नहीं बदला । सपर्य, युटन, हारी बाजी. लाचारी है. पर जीवन जीने का पाव नहीं बदला ।" (म्राजितकुमार)

"मध्यत में तो प्रमुम्ति की शिराधों में धनकर बारमा तक केवल कुछ हो बूदें भा पाती हैं। जहां ज्योति पानी बनकर बहनी है, वहां कक जाग्री। ददन ज्योति वा स्वभाव नहीं है, उसे जल यत समभी।" (जगशोय गुप्त)

"मरा और क्या मरे, इसलिए प्रमर जिए भी तो क्या? जिमे पीने को पानी नहीं हैं, वह सह का पट विए तो क्या हमा?" (मनेव)

"गहरा नीता युवा उम छोटे पूरे गाव के सीमात पर जम गया है। खेतो के बरहो में चलता हुआ पानी यम गया है। सटर की भीगी उदान टाठ बेगनी बूटोबाली हरी साटी पहने हुर-दूर तक पत्तरी है। बद बेहुल हुवे हुग सूरज के निवारे एक प्रस्तवाचक चिक्त बनकर उनटकर जडवन् सहस गया है। दिन के वे गीत वो हरे तोतों जेते पक्ष मानव-संस्कृति ३२६

बंधे पूणा धौर प्यार के वो नियम हैं उन्हें कोई नहीं बातना। यह कंमी लावारी है कि हमने भानी चहवता हो एकदम दिखारी है। वो भी हो, सम्मं की बान तो ठीक है।" (वीनि चीमरी) विव कहना है—"मुभने मरसाण सावन के तरन मेम-सावो तहराना है, रह-रहनर सन्दर बाना है, उने प्यारिटन के नरने मेमत नामों वह अवस है, अभित है, क्योंनि वह केरा है, मेरे दर्द ने उनका है। मैं ह मेरी प्रास्वा है, इननिए जो प्रनीस्त्र है, वह भवरच आएगा।" (मलयक)

"मैं वह हू जिमने सपन समानो की डाल पर प्रपत्ने हाथो प्रपत्ने जीवन का छता रचा है । वडी रिट्नाई से योडा-मा मधु इकट्ठा कर पाया हू । मेरे सहुर को चुरानेवालो, मैं नुप्हें क्षमा करता हू । प्रपत्ने सांसन्दर्भ के जबाई तक जाने में जिस ज्वान को पक्षी,

उसको मत तोडो ।" (पुरुपोत्तम सरे)

"चींसो मत! चींस के बाद भी दरवाजा बद न करने दूगा! बगा पता तूकान को सकसोर से उसके, तिनक विश्वाम को तनका रहे दो पाव बहुत तक झा यहुचे और दरवाजा बद पाकर, टडवी हिम्मत फिर साहम बटोरे सोट पटे।" (कर्मेशाताल नचन)

"भो पागत । यदि मू सचमुव जीना चाहना है तो साथन नहीं, सक्ति भाग। भिन्न से साथन मिल जाएगे, परतु साथन तुम्मे प्रतित नहीं दे सकेंगे।" (सिडनायकुमार) "भागत तर जहां या, वहीं रहा । यारा हो याई, जावन की बेला में माज मैंने नई उद-स्राव्य पाई है। विश्वय हो सनवंग हो गिडिंड है। जब वर्षो भाएगी तके स्वाची नी एक बूद मोनी वन वाएगी। स्रोटी-मी सीनी ही यह विवाएगी कि रस का सही पहन किनो वडी बात है।" (भारत पूरान भववाल)

"मागर कभी क्यारो से नहीं मिलना।" (गगाप्रसाद पाण्डेय)

"रिमम्बिन-रिमम्बिन हो रही है। इश्वनुष का क्षित्रमेन बृहेबार दुग्झा मोडकर साम्महिशेले क्षत्री भूत रही है। किवार खोलकर रह-रहकर विजती भाककर गरजवी-तदस्ती है।" (क्षदेवींमह)

षाधुनिक 'प्रेम' पर वह व्यय्म वरता है—"क्तोमय के वर्गर इसकी उपलब्धि निकास पनभव है।" (कैसास बावरेपी)

"मतिरोधो से तो मन्दा है कि पशुहमें ले चलें।" (सत्वेन्द्र धीपान्तव)

"तुम्हारी धठारहवी सदी को (माउट माफ डेट) हवेचो, पुरानी पोदी के प्रति धदा के नाम पर यब भी बत रही है। इसका मगला हिस्सा सुदबाकर तुम इने सापु-नित्र बनाना पाहते हो ? प्रानेदातों को बाहर हो बाहर नकतों चेहरा सगाकर अरसाता चाहने हो ?" (नेदाबचद बमां)

"बब पहला मूर्रज ज्या तब में हम 'बेन्द्र' की सत्ता स्वीकार कर प्रवक्षिता कर रहे हैं। हमारे बार्-बाए समृद्धि है, जीवन है, धमनियों का स्वटन है, पर हम जीवन के मानद-मस्कृति ३३१

"जितने भी धनमोल मंदिरा पी ती, यह धार हो गया। इसी मंदिरा को पीकर किताओं में भीरे जीते हैं।" (धानन्द निश्र) "मैं किरण-झिंब का विचा हूं। मैं तिमिद- एट पर निया हुमा एक हो प्रधार हूं।" (नियात केंद्रु) "ने जो मेरी दीएक के हाथों से रोमन पनवार छीनकर उसे धायगारे के जाल में निया गए, वे जो मेरी बहार के पायों में प्रमूच पायजेंव उतार उसे ध्यापामों के वन में हिएर गए, वे जो मेरी कार को बाली में प्रमूच पायजेंव उतार उसे ध्यापामों के वन में विट्रा गए, वे जो मेरी कार को बाली से स्वयानों के पायों से सारों के प्रमुचन के पायों से सारों के पायों में पायों से सारों के पायों से माने के जी मेरी पायों में प्रमुचन के विट कार के सारा ते हैं। मेरिक के बायाओं में, जूने फूँक देने वे कम से साम तर्ज की विट बारी है।" (भवाती समार मिश्र)

बास्या में "समय-व्याध के तीर से जैसे सब कुछ विद्व है। इस समार में तो जो दर्द को पीते हैं, मौबा पर चीते हैं। जिनकी उदासी का कुहरा गावी पर, फलो के, पत्ती के, कित्यों के, पीड़ों-सा है, वे रससिद्ध है। वे रससिद्ध हैं जो सड़कों के गलियों के कोतो . पर सिर पर जल की सम्हाले लैभ्पपोस्ट-से जागते हैं । यह व्यवा जिसमे झास्या नहीं, व्या है। वह व्यथा, व्यथा का आभास है। यह व्यथा की ध्यास है। व्यथा तो घरती की है जिसमे व्यथा को बास्या के साथ धारण करने की असीम क्षमता है। व्यथा के हर रूप के प्रति ग्रमाध ममता है। तप के प्रति निश्चल, निश्छल निष्ठा है।" (शिवकुमार श्रीवास्तव) "मामने चलो जहा मर्घ की गहरी खाई है, वहीं भाव का उत्त है, स्वन-श्रण की दोपहरी है। वहा साधना स्वय साध्य की छहरी छाषा है।" (राजेस्वर शुक्त 'राजेश') "मैं भारता की निकरी है। सास्यत है। बीजों के कल बन सेतो पर बिखरी, मादी का झासक पी में सोना बन निखरी, कनतो की बाली में । घरती के खालों में हरित लेप बनी । मैंने ही बासा की खिबकी ने बादि पुरुष मनु के अन्तर में काका था।" (सकर शेष) "हारो की शर्नों पर अपना नाम मत लिखाओ । उड़नेवाली पासी में पत्यर मन वाघो । जब तमने नक्सनों में दाव लगाए हैं तो उन विरणों का स्थान करों जो कल बाएगी।" (प्रवाय-... नारायण शहल } "यो विषयाना की सत्तायों " मैं वरेच्य हु, किनु मुख्त रहने हो। म्रो विस्तयन की सभावना की बायरित रेखाओं। मुक्ते अपने छदो से विश्वक रहने हो। बारनेय की जड़ना बाधक व हो, बदेय तो कुछनही है, परन्तु समर्थण नहीं हुगा।"(राजेन्द्र हिसीर)यह एक मजन्मे जी मावाज है जो माला पिता के बच्द देखकर कहता है-"तुम सबका दर मुक्तने देवा नहीं जाता। तथ्ये दिन का बाकी सफर मुक्ते नही माता। मा ! मुमें मुक्त कर दो। मैं अधेरे से लड़ गा। मैं तुम्हारे द्वार संघेरा लाऊगा।" (नर्मदाशसाद त्रिपाठी) "देखता हू सभी मागे राह कितनी है। भीन देखेगा कि कितनी दूर मा चका ह । धीनपालाए में गून्य में बिलरा चुका हू ।" (नन्दलाल पाठक) और वह बहुना है--- "डरट बोन की नगन गुका में काते जूहे रहने हैं। 'नातियी' के नात्मीडक में रोज नहाते रहते हैं। एक दिन की बान कही तबीयन सट गई। पर जौटे, पाया धपनी पद्ध नहीं कट गई। तब से सब तक

> एक सिरहा एक बासचा कही पूँच सहराए जाको द्या-परम-कस्तूरी-दिविया नाभिषक सहलाए जाको 'सग-पद्यम्' महामत्र -बोडो का मुडका मारे जाको, ग्रहो डिरगो, यहो परम हे लस्त्रोरासी तारे जाको। बु केप्वनूडिनमना सुलैष् विगतस्तृह बोतराम अप कोच नामर्डन् निरुष्यते। स्वस्त्रो नियम कोच नामर्डन् निरुष्यते।

नामर मुनि की मीठा कैसी तीसी कपोट लिए है। साई हुई मुटली के प्रति भी उसकी ऐसी मजदूरी है कि वह उमे फेकता नहीं। फिर वह कर्तना करता है कि यह गुठली ठगेगो। उस समय का कितना धाकर्षक वर्णन है

ॐ तत् सत् ।"

हरी ग्रेंगरिया पहन यह गुरुली इरुलाती नाचेंगी कल परतो नरसो कभी नकभी क्राभों के सबार लगा देगी। —सानदेव

'काल बन की शाम' में प्रकृति का नये इय का वर्णन है—"ससीमी सीन चिरंवा प्रवक्ता के बाल में कस गई। तरहाल में नमकील दुब्दे के विषयर लिएट गए। मोचूनी की हजीती हाह में बक-मार्ग लहरा रही, जैसे विश्वी वह पुल के नीचे से बौकाए जा रही हो। सोज कुन में बिखरे मोती, रही ज्योति नी रानिया, जोगन की बाताब डोलदी कहनी प्रवद कलिया। " (मिरियर गोपाल)

"दर धन है, उसे न बहायों, न भुनावे देकर भुलाओं। राह को राहत बने, उतनो दवा तो ठीक है। छाव का सहारा होता है, ले लो, मवर घर मत बनायों।"

(जनदीश एम० ए०)

'धारा मशीन' मे जुतल मेघ आधुतिक यत्र, मानव-कर्मठता सीर मानवीय सबेद-नाको का एकत्रीकरण करता है

"प्रारा मनीन का प्रस्तिचिह्न मुन्हे नित प्रामक्त देता है—चीरो चीरो दई, यक्त को धौर खोर्म-सीर्ण को बाटो-बाटो। प्रश्तिचह्न के सम्मुख प्रपत्ने करकमको को प्रीप्त मत होने रो। घन बन मनर, चैत्र मनोहर, सुमन मध्यर को जड-चेत्रन से मह-मह्दा दो। उन्हें वर्षकक्ष की मेर्जे, अस्मारी, दांदाजे, पत्तम, चौलटें बनामो, रेलो के मानव-सन्द्रति ३३४

हम हरी चीटियो-जैसी हैं । हम आदिकाल से सब बिनयों की नियति घरा की भीसवती दुवों से मध्यित करने गिरिवन, मध्यत, नगर-इस्ताप रही हैं ।" (नरेस मेहना)

"कोई भी बात्रा प्रव मुझे बहुत सम्बी नही है, कोई भी राह मुझे दुर्गम वाहुस्तर नही है। हे मीत! जब तुम साथ हो तो प्रव और चिंता बहा हैं। यब क्यो के काटे मुझे करों से पटकर नहीं हैं।" (देवराज)

देवता और धर्म के डकोमले को देखकर व वि कहता है—"महिर के देव को अब उस बगह पहुंचा दो, जहा पर हेर के हेर देवता पड़े हैं। ये सबह की वस्तु हैं, ये भाग्य-विधादा नहीं। ये प्रव जिद्या नहीं, काल के चरण हैं।" (वशीधर एण्डा)

यात्रा अतहोत है। कवि जनकर कहता है, "क्या कभी यह एक उन्नवी माग-सी धूल-धूमर राह सहम होने को म मार्गा ? क्या गई सफर की सबुभ-प्रवाह प्याप्त एक दिन मुक्तीकी पी जोएगी ? क्या मेरे साथ यही सब उपते कहते, और पुराने पुल जाएगे ? क्या यह बगुम-सी इहरी पाल में लियरी हुई नदी गुम्मे विरुक्त हो बोच देगी?"

(धर्मवीर भारती)

कवि जिनना परिवर्तन चाहना है उतना पा नहीं सका है। साकेतिक चंत्रवित-नता यहा पूर्व का प्रतीय बनकर सामने प्राती है।

"निरिपर्वत-वन लावना नया मेथ कुम्हलाए फूलो मे नूतन मथ भरने बाया है। इसकी नम में छा नाने थे। यह तुम्हें स्मेह, सौंदर्ग, स्नाम्च्य सब कुछ देगा।"

(स्वामसुदर 'प्रशान') "ग्रव दिवकाल ग्रतान ग्रीर मय ना कारण नहीं है। ग्रतिम रण के लिए नर-

भव बदकरात सतान चार भय ना कारण नहा है। मातम रण का तत् नर-नारायण मंत्र न टिनड हो रहेहैं। परम पावन-नारण क्षेत्र मत रणक्षेत्र वनेगा।" (नरेन्द्र रामी) "फाणून का सनमनवन केवा है, सलस दुणहरी है। बेमन नीरस प्वनिया प्रीटा

परकोषा-सी पसरी है। पनीसी राग हवाए चल रही है। वहते हैं बसत बीराया है, पर मुस्ते बगता है कि में जैसे यड़मी में अकड़ गया हूं।" (किदामूपण सप्रवाल)

"धार स्वतन्त्र है, मबर उसपर वंदीन कही नियदण भी है, जैसे छन्द कही मुक्ति है तो वही बन्धन ।" (नोरज)

"एक पीनो ज्ञाम ऐसी है जैने पनकर का करा सरका हुआ पत्ता। प्रव पिरा, सर्व गिरा वह सरका हुआ श्रामू सीव्य तारक-मा है।"--(समरोरवहादर सिंह)

"दीप जलाकर रात गुजर दो, दोपहरी देह अलाकर।" (नेपाली)

"प्रामिकाता सबेरा होता है, जानेवानी शाम होती है।" (बतवौरींसह रण) 'बाद ग्रीर मेथ' हा वर्णन करते हए क्वि कहना है

"दिया ने भी द्विया हाथी मजा फेरी लगा, काली हुई-सा नम की धुना मौर

इन्द्र भी बहुता शिमक था, यूत्र, जो जनशत्रु था, अमचीर था, इन्द्रको उस शत्रु से लंडना यहा था— धीर जन विजयो हुए,—अम को विजय थी। सात के हम इन्द्र हैं—हैं देवता थम के— जान ते, पहचान से सब आज के इस समुर, सोधक वृत्र की 5—

—नरेश मेहना

घरती जाग रही है।

कवि किवान नो बुलाता है। परती ना गृन है कि वह पूजती है। "झो निवानो! तुम्हारी हरो घरती नो बात ने समय मानव यस रहे हैं। मुक्ति के नेता! संजग होकर बितत ना निर्मोष नर दो।" (शिवमूर्ति निश्व)

भत में में कडूगा कि मंत्री बहुत वटी प्रक्ति मीर उसकी समावना हमारे काव्य में छिपी हुई है। अनता में जिनना सामीच्य होगा काव्य निवस्ता आएगा।

"जन-मादना की शिब्जिनी मधुर स्वर में बज रही है। मागामी मुक्त जगत् की वह कामना है वह स्वर ।वह चादनी सी मधुर है, प्रान काल-सी उन्मेयदाजी है। वह जगत, गाव, घर, नगर, गली में पूसती हैं।वह जिंदगी की जीत का दिटोरा चीटती है।"

(इरिब्बास)

इसर 'प्रमात' की 'ऋतवसा' में जीवन नी वडी ही गहन अनुभूति प्रवट हुई है, जितमे हम जल, पृथ्वो, मिन, पवन भोर सागास, मानव, प्रजा, नारी भोर चरावर नो एक महान कमेयज में सन्तिहित देखते हैं। 'ऋतवसा' एक नया मीस ना परवर है। भाज जीवन वड रहा है

> मनुकी प्रजा बनी रालधा विवारी विधि-विधि मे मू वर बन-पिरि-गद्धार, समतल में, हिममजित ध्रुव के ऊपर । यह मानवता की सहस्र धारा भ्रान्त धविनाधी बनने बली विश्व-संस्कृति का जस-निधि अप-विद्यासी। वैशो मे जन बेंदे, बनी सि-सायर को सीमाई परती बेंदी, एक नभ मे पर सबके क्वर सहराए। धर्म-जाति-रोगें-बगी को बनी नई दोबारें पर विराट जन-वरण न पय को बायाधी से हारे। मिसी एक ही नीत गमन से सबको स्विग्न दाया

मानव-संस्कृति ३३६

प्रतिक्यावादियों में घृषा है। और जहां भी मानव की स्वतन्त्रका का प्रस्त है, वहीं उसे मारवना स्विता है

> मुखे प्रमरीका का निवर्टी-ट्रंचू उतना ही त्यारा है नितना मीक्से का सान तारा भीर मेरे दिन मे वींदग का स्वर्गीय महत मरका-मदीना से क्य पवित्र नहीं में काशों मे उन धार्यों का शकार सुनता हूं जो बोल्या से आए मेरी देहलों में प्रह्लाद की नदस्वार बोनों दुनियामों की चीखद दुर मुद्ध के दिलस्यार साने की चीर रही हैं

पाज मेने गोशों को होगी के पीगन मे देशा भीर ताब के साए में राजीय कुम को पामा जिल्ला के हाथ में हाय दिये हुए भीर तांसकर मेरे देहाती यूपिमन होठों से बौद खटा भीर साराओं को भीतों में नया इतिहरत भीरे दिन को कहानी की मुखीं वन गया में जोग की बाद मतती हूँ जो नेलदा की भजों ते जाम की तदह टकरानी हैं में पंत के कुमार दायावादी सावन-मारों की बीट हूँ हिलोर तेते वर्ष पर में निराता के राम का यह सांमू जो तीतार महायुक के किन तीह एवंदी को सेता महायुक के किन तीह एवंदी को सेता महायुक के किन तीह एवंदी को हैं हो मा पर साय पातान तक